“इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन“

“Ikkisaveen Sadi Ka Mahila Aatmakatha Lakhan: Sangharsh aur Srijan”

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला संकाय

शोधार्थी

श्रीमती हेमलता मीना

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. लीला मोदी

विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

जा.दे.ब. राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

प्रमाण–पत्र

मुझे यह प्रमाणित करते हुए प्रसन्नता है कि शोध–प्रबन्ध (**"इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन")** शोधार्थी श्रीमती हेमलता मीना ने कोटा विश्वविद्यालय, कोटा के पीएच.डी. के नियमों के अनुसार निम्नलिखित आवश्यकताओं के साथ पूर्ण किया है :

1. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के नियमानुसार कोर्स वर्क किया है।
2. शोधार्थी ने विश्वविद्यालय के 200 दिन के आवश्यकता नियम को पूरा किया है।
3. शोधार्थी ने नियमित रूप से अपना कार्य प्रगति प्रतिवेदन दिया है।
4. शोधार्थी ने विभाग एवं संस्था प्रधान के समक्ष अपना शोध कार्य प्रस्तुत किया है।
5. शोधार्थी का बताई गई शोध पत्रिका में शोध पत्र का प्रकाशन हुआ है।

मै इस शोध–प्रबन्ध को कोटा विश्वविद्यालय, कोटा पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की अनुमति देती हूँ।

दिनांक : 17. 04. 2018

डॉ. लीला मोदी

(शोध पर्यवेक्षक)

शोध–सार

प्रथम अध्याय– महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा :

1.1 आत्मकथा लेखन : अवधारणात्मक परिचय, आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ, आत्मकथा की परिभाषाएँ, आत्मकथा, आत्मकथा के रचना तत्व– आत्म तत्व, कथा तत्व, परिवेश, अतीत का रूपान्तरण, आत्मकथा के तत्व– कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद। 1.2 आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा– संक्षिप्त परिचय, त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, हिन्दू नारी की स्थिति का सर्वेक्षण, विभिन्न कालों में नारी की स्थिति– वैदिक काल, उत्तर–वैदिक काल, धर्मशास्त्र काल, मध्यकाल, ब्रिटिश काल– पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, नारी जीवन का पारिवारिक वातावरण, हिन्दी साहित्य में आत्मकथा की विकास यात्रा, आत्मकथा : जीवनी सहधर्मी विधाएं, हिंदी साहित्य की संक्षिप्त जीवनी–साहित्य, महिला आत्मकथा लेखन। 1.3 इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखन का परिचय, पारिवारिक जीवन, सम्बन्धों में कटुता, पुरुष का उत्तरदायित्व, स्वार्थी प्रवृत्ति, पत्नी पर अत्याचार, विचार व प्रथाएं, नारी शिक्षा, सदिगत परम्पराओं पर प्रगतिशील विचारों का प्रभाव, सामाजिक तथा मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन। 1.4 निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय– इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन :

2.1 पारिवारिक स्थिति– समानान्तर जिन्दगीः आधुनिक पैटर्न, आजन्म उपेक्षिता, अवैद्य रिश्ते समाज में अस्वीकृत, बीती ताहिं बिसार, आगे की सुधि लेय, अनवरत रुदन, समाज की मानसिकता में परिवर्तन, स्वनिर्णय की हिम्मत, उन्मुक्त उड़ान की ओर नारी, दिखावटी आधुनिकता, सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, परिवार में बड़ों का दबदबा, सहनागरिक का दर्जा, परिवार में प्रमुख स्त्रियों द्वारा चुप रहना व कार्य करना, पारिवारिक निर्णय केवल पुरुष प्रधान, स्त्री के प्रति संकीर्ण मानसिकता, पत्नी का केवल शारीरिक शोषण, सामाजिक मर्यादा व

परम्पराओं का ढोंग, पर्दा प्रथाः एक प्रश्नचिह्न, ससुराल ही वास्तविक घर, जनाजा (अर्थी) ससुराल से ही उठे, पति परमेश्वर, स्त्री अशिक्षा। 2.2 विभिन्न सम्बन्ध– पिता–पुत्र का सम्बन्ध, पति–पत्नी का सम्बन्ध, छात्र–अध्यापक का सम्बन्ध, अन्य सम्बन्ध, सहानुभूति संबंध, पारिवारिक संबंध, अनुभव व आत्मीयता का संबंध, पुत्र मोह संबंध, अनैतिक संबंध, पुरुष प्रेमिका संबंध। 2.3 शिक्षा का बढ़ता स्तर व बढ़ता आत्मकथा लेखन– इन्टरनेट जागरुकता की एक सीढ़ी, नारी हौसले में बुलंदी। 2.4 सामाजिक विद्रोह और महिला आत्मकथा लेखन– दहेज प्रथा की समस्या, दहेज का उद्देश्य, वधू मूल्य, दहेज के सामाजिक प्रभाव, दहेज से हानि। 2.5 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय– इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन :

3.1 इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप– बयालीस का आंदोलन, पैंतालीस का आंदोलन, नक्सलवाद का विरोध, सैंतालीस में भारत की आजादी का संग्राम, स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका, उन्नीस सौ सत्तर की राजनीति, उन्नीस सौ पचहत्तर की राजनीतिक स्थिति, राजनीति में वंशपरम्परावाद का विरोध, आपातकाल में राजनीतिक ह्रास, खेलों में राजनीतिक हस्तक्षेप, पुरस्कारों में राजनीतिक हस्तक्षेप, दलित स्त्रियां अपनी लड़ाई स्वयं लड़े, माफिया से मुकाबला। 3.2 महिलाओं की राजनीतिक स्थिति– राजनीति में महिलाओं का दबदबा, महिलाओं को वोट देने का अधिकार, संविधान द्वारा विभिन्न वर्गों व जातियों को समानता, पिछड़े वर्गों को जीवन की मुख्य धारा से जोड़ने की पहल, महिला आरक्षण बिल, इंदिरा गाँधीः एक प्रेरणा स्रोत, खेलों द्वारा राजनीति में पहचान, मणिपुर में एक रोड़ का नाम मैरीकोम, साहित्य में राजनीति, सरकार का हास्यास्पद कदम : आपातकालीन राजनीति, भारतीय दूतावास में राजनीति, जातिगत राजनीति। 3.3 पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियाँ– कथनी–करनी में अंतर, औरत के प्रति सोची समझी राजनीतिक परम्परा, राजनीति शारीरिक शोषण का कटघरा, राजनीति में आने वाली औरत

'कलेवा', राजनीति में दलालों का जाल, राजनीति में आने वाली स्त्रियां 'फार ग्रांटिड', शारीरिक शोषण : ऊपर जाने की राजनीतिक सीढ़ी, अखबार (मीडिया) की घटिया मानसिकता, वामपन्थी पार्टियों की पूर्वाग्रही सोच, नारी ही नारी की दुश्मन, नारी जागरण का समय, दृढ़ आत्मविश्वास, पुरुषों के गैरकानूनी कुकर्मों की पोल खोलना, पुरुष राजनीतिक मित्रों की भीतरघात, कब्जाकरण का विरोध, स्त्री के चिह्न कायरता के प्रतीक नहीं, पुरुष सदस्यों को जुझारू औरत बर्दाश्त नहीं, लम्बी राजनीतिक पारी, स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना, 3.4 निष्कर्ष।

चतुर्थ अध्याय– नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन :

4.1 आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन– सदियों से रूढ़िग्रस्त समाज, पति पर आर्थिक निर्भरता, आर्थिक अधिकार की समस्या, एक–एक पैसे को तरसती नारी, नारी होने का दुःख, पराया धन, सामाजिक बंधन, पुरुष को स्त्री का मालिकाना तेवर नापसंद, पड़ोसिन की आर्थिक सहायता का नवीन रूप, आर्थिक संघर्ष का दौर, आंबूकरा, राशन का जमाना, चाय की लत डालना, बड़ी बहिन की आर्थिक स्थिति। 4.2 आर्थिक स्वातन्त्र्य और बनते बिगड़ते रिश्ते– अर्थ तंत्र पर रिश्तों की बलि, पारिवारिक विघटन का मूलः अर्थ, पीढ़ीगत आर्थिक दासता, सोच में अंतर, एकल परिवार की मानसिकता, शहरीकरण की चकाचौंध, अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएं, भौतिकवादिता, पहनावा, रहन–सहन, वात्सल्य, मातृत्व सुख से दूरी, विवाह से दूरी, अन्तरंग सम्बन्धों की अधिकता, परिवारिक सम्बन्धों में मतभेद, सहनशीलता की कमी, परिस्थितियों से समझौता नहीं, स्वयं के अनुसार जीवन जीने की लालसा। 4.3 रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़– रचनाकार एक सेतु, आर्थिक आत्मनिर्भरता महत्त्वपूर्ण उपलब्धि, समय की कमी, पब्लिकेशन, त्रुटियों में कमी, कम्प्यूटर की उपयोगिता, अर्द्ध संचार माध्यम। 4.4 कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन–आर्थिक आत्मनिर्भरता मान सम्मान व मर्यादा का प्रतीक, युगीन परिवेश का प्रभाव, स्वतंत्रता सेनानी की पत्नी को एक दासी के रूप में देखने की चाह, चिटफंड, दशरथ के परिवार की

आर्थिक हालत, कर्जदार बन कर मत मरो। 4.5 आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान– स्वार्थ सिद्धी वंश केन्द्रीय स्थान। 4.6 निष्कर्ष।

पंचम अध्याय– इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन :

5.1 स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन– नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, स्त्री जीवन में बदलाव की मांग, स्वत्व की चेतना, परम्परागत रूढ़ियों का खंडन, नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, शहरीकरण की वास्तविकता, इन्द्रधनुषी रंगः घनघोर काली रात, इक्कीसवीं सदी की आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति की वर्तमान स्थिति और सृजन, नारी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व की चेष्टा, दोहरे मानदंड का विरोध, एक तरफा प्रेम के रिश्तों को तिलांजलि, पुरुष वर्चस्व को तोड़ती नारी, आर्थिक परतंत्रता स्वतंत्रता विरोधी। 5.2 विभिन्न जन आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन– आजादी से पहले का आंदोलन, स्वतंत्रता आंदोलन, मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में नारी शोषण की स्थिति, महिला अधिकारों की विभिन्न देशों में स्थिति, संयुक्त राष्ट्र एवं महिला अधिकार, अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं एवं महिला अधिकार, महिला अधिकारों के विशेष प्रावधान, महिला हैसियत आयोग, महिलाएं एवं अंतर्राष्ट्रीय वर्ष व दशक की घोषणा, महिला अधिकारों से संबंधित घोषणा, महिलाएं तथा विश्व मानवाधिकार सम्मेलन 1993, महिला अधिकारों की जागृति हेतु किये गये प्रयास, मैक्सिकों सम्मेलन, कोपेनहेगन सम्मेलन, नैरोबी सम्मेलन, बीजिंग सम्मेलन, नई दिल्ली सम्मेलन 1997, महिला अधिकारों हेतु विभिन्न देशों द्वारा समय–समय पर किये गये प्रयास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला अधिकारों के विकास से सम्बन्धित घटनाक्रम, आत्मकथा लेखन और महिला अधिकार, अपना निर्णय अपने हाथ, उन्मुक्तता बनाम हठधर्मिता। 5.3 प्रतिरोध की स्थितियाँ और महिला आत्मकथा लेखन– पति का शीत युद्ध, जलकुक्कड़ आदमी की शिकार, नारी उन्मुक्तता

और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध, 'मंगलसूत्र' एक घरमल्ल, करवा चौथ पर सवालिया दृष्टि। 5.4 शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन– अनवरत अश्रुमोचन, आत्महत्या के प्रयास तक, हर कदम पर शारीरिक शोषण, नारी योनि खतरे में, बाल्यकाल के दंश, भावनात्मक प्रहार, आर्थिक ब्लैकमेल का शिकार, अश्लील आचरणः पुरुष मानसिकता, वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति, सामाजिक अन्याय और अत्याचार, शाब्दिक आघात। 5.5 निष्कर्ष।

उपसंहार

परिशिष्ट :

आत्मकथा के विभिन्न चरण, दलित आत्मकथा साहित्य, स्त्री आत्मकथा साहित्य को रेखांकित किया है।

शोध संक्षेपण

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्रकाशित शोध–पत्र

घोषणा–पत्र (शोधार्थी)

मैं घोषणा करती हूँ कि शोध–प्रबन्ध (**"इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन"**) जो शोधकार्य मेरे द्वारा प्रस्तुत किया गया है, वह पीएच.डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए आवश्यक है। मैंने यह शोधकार्य डॉ. लीला मोदी (सह–आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय वाणिज्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा) के निर्देशन में पूर्ण किया है। यह मेरा मौलिक कार्य है। मैंने अपने विचारों को अपने शब्दों में प्रस्तुत किया है और जहाँ दूसरे विचारों और शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे मेरे द्वारा विभिन्न मान्य स्त्रोतों से लिए गये हैं। अपरिहार्य स्थिति में ली गई ऐसी हर सामग्री का यथास्थान सन्दर्भ एवं आभार व्यक्त कर दिया है जो कार्य इस शोध–प्रबन्ध में प्रस्तुत किया गया है।

मैं यह घोषणा करती हूँ कि मैनें विश्वविद्यालय के अकादमिक नियमों का निष्ठा एवं ईमानदारी से पालन किया है तथा किसी तथ्य को गलत प्रस्तुत नहीं किया है। मैं समझती हूँ कि किसी भी नियम के उल्लंघन पर मेरे खिलाफ प्रशासनिक कार्यवाही की जा सकती है और मेरे खिलाफ जुर्माना भी लगाया जा सकता है। यदि मैंने किसी स्त्रोत से बिना, उसका नाम दर्शाये या जिस स्त्रोत से अनुमति की आवश्यकता हो, बिना अनुमति के लिया हो।

दिनांक : 17. 04. 2018

हेमलता मीणा

हेमलता मीना

(शोधार्थी)

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी श्रीमती हेमलता मीना (RS/1097/13) द्वारा उपर्युक्त सभी सूचनायें मेरी जानकारी के अनुसार सही है।

दिनांक : 17. 04. 2018

डॉ. लीला मोदी

(शोध पर्यवेक्षक)

प्राक्कथन

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति संसार की संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय संस्कृति की धरोहर नारी है क्योंकि वेद, पुराण लौकिक काव्य सभी में नारी को वामांगी कहा गया है। नर देवता है, तो नारी देवी। वैदिक साहित्य में नारी का स्थान उच्च था उसका मातृरूप सम्मानजनक और विशिष्ट रहा। नारी को पुरुष के समान सभी अधिकार प्राप्त थे और उच्च शिक्षा की सुविधा प्राप्त थी।

भारतीय संस्कृति और धर्म में माँ, पत्नी एवं बहन के रूप में नारी की अलग पहचान है, जो आदर और सम्मान से परिपूर्ण है। दुनिया के प्रत्येक साहित्य में नारी के रूप में माँ का स्थान सर्वोपरि व पूजनीय है। वैदिक साहित्य में नारी पूजनीय एवं स्वतंत्र रही, उसका स्थान उच्च था लेकिन हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल से ही नारी ने देवी के रूप में भोग्या का रूप धारण कर लिया था, यद्यपि इस युग में नारी में वीरता की दृष्टि से कोई कमी नहीं रही। वह वीर क्षत्राणी के रूप में हमारे सामने आती है तथापि सौन्दर्यशाली रूप की उपासना अधिक हुई है। यही स्थिति मध्ययुग में भी रही। भारतीय समाज में नारी की महिमा अविस्मरणीय रही है।

बीसवीं शताब्दीं तक नारी लेखन में कुछ विशिष्ट नामों का उल्लेख भी होने लगा तथा समाज में उनकी लेखन क्षमता को प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ। नारी के द्वारा नारी की संवेदनाओं, ममत्व, मातृत्व तथा पीड़ा को उजागर करना आसान था, जिससे समाज की नारी को अपनी वास्तविक परिस्थितियों का सामना करने तथा संघर्ष करने के लिए एक हथियार की प्राप्ति हुई। इस कलम में समाज ने नारी के अस्तित्व तथा उसके स्थान के लिए पुरुष प्रधान समाज को सोचने पर मजबूर किया। इस प्रकार नारी लेखन से समाज में एक नये दीपक का उदय हुआ।

भारतीय आजादी के संघर्ष के दौरान राजाराम मोहन राय जैसे महान् व्यक्तित्व के द्वारा नारी उत्थान के प्रति किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप सतीप्रथा पर अंग्रेजों द्वारा रोक की व्यवस्था कानून द्वारा की गई। इसी प्रकार समाज में प्रताड़ित तथा नारी की पीड़ा व दुःख को उजागर किया गया। आजादी के संघर्ष में नारी शक्ति का भी अहम् योगदान तथा भूमिका का निर्वहन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दिया। इसी प्रकार नारी के समाज में उत्थान के लिए कई प्रकार की संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हुआ। धीरे–धीरे महिलाओं में जागृति के परिणामस्वरूप नारी में सृजनशीलता का भी विकास हुआ। जिसे उसने गीत, ग़ज़लों, कविताओं, लेखों, कहानियों आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। धीरे–धीरे समाज में कई प्रतिष्ठित महिलाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करने के कारण, उन्होंने अपने स्वयं के जीवन के बारे में लेखन प्रारंभ किया, जिससे एक नये सूत्रपात आत्मकथा लेखन का उदय हुआ, साहित्य की विविध विधाओं में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है–आत्मकथा। आत्मकथा ने बीसवीं सदी में विधा का रूप लिया। आत्मकथा में पाठक लेखक के जीवन के अंतरंग पहलुओं को जानकर प्रभावित होता है और लेखक से मुलाकात का अनुभव करता है। प्रायः विश्व के सभी देशों में आत्मकथाएं लिखी गई हैं, किन्तु आरंभिक दौर में महिलाओं की आत्मकथाओं का अभाव रहा। महिलाएं आत्मकथा में लेखनी चलाने से इसलिए हिचकती थी, क्योंकि जो कुछ कथनीय है उसको कहने का साहस और कौशल वह जुटा नहीं पाती थी, इसलिए वह आत्मकथा लिखकर जोखिम नहीं उठाना चाहती थी। आज के युग में नारी का मन भी बदल रहा है, वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है। आज अनेक सामाजिक मान्यताएं टूटती नजर आ रही हैं, उनके स्थान पर नई मान्यताओं ने जन्म लिया है। रीति–रिवाजों में बंधी नारी के अन्दर इन परम्पराओं से निकलने की छटपटाहट उनकी आत्मकथाओं में चित्रित होती है। मराठी लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं को बहुत ही बेबाकी से लिखा है। सर्वप्रथम मराठी, पंजाबी और बंगला में लिखित स्त्री आत्मकथाओं से प्रेरित होकर हिन्दी की लेखिकाएं आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुई। ये आत्मकथाएं एक और कथा लेखिका के

आत्मसंघर्ष को पाठक के समक्ष रखती हैं, तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं को जो समाज में अत्याचारों को सहकर चुप रहती हैं, उन्हें इन आत्मकथाओं द्वारा अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती हैं।

वर्तमान सदी सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर बंधन के प्रतिशोध का समय है। समाज के हाशिए पर स्थित विभिन्न वर्गों ने अपनी उपेक्षाओं को दरकिनार करते हुए अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष किया है और बराबरी में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की है। अस्मिता के लिए संघर्ष में ईमानदार कोशिश है— अपनी आत्मकथा लिखना और सम्पूर्ण मानवता के परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक स्थिति में अपनी इयता को अन्वेषित करना। महिला लेखिकाओं की परंपरा लम्बी है किन्तु पुरुष वर्चस्व और अपनी नियती के बीच आत्मान्वेषण और अभिव्यक्ति का साहस करने वाली हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं एक सराहनीय प्रयास है, आज का युग प्रत्येक क्षेत्र में जागरण का युग है, आज नारी वह नहीं रह गयी है, जो पचास वर्ष पहले थी। समय के साथ उसकी सोच भी विकसित हुई है। आज अपनें जख्मों को दिखाने के लिए नारी की आत्मा छटपटा रही है। वह अपने मौन को शब्द देना चाह रही है उसकी सोई चेतना जाग उठी है और उसे अपने अस्तित्व का बोध हो गया है। नारी ने आज कलम को हथियार बनाकर लड़ना सीख लिया है। परिवार, समाज तथा साहित्य जगत में लेखिकाओं को जो कटु अनुभव हुए उनका वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथाओं में बेबाकी से किया है। महिला आत्मकथाकारों ने आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री जीवन में जुड़े अनेक अनकहे कोने सामने रखे। लेखिकाओं ने समाज के उस पुरुष वर्ग को चिह्नित किया है जो नारी को मूल अधिकारों से वंचित करते हुए यह स्वीकार नहीं कर पाते की स्त्री को समान मानकर उसके विचारों का आदर करना चाहिए। आज लेखिकाएं ही नहीं बार डांसर, राजनेत्री, अभिनेत्री, घरेलू परिचारिका, एवं सैक्स वर्कर धड़ाधड़ आत्मकथाएं लिखकर समाज को सोचने पर विवश कर रही हैं। महिलाओं ने अपने लिखे का लोहा मनवाया है, इसलिए आज वह समाज में चर्चा का विषय है, आत्मकथा एक

शपथ पत्र की तरह है जिसमें पूरी ईमानदारी से घटित घटनाएं व्यक्त करने का प्रयत्न होता है। हिन्दी समाज के सम्मुख स्त्री आत्मकथा की नयी क्रांतिकारी संभावनाएं दिनों–दिन उजागर हो रही हैं। इस प्रकार से महिला आत्मकथा लेखन हमारे लिए एक नया विषय है।

मेरा मन बाल्यकाल से ही नारी के प्रति संवेदनशील रहा है। घर, परिवार, समाज और राष्ट्र में नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों को देखकर, समाचारों से जानकर मन कराह उठता था। मैंने हमेशा जहाँ भी अवसर मिला संकटग्रस्त महिलाओं की सहायता की। उनके कष्टों की कथाएं सुनी। मैं महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से नारी विमर्श के साहित्य को पढ़ती रही हूँ। मुझे प्रत्यक्ष सुनी कथाएं और नारी लेखन की व्यथा–कथा समान लगी। आयु के बढ़ते चरणों के साथ–साथ मैं समझने लगी कि हर नारी की व्यथा लगभग समान है परन्तु सबका जीवन एक समान नहीं है। इन सबके सुख–दुख, उल्लास–अवसाद, जीवन और जगत के प्रति दृष्टि भी एक जैसी नहीं है। किसी का जीवन सुख से भरा है जैसे मैरी कॉम, किसी का दुख और अवसाद से भरा है जैसे– कृष्णा अग्निहोत्री, इन्हीं आत्मकथाओं के नारी गूढ़ को गहराई से जानने के लिए और नारियों में चेतना जागृत करने के लिए मेरी इस विषय पर कुछ कार्य करने की रुचि जागृत हुई। इस विषय को गहन रूप से समझने के लिए मेरी नारी की आत्मकथाओं पर शोध कार्य करने की इच्छा बलवती हुई। विद्वानों एवं शोध निर्देशक से चर्चा, विचार–विमर्श और इस विषय पर किये गए शोध सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि दो हजार तक आत्मकथाओं पर कुछ न के बराबर ही शोध हुए है। इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन पर एकल लेखिकाओं पर ही शोध कार्य हुआ है जैसे– मैत्रेयी पुष्पा, मन्नू भण्डारी आदि। अतः मैंने "इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन" एक नवीन और मौलिक शोध का विषय चुना है।

इस शोध कार्य में 2001 से 2014 तक प्रकाशित, चुनिंदा, चर्चित एवं सर्वमान्य महिला साहित्यकारों के साथ शोध चयन कमेटी के निर्देशानुसार दलित

कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999 को भी शोध में सम्मिलित करने का निर्देश दिया गया है। शोध हेतु जिन आत्मकथाओं को लिया गया है वे हैं– मैत्रेयी पुष्पा– कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002; रमणिका गुप्ता– हादसे, 2005; सुशीला राय– एक अनपढ़ कहानी, 2005; प्रभा खेतान– अन्या से अनन्या, 2007; मन्नू भण्डारी– एक कहानी यह भी, 2007; मैत्रेयी पुष्पा– गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008; कृष्णा अग्निहोत्री– लगता नहीं है दिल मेरा, 2010; मैरी कॉम– मेरी कहानी, 2014 और कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999।

मेरा विश्वास है कि मेरे द्वारा किया गया "इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन" भावी अध्येताओं के मार्गदर्शन हेतु यह प्रस्तुत है, जो उनके लिए उपयोगी साबित होगी। स्पष्ट है कि यह शोध उन सभी के लिए अत्यंत उपयोगी व रूचिकर है जो आगे की पीढ़ी के शोधार्थियों की शोध श्रृंखला में एक कड़ी के रूप में सिद्ध होगा। इस शोध से हिन्दी साहित्य एवं आत्मकथा साहित्य की विषयवस्तु में एक महत्त्वपूर्ण योगदान होगा, ऐसी मेरी आशा है।

इस शोध–प्रबंध में महिला आत्मकथाओं के विश्लेषण हेतु समाजशास्त्रीय दृष्टि को आधार बनाया है जिससे आत्मकथा को मात्र वैयक्तिक सरोकारों से ही नहीं, सामाजिक सरोकारों से भी समझा जा सके। प्रत्येक आत्मकथा एक साहित्यिक कृति होने के साथ ही लेखक के जीवन का दर्पण तथा लेखक की दृष्टि से समाज का विश्लेषण भी होती है, इसलिए मैंने इनका विश्लेषण समाजशास्त्रीय विधि से करने का प्रयास किया है।

शोध–प्रबंध को सुचारु और सुविचारित विश्लेषण के लिए पॉच अध्यायों एवं उपसंहार में इस प्रकार विभाजित किया गया है :

प्रथम अध्याय : 'महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा' इसमें आत्मकथा की अवधारणा, आत्मकथा की परिभाषा, आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा, महिला आत्मकथा लेखन की शुरुआत तथा इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन का परिचय दिया गया है, जिसमें यह स्पष्ट किया गया है कि आत्मकथा लेखन

केवल मात्र किसी के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं होता है। नारी आत्मकथा में पात्रों का उल्लेख उस पर होने वाले अत्याचारों, मन की कुण्ठा, समाज व परिवार में उपयुक्त स्थान प्राप्त न होने, स्त्री होने के नाते कई प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहने के कारण, समाज में व्याप्त कई प्रकार के असामाजिक कृत्यों से परेशान होकर प्रेरणा के रूप में अपने को स्थापित किया है।

द्वितीय अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन' में पारिवारिक स्थिति जिसके अन्तर्गत महिला के विभिन्न संबंधों को स्पष्ट किया है साथ ही शिक्षा का स्तर बढ़ने से आत्मकथा लेखन में भी बढ़ोतरी हुई जिससे उसे समाज, परिवार द्वारा मन की स्वतन्त्रता प्राप्त हो, जिससे वह अपने पंखों को खोलकर उड़ सके। अपनी प्रतिभा को उजागर करके उड़ान भर सके। सपनों को वास्तविक धरातल पर उकेर सके तथा जीवन की कल्पनाओं को साकार कर सके आदि बिंदुओं का विश्लेषण किया गया है।

शोध विषय सामाजिक है जिसमें की नारी मुख्य केन्द्र बिन्दु रही है। इस दृष्टि से नारी की सामाजिक स्थिति का चित्रण किया है। भारत में आज भी नारी को चाहे वह शिक्षित हो या अनपढ़, पुरुषों की भाँति उसे ना तो विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है और न ही राय देने वाला आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त है, जबकि हमारी भारतीय संस्कृति में नारी की कभी पूजा होती थी। नारी की इन्हीं सब सामाजिक स्थितियों पर गहरी दृष्टि डाली गई है।

तृतीय अध्याय : 'इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन' में सभी विवेच्च आत्मकथाओं का विश्लेषण किया गया है यह विश्लेषण तीन स्तरों पर किया गया है 1. इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप, 2. महिलाओं की राजनीतिक स्थिति तथा, 3. पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियों का

विश्लेषण किया गया है। शोध में नारी से परिवार, समाज, देश की अपेक्षाएं पर गहरी दृष्टि का आकलन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : शोध प्रबंध के चतुर्थ अध्याय में 'नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन' के अन्तर्गत आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन, आर्थिक स्वातन्त्र्य और बनते बिगड़ते रिश्ते, रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़, कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन, आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान का विश्लेषण किया गया है।

पंचम अध्याय : शोध प्रबंध के पंचम अध्याय में 'इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन' के अन्तर्गत स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन। इक्कीसवीं सदी की आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति की वर्तमान स्थिति और सृजन विभिन्न जन–आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन, प्रतिरोध की स्थितियां और महिला आत्मकथा लेखन, शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन का वर्णन किया गया है।

उपसंहार : उपसंहार में शोध निष्कर्ष, उद्देश्य, संभावनाएं, पाठको के लिए साहित्यिक निष्कर्ष बताया है।

परिशिष्ट : परिशिष्ट में आत्मकथा के विभिन्न चरण, दलित आत्मकथा साहित्य एवं स्त्री आत्मकथा साहित्य को रेखांकित किया है। अंत में शोध संक्षेपण, आधार ग्रंथ सूची, संदर्भ ग्रंथ सूची एवं प्रकाशित शोध पत्र हैं।

मैं पूरे भरोसे के साथ आज यह कहने की स्थिति में हूँ कि वर्तमान सदी की स्त्री लेखिकाओं ने अपने लेखन में आधुनिक स्त्री जीवन के व्यापक आयामों को स्पर्श करते हुए स्त्री संबंधी अनेक पुराने व नये प्रश्नों को उठाया ही नहीं है, बल्कि उनके विकल्पों को भी चिह्नित किया है। कस्बों, गाँवों, शहरों से लेकर दूर दराज के देशों में काम करने वाली स्त्रियों के त्रासद अनुभवों को शब्द प्रदान किए हैं। टीएस इलियट के अनुसार, ''इतिहास जहाँ प्राचीनता में रमता है, वहीं

वह भविष्य में दृष्टि भी रखता है।'' इस सदी की लेखिकाओं ने प्राचीन ग्रंथों के नारी पात्रों का नये चिंतन के अनुरूप उनका मूल्यांकन भी किया है एवं आधुनिक स्त्री विरोधी रूढ़ परम्पराओं का पोस्टमार्टम भी किया है। इस सदी की स्त्री लेखिकाएं वर्तमान संस्कृति का वह इतिहास गढ़ने जा रही है, जहाँ आधी आबादी की उपेक्षा संभव नहीं होगी।

आभार

वह ईश्वर ही है, जो कण–कण में समाया है। कुछ करने की शक्ति हमें ईश्वर से ही मिलती है। इसलिए सबसे पहले परमपिता परमेश्वर के प्रति आभारी हूँ, जिसने मुझे शोध प्रबंध कार्य को सम्पादित करने की शक्ति प्रदान की।

प्रस्तुत पीएच.डी. शोध–प्रबंध की पूर्णता के लिए मैं सर्वप्रथम उन मनीषियों को नमन करती हूँ, जिनको विधाता ने एक अधिक मानवीय, अधिक सुंदर, प्रेमपूर्ण, मतभेदों रहित, विभाजन रहित, संवेदनशील सहानुभूतिपूर्ण और उच्चतर समरस पर आधारित दुनिया और संसार निर्मित करने की प्रेरणा दी। जिनकी असीम कृपा से ही मैं अपना यह कार्य पूर्ण करने का प्रयास कर पायी हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के लिए मैं अपनी शोध मार्गदर्शिका डॉ. लीला मोदी (विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, राजकीय वाणिज्य कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा) के प्रति अपने हृदय के गहनतम तल से आभारी व कृतज्ञ हूँ, जिनके अत्यधिक स्नेह, सहयोग, प्रोत्साहन, प्रेरणा व मार्गदर्शन से ही यह शोध–प्रबंध संभव हो पाया है।

मैं डॉ. शिवशरण कौशिक, सह–आचार्य, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, दौसा, पुस्तकालयाध्यक्ष, राजकीय महाविद्यालय, दौसा, राजेश पायलेट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लालसोट, दौसा, जानकी देवी बजाज राजकीय कन्या महाविद्यालय, कोटा, राजकीय महाविद्यालय कोटा, कोटा विश्वविद्यालय, कोटा एवं राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर का जिन्होंने मुझे अध्ययन हेतु शोध से संबंधित सामग्री उपलब्ध कराने में अपेक्षित योगदान दिया।

परिवार हमारे सभी प्रकार के संस्कारों की प्रथम पाठशाला है। अतः इस दृष्टि से मैं अपनी माता श्रीमती उर्मिला मीना एवं पिता प्रोफेसर भगवान सहाय मीना के प्रति श्रद्धानवत हूँ तथा उनको अपने जीवन की प्रत्येक उपलब्धि समर्पित करती हूँ।

मैं अपनी सास श्रीमती हरबाई मीना, ससुर श्री सरदार सिंह मीना, जेठ जी डॉ. रिषीकेश मीना, जिठानी डॉ. अंजु मीना, बड़ी बहिन डॉ. मंजु मीना, भाई डॉ. नरेन्द्र कुमार मीना, अपने जीजाजी डॉ. भरत सिंह मीना, डॉ. समय सिंह मीना तथा अपनी बहनों डॉ. प्रेमलता मीना, सुशीला, ममता, जागृति, प्रतिभा का जिन्होंने कार्य सम्पादन के साथ अत्यधिक स्नेह प्रदान किया।

साथ ही अपने पति डॉ. महेश चन्द मीना, जिन्होंने विषय–चयन से लेकर विषय–निर्वाह तक की समस्त कठिनाइयों को दूर करने में सहृदयता से सहयोग किया साथ ही इनके स्नेहाशीश से ही यह प्रयास संभव हो सका। मैं अपना पूरा शोध–प्रबन्ध अपनी दोनों पुत्रियों तनु व मनु को समर्पित करती हूँ जिनको मैं कभी भुला नहीं सकती और दोनों अपनी प्यारी–सी मुस्कान से हमेशा मेरा आत्मविश्वास बढ़ाती रही हैं साथ ही इस शोध–प्रबंध को पूरा करने के लिए प्रेरित करती रही हैं। इस शोध के माध्यम से उन विद्वजनों का भी आभार व्यक्त करती हूँ। जिनके सुयोग्य हाथों से यह शोध कार्य निरीक्षण हेतु प्रस्तुत होगा। अन्त में यह शोध–प्रबंध मेरे गुरु महाराज के चरणों में अर्पित करती हूँ जिनकी असीम कृपा और आशीर्वाद से मुझे यह शोध लिखने की शक्ति मिली।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुर्गुरूर्देवो महेश्वरः।

गुरूः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

दिनांक : 17. 04. 2018

हेमलता मीना

हेमलता मीना

(शोधार्थी)

अनुक्रमणिका

विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
अध्याय – 1 : महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा	1-69
अध्याय – 2 : इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन	70-136
अध्याय – 3 : इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन	137-199
अध्याय – 4 : नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन	200-271
अध्याय – 5 : इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन	272-339
उपसंहार	340-348
परिशिष्ट	349-361
शोध संक्षेपण	362-379
संदर्भ ग्रंथ सूची	380-385
प्रकाशित शोध–पत्र	386

अध्याय – 1

अध्याय – 1

महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा

1.1 आत्मकथा लेखन : अवधारणात्मक परिचय

1.2 आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा

1.3 इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन का परिचय

1.4 निष्कर्ष

अध्याय – 1

महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा

प्राचीन काल से ही भारत का इतिहास सामाजिक मान्यताओं, परम्पराओं, रीतिरिवाजों से गौरवशाली रहा है। भारत में जन्में ऋषि–मुनियों, राजा महाराजाओं का इतिहास अविस्मरणीय रहा है। भारतीय समाज में नारी को सर्वोच्च स्थान प्राप्त रहा है। वैदिक सभ्यता तथा उपनिषदों के ज्ञान से यह जानकारी प्राप्त होती है कि नारी का स्थान उच्च माना गया है। इसीलिए पति–पत्नी के नाम में भी सर्वप्रथम नारी का नाम आता है। ईश्वर में भी पत्नी की महिमा अपूर्ण होने से सदैव उच्च स्थान प्राप्त करती है। नारी का माता, पत्नी, बहिन, पुत्री आदि कई प्रकार के रिश्ते निभाने के कारण उसकी महिमा का वर्णन करना असंभव है। नारी वात्सल्य, ममता, मातृत्व, करुणा, ममत्व, दया सहानुभूति आदि गुणों से परिपूर्ण होती है। अतः नारी की महिमा का वर्णन शब्दों में असंभव है।

भारतीय समाज में नारी की महिमा का वर्णन अविस्मरणीय रहा है लेकिन फिर भी भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों में नारी को वह स्थान कभी प्राप्त नहीं रहा, जिसका वर्णन वैदिक काल व अन्य कालों में परम्पराओं व संस्कृति में परिलक्षित होता है।

वैदिककालीन सभ्यता में कुछ विदुषियों को पुरुषों के समान स्थान व सम्मान प्राप्त हुआ अन्यथा उससे पहले उन्हें शिक्षार्जन करने का अधिकार भी प्राप्त नहीं था, केवल नारी को उपभोग की विषयवस्तु समझा जाता था। उसका दायरा व क्षेत्र घर तक ही सीमित था। वह ब्याहकर ससुराल आती थी और उस घर से मृत्यु के बाद ही निकलती थी। समाज में उसे शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। लेकिन परिवर्तन और गतिशीलता सृष्टि का नियम है। इसी आधार पर समाज में उच्च शिक्षित परिवारों तथा महान ऋषिमुनियों, राजा

महाराजाओं की कन्याएँ शिक्षा प्राप्त करने लगी। धीरे–धीरे समाज में नारी को भी एक महत्वपूर्ण पद की प्राप्ति करना संभव हुआ।

1.1 आत्मकथा लेखन : अवधारणात्मक परिचय

भारत में आजादी के बाद समाज में परिवर्तन की स्थितियाँ बनने लगी। शिक्षा का प्रचार–प्रसार होने लगा। इससे हर व्यक्ति के मन की अभिव्यक्ति की अवधारणा सृजन करने लगी। नारी के द्वारा आजादी के युद्ध में भाग लेने से नारी शक्ति को एक नयी पहचान की प्राप्ति हुई। समाज में नारी का सम्मान प्राप्त करने के लिए अपने ममत्व को दबाकर, मन की उत्तेजनाओं को वह विभिन्न कलाओं के द्वारा कागज पर उतारने लगी। अपनी संवेदनाओं को लेखन तथा चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगी। इस प्रकार से नारी लेखन की परम्परा का प्रांरभ हुआ। धीरे–धीरे नारी के द्वारा समाज व देश के सभी क्षेत्रों में अपने कदम रखने प्रारम्भ किये। इसी के परिणामस्वरूप नारी लेखन सृजन विकास की ओर अग्रसर होने लगा। अपनी शोषित भावनाओं, करुणा, अपमान, दर्द, दुःख, पीड़ा, तिरस्कार, दुत्कार आदि को नारी ने अपनी सृजन क्षमता के द्वारा लेखन के रूप में चित्रण करना प्रारम्भ किया।

बीसवीं शताब्दी तक नारी लेखन में कुछ विशिष्ट नामों का उल्लेख भी होने लगा तथा समाज में उनकी लेखन क्षमता को प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ। नारी के द्वारा नारी की संवेदनाओं, ममत्व, मातृत्व तथा पीड़ा को उजागर करना आसान था, जिससे समाज की नारी को अपनी वास्तविक परिस्थितियों का सामना करने के लिए, संघर्ष करने के लिए एक हथियार की प्राप्ति हुई। इस कलम ने समाज में नारी के अस्तित्व तथा उसके स्थान के लिए पुरुष प्रधान समाज को सोचने पर मजबूर किया। इस प्रकार नारी लेखन से समाज में एक नये ज्ञान दीपक का उदय हुआ।

भारतीय आजादी के संघर्ष के दौरान राजाराम मोहन राय जैसे महान् व्यक्तित्व के द्वारा नारी उत्थान के प्रति किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप सती

प्रथा पर अंग्रेजों द्वारा रोक की व्यवस्था कानून द्वारा की गई। इसी प्रकार समाज में प्रताड़ित तथा नारी की पीड़ा व दुःख को उजागर किया गया। आजादी के संघर्ष में नारी शक्ति का भी अहम योगदान तथा भूमिका का निर्वहन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दिया। इसी प्रकार नारी के समाज में उत्थान के लिए कई प्रकार की संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हुआ। धीरे–धीरे महिलाओं में जागृति के परिणामस्वरूप नारी में सृजनशीलता का भी विकास हुआ। जिसे उसने गीत, गज़लों, कविताओं, कहानियों, लेखों आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। धीरे–धीरे समाज में कई प्रतिष्ठित महिलाओं के महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करने के कारण, उन्होंने अपने स्वयं के जीवन के बारे में लेखन प्रारम्भ किया, जिससे एक नये सूत्रपात आत्मकथा लेखन का उदय हुआ।

यदि हम आत्मकथा का विवेचनात्मक अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि एक आत्मकथा कुछ तत्त्वों के समावेश द्वारा ही पूर्ण होती है– एक लेखिका, उसका जीवन, वातावरण व शैली तथा संवाद और उद्देश्य जिनके लिए आत्मकथा लिखी गई है। यह सत्य है कि व्यक्ति अपनी स्वयं की आत्म संतुष्टि तथा शांति के लिए आत्मकथा का सृजन करता है इसका जो वास्तविक पहलू है कि सत्य को तटस्थता के साथ उजागर करना, वही सबसे कठिन कार्य है अनुभवों तथा संबंधों की प्राप्ति सुख–दुःख तथा अन्य भावनात्मक पहलुओं को उजागर कर एक लेखिका अपने वर्तमान में बंवडर, भूचाल लाने के लिए निकल पड़ती है जिसकी गाज किस पर कितनी गिरेगी यह स्वयं उसे भी पता नहीं होगा, भविष्य में क्या होगा तथा आत्मकथा के पश्चात् उसके जीवन में किस प्रकार के परिवर्तन व बदलाव और उसे देखने या सहने को प्राप्त होंगे, सोचकर ही दिल सिहर उठता है कि यह कार्य सोचने में जितना आसान प्रतीत होता है, वास्तविकता में नहीं है।

''आत्मकथा वास्तव में आत्मकथाकार के व्यक्तित्व के बनने बिगड़ने की कथा है। व्यक्तित्व निर्माण की, व्यक्तित्व विकास की, जीवन के उतार–चढ़ाव की कथा है। उसके व्यक्तित्व को आकार देने या बिगाड़ने के लिए जिनका

सहयोग रहा, उन्हीं का उसी सीमा तक वह चित्रण करें। अपनी ओर से उन लोगों के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने का या उनके सम्बन्ध में कोई निष्कर्ष देने का कोई अधिकार उसे नहीं है।'' अर्थात् आत्मकथा में वह खुद नंगा हो जाये, (उसे नंगा होना ही चाहिये, यही ईमानदारी है।) परन्तु उसके जीवन में आये किसी और को नंगा करने का कोई अधिकार उसे नहीं है। यह वह लक्ष्मण रेखा है।''[1]

आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ

आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति के संबंध में संस्कृत आचार्यों ने कहा है कि इस शब्द की उत्पत्ति ''आत्मन और कथा से हुई है। विभक्ति तत्पुरुष के नियम के अनुसार इसमें से पूर्वपद की विभक्ति का लोप हुआ है। इस शब्द के विग्रह हैं– आत्मनःकथा, आत्मना कथा, और आत्मने कथा।''[2]

संस्कृत के आचार्यों ने इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जहाँ अपने ही विषय में बात की जाए, वही आत्मकथा है। इस अर्थ को और स्पष्ट करते हुए विद्वानों ने कहा है कि अपनी कहानी, अपने द्वारा कही या लिखी हुई कहानी और अपने ही विकास और अतीत के दर्शनार्थ लिखित कथा आत्मकथा है।

आत्मकथा की परिभाषाएँ

''स्वजीवन का वृतान्त आत्म–चरित्र है।''[3]

– आदर्श हिन्दी कोश

''यह आत्मन् शब्द का समाज व्यवहृद रूप है, जिसका अर्थ है अपने निज का, आत्मा का, मन का, कथा का अर्थ जीवन कहानी। अतः आत्मकथा का अर्थ हुआ स्वलिखित जीवन चरित्र।''[4]

– वृहद् हिन्दी कोश

''जीवन की मुख्य बातों के वर्णन को आत्मकथा का प्रधान गुण माना जाता है।''[5]

– मानक हिन्दी कोश

''आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सबलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है जो उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उद्‌घाटन में समर्थ होना है।''[6]

– डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत

''आत्मकथा समय प्रवाह के नीचे तैरने वाले व्यक्ति की कहानी है। इसमें जहाँ व्यक्ति के जीवन का जौहर प्रकट होता है वहाँ समय की प्रवृत्तियां और विकृत्तियां भी स्पष्ट होती है।''[7]

– डॉ. श्याम सुन्दर घोष

''आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथ की रचना नहीं करता। कोई स्वप्न सृष्टि नहीं रचता वरन् अपने गत जीवन खट्‌टे–मीठे, उजले–अंधेरे, प्रसन्न–विषण्ण, साधारण–असाधारण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है, अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेना है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य सम्बन्ध सूत्रों का अन्वेषण करना है।''[8]

– डॉ. नगेन्द्र

''कोई भी महान या साधारण व्यक्ति जब अपने सुख–दुःख प्रेम वियोग, पीड़ा और आनन्द की कहानी ईमानदारी से ऐसे सरल शब्दों में, प्रवाहमयी भाषा में लिख सके, जिससे पाठक भावाविभूत हो जाए तो ऐसी रचना को आत्मकथा मानना ठीक होगा। आत्मकथा शिल्प नवीन भावाभिव्यक्ति की सहजता में अपनी प्राणप्रतिष्ठा करता है। इस रचना का कोई सुस्थिर विधान कभी भी मानव और प्रकृति से निश्चित नहीं किया जा सकता।''[9]

– डॉ. रत्नाकर पाण्डेय

''आत्मकथा लिखना सुखद कार्य तो है क्योंकि उसमें व्यक्ति को अपने विषय में कहने का अवसर मिलता है, पर वह कठिन इसलिए है कि उसमें लेखक को निष्पक्ष होना पड़ता है, अपने दोषों को भी प्रस्तुत करना पड़ता है, जो सहज कार्य नहीं।''[10]

– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्ता

''आत्मकथा लेखक जितना अपने बारे में जान सकता है, उतना लाख प्रयत्न करने पर भी कोई दूसरा जान नहीं सकता किन्तु इसमें कहीं तो स्वाभाविक आत्मश्लाधा की प्रवृत्ति बाधक होती है और किसी के साथ शील संकोच आत्मप्रकाश में रुकावटें डाल देना है। यद्यपि सत्य के आदर्श से दोनों ही प्रवृत्तियां निन्ध हैं, तथापि आत्मविस्तार कुछ अधिक अवांछनीय है।''[11]

– बाबू गुलाब राय

''आत्मचरित्र जीवनी साहित्य का उन्नतिशील अंग है जैसा इस शब्द से स्पष्ट है कि आत्मचरित्र वह है जिसमें चरित्रनायक ने स्वयं अपनी जीवनी लिखी हो। लेखक स्वयं अपना जीवन चरित्र लिखता है– आत्मचरित्र आत्मपरिचय का साधन है। लेखक आत्मचरित्र में अपने मस्तिष्क के विकास क्रम को लिखता है। वह स्वयं अपने मस्तिष्क का अध्ययन करता है, आत्मनिरीक्षण और आत्मविवेचन करता है।''[12]

– डॉ. चन्द्रावती सिंह

''आत्मसमीक्षण की प्रवृत्ति से अनुप्राणित लोककल्याण की बुद्धि ही वास्तविक आत्मकथा की प्रेरक होती है। ऐसी ही आत्मकथा कल्याण पथ के पथिक के जीवन में सच्चे मार्ग प्रदर्शन का काम करती है।''[13]

– गंगा प्रसाद

''आत्मकथा की सबसे आसान परिभाषा है 'स्व' के जीवन की कथा वस्तुतः 'स्व' को किसी न किसी स्तर पर अभिव्यक्ति करने की इच्छा शाश्वत एवं विश्वजनीत है।''[14]

– डॉ. नारायण विष्णु शर्मा

''आत्मकथा वस्तुतः किसी भी व्यक्ति स्वयं लिखित अपने जीवन का इतिहास है। उसके 'स्व' की कहानी है, जहाँ वह अपने अर्न्तबाह्य जीवन की सुन्दर झांकी प्रस्तुत करता है।''[15]

– सरोज जग्गी

''आत्मकथा गद्य का रुप है, विश्लेषण निःसंकोच रूप से करना है, इसके साथ ही बाह्य विश्व से सम्बन्धित मानसिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं का विवेचन कलात्मक रूप से करता है।''[16]

– डॉ. शांति खन्ना

''जब कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तो उसे आत्मकथा कहते हैं साहित्य की इस विधा में लेखक वर्णनात्मक शैली में अपने जीवन का ऐसा क्रमिक ब्यौरा प्रस्तुत करता है कि न केवल उसके जीवन को संजीवनी प्रदान करने वाली मूल शक्ति का पता चलता है अपितु उसका अन्तबाह्य व्यक्तित्व भी साकार हो उठता है।''[17]

– ओमप्रकाश सिंहल

"The story of one's life written by himself"[18]

-Oxford Dictionary

"Autobiography (Auto + Biography) the writing of one's won history. The story on one's life written by himself."[19]

-Shorter Oxford English Dictionary

"Autobiography is the narration of man's life by himself."[20]

-Cassels Encyclopedia of Literature

"The author of an autobiography presents a continuous narrative of the major events of his past."[21]

-A Reader's Guide to Literary Terms

"Autobiography is on the contrary historical in its method and at the same time, the reprehension of the self in and through its relations with the outer world."[22]

-Dr. Roy Pascal

"The autobiography proper is a connected narrative of the author's life with stress laid on introspection or on the significance of his life against a wider background."[23]

-J.T. Shipley

"Honsetly is the greatest stumbling book of the autobiographer. The resolution to tell truth a lot onself takes a separation rigor of character and ability to do so requires a mere than common insight."[24]

-Johnson

"If I did not take an immense interest in life through the medium of myself. I should not have embarked upon analysis.[25]

-H.G.Wells

"Or it is an effort to give a view of the artist."[26]

-Dr. D. G. Naik

आत्मकथाओं की इन सभी परिभाषाओं से निम्न तथ्य उभरते हैं :

1 आत्मकथा जीवन के जिए हुए क्षणों का ब्यौरा है।

2 आत्मकथा में जीवन का आत्म निरीक्षण एवं विश्लेषण आवश्यक है।

3 आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है।

4 आत्मकथा लेखक ही लेखन का विषय है।

5 आत्मकथा व्यक्ति तथा वस्तुलक्षी दोनों होती है।

6 आत्मकथा में सत्य तथा यथार्थ का होना आवश्यक है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मकथा साहित्य का वह प्रकार है, जिसमें लेखक अपने लिए हुए जीवन की मुख्य घटनाओं का विवरण सत्य एवं यथार्थ की भूमिका पर आत्मनिरीक्षण एवं परीक्षण करते हुए प्रस्तुत करता है। इन सभी परिभाषाओं के बाद आत्मकथा के विषय में कहा जा सकता है कि–''आत्मकथा मानव मन रूपी जगत में स्थित वह स्थाई प्रज्ञा है जो समय आने पर अपने प्रकाश द्वारा आत्मकथाकार की लेखनी से निकलकर पाठकों एवं समाज को आलोकित करती है।

आत्मकथा

''जब लेखक किसी अन्य व्यक्ति के जीवन चरित्र को चित्रित करने की अपेक्षा अपने ही व्यक्तित्व का विश्लेषण विवेचन पूर्ण रूप से करता है, तब वह आत्मकथा कहलाती है। आत्मकथा का नायक लेखक स्वयं होता है।

इसमें लेखक अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करता है। आत्मकथा लेखक आत्म–विवेचन, आत्मविश्लेषण के दृष्टिकोण से तो लिखता ही है इसके साथ वह आत्म प्रचार की भावना से भी व्यक्तिगत जीवन का विवेचन करता है। वह चाहता है कि उसके अनुभवों का लाभ अन्य लोग भी उठा सकें। इस प्रकार गद्य साहित्य की इस विधा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः स्पष्ट है कि जब लेखक अपने जीवन का विश्लेषण, विवेचन स्पष्ट रुप से करता है, तब वह ''आत्मकथा'' कहलाती हैं। जीवनीपरक साहित्य का वह अन्यतम भेद है। आत्मकथा लेखक साहित्यिक, राजनीतिक, धार्मिक कोई भी व्यक्ति हो सकता है, परन्तु लेखक का सर्व प्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य होना आवश्यक है।''[27] वह आत्म प्रचार चाहता है, अपने व्यक्तित्व का उभार चाहता है और अपने विचारों, मनोभावों के प्रति समाज की सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है। ''वह आत्म अध्ययन और आत्म विश्लेषण कर विश्व और मानव समाज को समझना चाहता है। वह नित्य छानबीन में लगा है और उसमें वह अपनी परीक्षा किया करता है।''[28] ''आत्मकथाकार अपने संबंध में किसी मिथक की रचना नहीं करता, कोई स्वभाव दृष्टि नहीं रचता, वरन अपने गत जीवन के खट्टे–मीठे, उजले–अंधेरे,

प्रसन्न–विषण्ण, साधारण–असाधारण संरचना पर मुड़कर एक दृष्टि डालता है अतीत को पुनः कुछ क्षणों के लिए स्मृति में जी लेता है और अपने वर्तमान तथा अतीत के मध्य संबंध सूत्रों की अन्वेषणा करता है।''[29] ''आत्मकथा लिखना सुखद कार्य तो है, क्योंकि उसमें व्यक्ति को अपने विषय में कहने का अवसर मिलता है पर वह कुंठित इसलिए है कि उसमें लेखक को निष्पक्ष होना पड़ता है। कटु सत्यों का उद्घाटन करना पड़ता है, अपने दोषों को भी प्रस्तुत करना पड़ता है जो सहज कर्म नहीं।''[30] ''आत्मकथा समय प्रवाह के बीच तैरने वाले व्यक्ति की कहानी है। इसमें जहाँ व्यक्ति के जीवन का जोहर प्रकट होता है। वहाँ समय की प्रवृत्तियां और विकृत्तियां भी स्पष्ट होती है। इन दोनों के घात–प्रतिघात से ही आत्मकथा में सौन्दर्य और रोचकता का समावेश होता है।''[31] ''आत्मकथा गद्य का वह रुप है जिसमें लेखक जागरुक होकर व्यक्तिगत जीवन का निःसंकोच रूप से विवेचन विश्लेषण प्रस्तुत करता है और उसकी बाह्य विश्व संबंध मानसिक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं का कलात्मक रूप में अंकन होता है।''[32] ''आत्मकथा जीवन का सत्यान्वेषण है कल्पना के अवकाश की कोरी उड़ान नहीं है। आम आदमी का जीवन प्रेरणास्पद नहीं हो सकता, महान् व्यक्तियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व आम आदमी के लिए दिशा बोध का काम करता है उनके जीवन के आदर्शनिष्ठ मूल्यों को स्वीकार करता हुआ उस पथ पर अपने आप को ढालने का प्रयास करता है। आत्मकथा सत्य एवं स्पष्टवादिता को लेकर चलती है।''[33] ''जो स्वयं मेघ की तरह उमड़कर बरस जाता है– जो स्वयं फूल की तरह खिलकर झड़ जाता है। अनासक्त अभिव्यक्ति के बिना साहित्य की यह सत्यधर्मी विधा अपनी स्पष्ट प्रमाणिकता नहीं स्थापित कर सकेगी। आत्मकथा का शाब्दिक जलप्रपात बुद्धि से नहीं अन्तःकरण से निकलता है।''[34] ''मैं चाहता हूँ कि लोग मुझे मेरे सरल, स्वाभाविक और साधारण स्वरूप में देख सके– सहज, निष्प्रयास प्रस्तुत क्योंकि मुझे अपना ही तो चित्रण करना है मैं अपने गुण–दोष जग–जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ पर ऐसी स्वाभाविक शैली में लोकशील से मर्यादित हो। यदि मेरा जन्म उन जातियों में हुआ होता जो आज

भी प्राकृतिक नियमों की मूलभूत स्वच्छंदता का सुखद उपभोग करती तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बड़े आनंद से अपने आपको आपादमस्तक एकदम नग्न उपस्थित कर देता।''[35] ''जिस समय जैसी भावना मेरे मन में थी और जिन उद्देश्यों से प्रेरित होकर जो काम मैंने किया है तथा जिस प्रकार मेरे कार्यों में विघ्न बाधाएं उपस्थित हुई हैं, उनका मैंने यथातथ्य वर्णन किया है।''[36] ''आत्मकथा प्रायः उसी पुस्तक को कहते हैं जिससे लेखक स्वयं अपने सम्पूर्ण जीवन का ब्यौरा प्रस्तुत करता है, भले ही उसमें आन्तरिक जीवन या चरित्र पर अधिक बल दिया गया है।''[37] '' आत्मकथा अपने संबंध में स्वयं कही या लिखी हुई बातें साहित्य में ऐसी पुस्तक जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने जीवन की मुख्य–मुख्य बातों का वर्णन किया हो।''[38] ''आत्मकथा लेखक के अपने जीवन से संबंध वर्णन है। आत्मकथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्त्व दिखलाया जाना संभव है।''[39]

''उपन्यास कहानी का पाठक पात्रों के चेहरों की कल्पना करता है, उनके दिलों की हलचल से उनके नैन–नक्श की कल्पना करता है पर किसी भी आत्मकथा का पाठक अपना सारा ध्यान एक ही जाने हुए चेहरे पर केन्द्रित करता है। इसमें लेखक और पाठक परस्पर सम्मुख होते हैं। यह लेखक का अपने घर में पाठक को निजी बुलावा देते हैं, संकोच की ड्योढ़ी के भीतर की ओर।''[40]

आत्मकथा के रचना तत्व

आत्मकथा के रचना तत्वों पर दृष्टि डालने पर हमें आत्मकथा के दो प्राथमिक तत्व मिलते हैं–आत्म और कथा। इनमें से 'आत्म' तत्व निश्चित सा ही है 'कथा' तत्व विशिष्ट और व्याख्या सापेक्ष है। इसके अतिरिक्त तीसरा तत्व है–'परिवेश'। वास्तव में इनके कलात्मक संयोजन और 'प्रभावपूर्ण लेखन से ही आत्मकथा' आकार पाती है।

आत्म तत्व

आत्मकथा के रचना तत्व में आत्म तत्व ही मुख्य होता है। आत्म तत्व का आशय है, लेखक का जीवन जिसका वह उद्घाटन और विश्लेषण करता है।

आत्मकथा का नायक उसका लेखक होता है। पाठक उसके जीवन के बारे में जानना चाहता है। अन्य पात्रों से उसके सम्बन्धों तथा परिस्थितियों एवं आत्मश्लाघा एवं संकोच की भावना दोनों ही सत्य को विकृत करने में सहायक होते हैं। लेखक को दोनों प्रवृत्तियों से बचना चाहिए। आत्म तत्व की अभिव्यक्ति में तटस्थता का गुण बहुत जरूरी है। उदारता और विशद दृष्टि से युक्त लेखक अपने पाठकों के प्रति सच्चा न्याय कर सकता है।

एच.जी.वेल्स ने कहा है कि यदि आप लेखक की अहं भावना से बचना चाहते हैं तो आप आत्मकथा को मत पढ़िये। इसका स्पष्ट आशय यह भी है कि आत्मकथा में लेखक का अहंकार दूषित प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। डॉ. शशिभूषण सिंह की यह टिप्पणी महत्वपूर्ण है कि लेखक अपने जीवन को जितनी तटस्थता से वर्णन करके अनुभवों के विवेचन में जितनी गहराई लाता है, आत्मकथा उतनी ही प्रामाणिक और प्रभावी बन पड़ती है। आत्मकथा में लेखक अपने स्वभाव राजनीतिक एवं धार्मिक विश्वासों, आर्थिक समस्याओं एवं सभी बातों की खुलकर चर्चा करता है। पाठक इसके सच्चे मित्र की तरह उसके जीवन रहस्यों में प्रवेश कर जाता है। पाठक इस बात को भी आसानी से गोपनीय रखना चाहता है। ऐसी अनुभूति लेखक के पक्ष में ठीक नहीं है।

कथा तत्व

आत्मकथा में केवल वास्तविक तथ्यों को बिना किसी मिलावट या बदलाव के रखा जाता है। यदि कोई लेखक कल्पना का उपयोग करते हुए उनमें फेरबदल करता है तो वह रचना आत्मकथा के बदले उपन्यास कहलायेंगी। आत्मकथा में आभ्यंतर या निजी सच को विन्यस्त किया जाना है। जबकि उपन्यास में वस्तुगत सच को कल्पना के योग से अंतरंग अनुभव का स्वरूप प्रदान किया जाता है। उपन्यास का कथानक क्रमशः विकसित होता है, उसी प्रकार व्यक्ति का जीवन जन्म के बाद क्रमशः विकसित होता है तथा व्यक्ति का जीवन जन्म के बाद क्रमशः शक्तिमान होता जाता है। उसके मार्ग में बाधायें आती हैं। साहस और बुद्धि के प्रयोग से वह उन पर विजय प्राप्त कर अपने

लक्ष्य की ओर बढ़ता रहता है। आत्मकथा में इन सारी बातों का विवरण ही कथा होती है। आत्मकथा में कलात्मकता या साहित्यिकता का होना जरूरी है अन्यथा वह शुष्क इतिहास मात्र बनकर रह जाती है।

परिवेश

आसपास का वातावरण ही परिवेश कहलाता है। परिस्थितियों में घात प्रतिघात से व्यक्ति का निर्माण होता है। इन विषम परिस्थियों की आँच में पककर ही व्यक्ति रचना करता है। परिवेश के चार प्रकार दिखाई देते हैं। पारिवारिक परिवेश, वर्ग परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश तथा भौगोलिक परिवेश। व्यक्ति परिवार में रहता है। उसके माता–पिता, भाई–बहन एवं अन्य रिश्तेदारों के व्यक्तित्व की छाप उस पर पड़ती है। वह इन प्रभावों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वर्ग के तीन प्रकार होते हैं– उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग। आत्मकथाकार जिस वर्ग से जुड़ा हुआ होता है, उसका अच्छा–बुरा प्रभाव पड़ता है। सांस्कृतिक परिवेश के अन्तर्गत नैतिक मूल्य, सौन्दर्यदृष्टि, सहृदयता, सदाशयता, कार्यकलाप, विचार भाव तथा मानसिक तथ्य का समावेश होता है। भौगोलिक परिवेश में हर व्यक्ति प्रभावित होता है। उसका वर्णन आत्मकथा में होता है। परिवेश के अन्तर्गत राजनीतिक परिवेश का भी समावेश करना चाहिए। स्वातंत्र्योत्तर भारत में आपातकाल कांग्रेस की हार, जनता सरकार का गठन, पुनः कांग्रेस का सत्तासीन होना आदि घटनायें ऐतिहासिक सत्य है। आत्मकथाकार इन घटनाओं की उपेक्षा करके नहीं चल सकता है।

अतीत का रूपान्तरण

आत्मकथा में स्मृति के माध्यम से जीवन का पुनःनिर्माण किया जाता है। पुनःनिर्माण का अर्थ है स्मृति जीवन के अतीत का प्रामाणिक दस्तावेज हो। इस सम्बन्ध में गार्सिया मार्वेज का कथन महत्वपूर्ण है–"आत्मकथा में जीवन वह

नहीं होता है, जिसे वह याद करता है और याद करने की प्रक्रिया भी कहने या लिखने की आकांक्षा के अनुरूप होती है।"

आत्मकथा के तत्व

आत्मकथा के तत्वों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभिन्नता दिखाई देती है। डॉ. चन्द्रावती सिंह ने जीवनी के तत्वों को ही आत्मकथा के तत्व मानकर विवेचन किया है। उनके द्वारा दिये हुए तत्व हैं–"व्यक्तिगत जीवन की ऐतिहासिक सत्यता, तटस्थ वैज्ञानिकता और मनोविश्लेषणात्मकता।" डॉ. सरोज जग्गीने आत्मकथा के तत्वों का विवेचन इस प्रकार किया है, "वैयक्तिकता, सामाजिकता, रोचकता, कला पक्ष का उल्लेख आत्मकथा के गुणों के रूप में भी किया जाता है।" डॉ. खन्ना ने कहानी, उपन्यास के संवाद तत्व को छोड़ दिया है। सुश्री जनक दुलारी ने जीवन–चरित्र की तरह आत्मकथा के भी पाँच तत्वः वर्ण्य–विषय, चरित्र.–चित्रण, देशकाल, उद्देश्य और शैली माने हैं। डॉ. कमलेश सिंह ने आत्मकथा के सम्बन्ध में 'आत्मतत्व' को आत्मकथा का पहला तत्व माना है। वे आत्मतत्व के रूप में वैयक्तिकता, आत्मउद्घाटन, आत्मविश्लेषण तथा आत्मगोपन का विवेचन–निरूपण करती है। डॉ. विश्वबन्धु 'व्यथित' के अनुसार प्रत्येक विधा में कुछ मुख्य और कुछ गौण तत्व होते हैं। उनके अनुसार वर्ण्य–विषय, चरित्र–चित्रण, उद्देश्य संवाद और परिवेश मुख्य तत्व हैं।

कथावस्तु

आत्मकथा में वर्ण्य विषय स्वयं लेखक को जाता है। आत्मकथा में लेखक कथावस्तु का आधार है। वह कथावस्तु में अपने ही जीवन को व्यक्त करता है। कारण यही है कि वह अपने विषय में अधिक जानता है। अन्यत्र उसकी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती है। इसमें लेखक के जीवन में घटित सभी क्रियाओं और घटनाओं का अंकन मिलता है, विशेषतः उस घटना का जिसका विशेष प्रभाव रहा है। जिसके फलस्वरूप ही उसे जीवन में सर्वश्रेष्ठता प्राप्त हो सकी है। आत्मकथाकार अपने कथानक का मुख्य विषय होता है।

आत्मकथा की कथावस्तु सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक क्षेत्र में योगदान देने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है। वैसे आम मनुष्य भी अपनी आत्मकथा लिख सकता है। लेखक के विचार, भावना, व्यंग्य आदि का वर्णन है। आत्मकथा की कथावस्तु के लिए यह अनिवार्य है कि इसमें किया गया वर्णन क्रमबद्ध, रोचकता से युक्त और संवेदनशील हो।

आत्मकथा में लेखक अपने जन्म से या उसके पूर्व भी अपने माता–पिता या पूर्वजों की वंशावलि से अपने जीवन की कहानी को प्रारम्भ करता है। वास्तव में ये सारी घटनाएँ लेखक के प्रत्यक्ष अनुभव का विषय नहीं होती, अपितु सुनी सुनाई होती है। कई लेखक पृष्ठभूमि के रूप में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण करते हुए स्वयं की कहानी लिखते हैं। ऐसे चित्रण में लेखक के अनुभव की कमी होती है। वह सुनी–सुनायी बातों का अध्ययन करने के आधार पर चित्रण करता है। लेखक प्रायः अपने बाल्यकाल की स्मृति से अपनी आत्मकथा का प्रारम्भ करता है, यह स्मृतियाँ सात–आठ वर्ष की अवस्था से जुड़ी हुई होती है। कई लेखक तीन–चार साल की आयु की घटनाओं का भी वर्णन किया करते हैं। लेखक पाठक की जिज्ञासा की पूर्ति के लिए अपने जन्म, बाल्यकाल, शिक्षा–दीक्षा, नौकरी–व्यवस्था, शादी–ब्याह, पारिवारिक जीवन एवं जीवन संघर्ष का वर्णन करता है।

अधिकांश लेखक अपने पूर्व जीवन के सभी घटना–प्रसंगों की आत्मकथा का वर्ण्य विषय न बनाकर किसी विशिष्ट भाग–बाल्यकाल, यौवनकाल, संघर्षकाल या जीवन के विशेष कार्यों, परिस्थितियों के घात–प्रतिघातों को ही अपनी आत्मकथा का विषय बनाते हैं। ऐसी आत्मकथाओं में लेखक के जीवन का सम्पूर्ण चित्रण न होकर केवल खण्ड चित्र होता है। ऐसी आत्मकथाएं खण्ड आत्मकथाएं कहलाती है। इसमें जीवन का बहुआयामी या बहुरंगी चित्रण न होकर किसी एक पक्ष का चित्रण होता है। आत्मकथा के अनेक भाग होते हैं या एक भाग भी होता है। मध्यम आकार की आत्मकथा पाठक को प्रोत्साहित किया करती है। कथावस्तु में सत्य का वर्णन वास्तविकता, अनुभव का महत्व, स्मृति,

स्वाभाविकता, कौतूहल एवं जिज्ञासा, मनोरंजकता, उदात्तता, वैयक्तिकता, समन्वय, सु–सूत्रता, क्रमबद्धता आदि का महत्व होता है।

चरित्र चित्रण

आत्मकथा में स्वयं लेखक ही नायक होता है। यही चरित्र चित्रण का मुख्य आधार स्तम्भ ही है। नायक याने आत्मकथाकार किन परिस्थितियों में किस प्रकार संघर्ष करते रहा है, किन परिणामों में अपनी दुर्बलता और कष्ट, साथ ही अन्य किसी प्रभाव के कारण किस प्रकार वह प्रभावहीन या निष्प्रभ सिद्ध की गई और किस प्रकार संकटों, समस्याओं से निकलकर वह अपने आपको किस प्रकार इच्छित मार्ग पर ला सका आदि का वर्णन चरित्र–चित्रण में किया जाता है। नायक में धीरगंभीरता, धीर प्रशांतता के दर्शन मिलते हैं। आत्मकथा का नायक साधारण मनुष्य से लेकर उच्चभ्रू मनुष्य हो सकता है। आत्मकथा के इस तत्व में स्वयं लेखक प्रधान पात्र हैं और उसके सम्पर्क में आये हुए अन्य लोग गौण पात्र माने जाते हैं। आत्मकथा में नायक का परिचय स्वयं उसकी वाणी से तो मिलता ही है, साथ में उसके आचार–विचार, भावना, सुख–दुख, सबलता, दुर्बलता का परिचय स्वयं के साथ–साथ अन्य लोगों के अर्थात् गौण पात्र वार्तालाप के द्वारा प्राप्त होता है। आत्मकथा में आन्तरिकता का वर्णन है जिसके फलस्वरूप उसके साहस, शक्ति एवं उत्साह का रेखांकन करता है। आत्मकथा की सारी घटनाएँ कथानक के इर्द–गिर्द घूमती हैं। पात्र के कारण ही कथावस्तु को गति मिलती है। आत्मकथा में लेखक के यथार्थ चित्रण, आत्माभिव्यक्ति, आत्मनिरीक्षण, अतीत के पुनःप्रत्यक्षीकरण का महत्व होता है। आत्मकथा में अन्य पात्रों का चित्रण आवश्यकता होने पर किया जाता है। अनावश्यक एवं आत्मेतर पात्रों के अनावश्यक विस्तार को टाला जाता है। केन्द्र में 'आत्मा' को ही रखा जाना है। आत्मकेन्द्रित होना आत्मकथा की अनिवार्य शर्त मानी जाती है। नायक या आत्मकथा लेखक के व्यक्तित्व का विकास, उसके मानसिक द्वंद के साथ–साथ उसके अन्तर्साहित्य संघर्ष का चित्रण करना चरित्र–चित्रण की सार्थकता मानी जाती है।

देशकाल वातावरण

आत्मकथा में लेखक के मन की स्थिति अर्थात् अन्तःस्थिति और बाह्य परिवेश अर्थात् देशकाल वातावरण में प्रभाव–परिणाम का चित्रण होता है। लेखक अपने मन की उलझनों, अपने अनुभवों, भावनाओं एवं संवेदनाओं के सम्प्रेषण हेतु आत्मकथा का सृजन करता है। उसकी पूर्ति हेतु बाह्य परिवेश सहायक सिद्ध होता है। परिवेश के आधार पर ही लेखक अपनी याद को अभिव्यक्त करता है। वह भूतकाल के साथ–साथ वर्तमान संदर्भ में अतीत की घटनाओं का मूल्यांकन भी करता है। देशकाल वातावरण से लेखक के तत्कालीन मानसिकता के कारणों की जानकारी होती है। पाठक गण लेखक के भूतकाल में प्रवेश कर उसके अनुभवों, संवेदनाओं के साथ जुड़ जाता है। देशकाल वातावरण के द्वारा लेखक भूतकाल को वर्तमान के साथ जोड़कर हमारे सामने प्रस्तुत करता है। लेखक भौगोलिक, प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, औद्योगिक, पारिवारिक, आध्यात्मिक, नैतिक परिवेश आदि से उस सीमा तक वह प्रभावित होता है। अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना का अतिरंजन, कल्पित वातावरण की सृष्टि, आत्मकथा की यथार्थता और सत्य मार्ग की बाधा सिद्ध होती है। आत्मकथा के कार्य क्षेत्र के अनुसार वातावरण आता है। यदि आत्मकथाकार राजनेता है तो वह अपने राजनीतिक वातावरण से अपनी कर्त्तव्यदक्षता का परिचय पाठक को देता है साथ ही उसके उत्थान और पतन की परिस्थिति को उद्‌घाटित करता है। इस तत्व में वह कल्पना से अधिक वातावरण सत्य घटनाओं को व्यक्त करता है।

संवाद

आत्मकथाकार अपने इस 'स्व' परिचय की रचना में स्वयं के विचार, इच्छा, आकांक्षा, स्वप्न, भावना, दृष्टिकोण को भावना द्वारा ही व्यक्त करेगा। प्रत्येक संवाद या वार्तालाप से स्वयं का ही परिचय मिलेगा। साथ ही विशेष दृष्टिकोण पर अपने आचार–विचार, भाव–सिद्धान्त को स्पष्ट करेगा। आत्मकथा के संवाद पाठक से सम्पर्क स्थापित करने योग्य हृदयस्पर्शी होने चाहिए। संवाद स्पष्ट और

भावपूर्ण होना आवश्यक है। साथ ही वे सहज, छोटे–छोटे होने चाहिए। इसी कारण उनका प्रयोग क्रमबद्ध और सुसंगत तरीके से युक्त होना अनिवार्य है। आत्मकथा को शैली में प्रथम–पुरूष का प्रयोग होने के कारण संवाद का गौण स्थान होता है। आत्मकथा समीक्षकों ने संवाद का गौणतत्व देखकर इसे आत्मकथा के तत्व के रूप में स्वीकारने पर आपत्ति उठाई है। संक्षिप्त चुस्त, सरल भावपूर्ण सार्थक, कथानुकूल संवाद आत्मकथा की शक्ति है तो असंतुलित, अपरिष्कृत, ग्राम्य अनावश्यक संवाद दोष माने जाते है।

1.2 आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा

संक्षिप्त परिचय

प्राचीन काल से जब व्यक्ति ने अपनी अभिव्यक्ति को चित्रों आदि के माध्यम से चित्रित करना प्रारम्भ किया। तभी से आत्मकथा लेखन प्रांरभ हो गया था। व्यक्ति अपनी भावनाओं व संवेदनाओं की अभिव्यक्ति चित्रों तथा रेखाओं के माध्यम से करने लगा। धीरे–धीरे यह मूर्तिकला के रूप में भी प्रदर्शित किया जाने लगा। व्यक्ति अपनी भावनाओं आदि को चित्रों तथा मूर्ति के रूप में भी अभिव्यक्त करने लगा।

अठारहवीं शताब्दी तक व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति, लेखों, पत्रों आदि के माध्यम से करने लगा। अनौपचारिक तौर पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के पत्रों, लेखों आदि को आत्मकथा के परिचय के रूप में देखा जाने लगा लेकिन पूर्ण रूप से औपचारिक आत्मकथा का प्रारम्भ अठारहवीं शताब्दी के बाद से प्राप्त होने लगा। उन्नसवीं शताब्दी के बाद से यह औपचारिक तौर पर व्यक्तियों द्वारा प्रदर्शित किया जाने लगा। बीसवीं शताब्दी में इन्टरनेट तथा विश्वबन्धुत्व के कारण, दूरियों में कमी होने से, व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क में बढ़ोतरी होने से सम्पूर्ण विश्व एक विशिष्ट धरातल पर प्रकट होने लगा।

इन्टरनेट तथा कई प्रकार की वेबसाइटों के द्वारा व्यक्ति अपने शब्दों को व्यक्त करने के लिए मीडिया का सहारा लेने लगा जिससे उसका दायरा बढ़ने

लगा। इसी के कारण व्यक्ति अपनी आत्मकथा को प्रदर्शित करने में रुचि लेने लगा। जिससे अन्य व्यक्तियों को उनके अनुभव प्राप्त हो सके।

एक नाटक के मंचन में कई पात्रों की भूमिका होती है तथा वह अपनी भूमिका के अनुसार अभिनय प्रस्तुत करते हैं एक नाटक में कुछ पात्र या कई पात्र हो सकते हैं जबकि एक कहानी एक पात्र तथा कई पात्रों पर भी आधारित हो सकती है। एक कहानी में एक ही पात्र या कलाकार हो तो पूरी की पूरी कहानी उसी पर आधारित होती है क्योंकि उसकी स्वयं की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो जाती है उसी प्रकार से एक आत्मकथा में एक व्यक्ति के जीवन से जुड़े हुए संवाद, अनुभव, लेख, पत्र, डायरी आदि हो सकते हैं जो उसके स्वयं के जीवन को प्रकट करते हैं।

आत्मकथा में सबसे महत्वपूर्ण चरित्र तथा पात्र स्वयं लेखक ही होता है जो स्वयं का ही आंकलन प्रस्तुत करता है। यह लेखक के ऊपर ही निर्भर करता है कि वह स्वयं के व्यवस्थित तथा यथार्थ जीवन से जुड़े अनुभवजन्य संवादों आदि को कितनी निष्पक्षता के साथ प्रस्तुत करता है। आत्मकथा में एक व्यक्ति के जीवन के वह अनछुए पहलू होते हैं जिसका ज्ञान केवल उसे स्वयं को ही होता है।

आत्मकथा अर्थात् आत्मा की कथा से तात्पर्य स्वयं की अन्तरात्मा के द्वारा स्वयं के जीवन से सम्बधित उन तथ्यों, संबंधों आदि को पूर्ण सत्यता के साथ उजागर करना है। एक व्यक्ति का स्वयं के जीवन को प्रस्तुत करना ही आत्मकथा है इसमें वह जीवन के विभिन्न संबंधों तथा अनुभवों को प्रस्तुत करता है। जिसका प्रभाव उसके जीवन पर पड़ा हो। प्रत्येक व्यक्ति का अपना स्वयं का चरित्र, गुण—दोष आदि होते हैं परन्तु यह समाज और परिवार के संबंधों पर भी निर्भर करता है कि एक व्यक्ति का चरित्र, गुण—दोष, व्यवहार, संबंध किस प्रकार के हैं तथा वह स्वयं इस प्रकार का क्यों बन गया है।

आत्मकथा काल्पनिक पात्रों या कहानियों पर आधारित न होकर यथार्थ तथा वास्तविक जीवन पर आधारित होती हैं जिसमें व्यक्ति स्वयं अपना परिचय,

संवेदनाओं, भावनाओं, संबंधों का प्रस्तुतीकरण करता है जिसका संबंध उसके स्वयं के जीवन से होता है। हर एक व्यक्ति के जीवन के कुछ पहलू ऐसे होते हैं जो केवल वह स्वयं जानता है लेकिन एक उम्र के पश्चात् पश्चाताप, आत्मग्लानि, अनुभव, दर्द व पीड़ा को या अपनी मानसिक संवेदनाओं को समाज के सामने लाना चाहता है जिससे समाज अनभिज्ञ है या समाज देखकर भी उसे अनदेखा कर रहा होता है।

समाज में ऐसे कई आदर्श पुरुष कहलाने वाले लोग या व्यक्ति मिल जायेंगे जो स्त्री के आत्मसम्मान व स्त्री को देवी का रुप मानते हैं लेकिन वास्तव में यदि उनके निजी जीवन में आंतरिक रूप से देखा जाये तो पता चलता है कि इस प्रकार की सोच से उनका दूर का भी रिश्ता नहीं है। परिवार तथा उनके घर का वातावरण, संबंध, संवेदनाएं विपरीत दिशा की ओर दिखाई देती हैं उनके निजी जीवन में स्त्री का कोई महत्व नहीं होता है अर्थात् समाज के सामने ऐसे व्यक्ति दोहरा जीवन या दिखावटी जीवन जीते हैं।

आत्मकथा जीवन का वर्णनात्मक वर्णन प्रस्तुत करती है जिसमें संवाद, भावनाएं, पात्र वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होते हैं जिनका प्रभाव लेखक पर पड़ा हुआ होता है।

पुरातन काल में संवाद का माध्यम पत्र हुआ करता था तथा लेखक अपने विचारों आदि को लेखबद्ध करते थे इसी प्रकार से ऋषि–मुनियों, साधु–सन्तों आदि की वाणी को कलमबद्ध किया गया। धीरे–धीरे समाज में व्यक्ति अपनी निजी जीवन पर आधारित पत्रों, संवादों आदि को उजागर करने लगे जिससे समाज के समक्ष उनका वास्तविक तथ्य या सच्चाई आ सके। इस प्रकार धीरे–धीरे आत्म लेखन की अवधारणा आने लगी।

प्रारंभिक जीवनियां अन्य व्यक्तियों द्वारा अन्य व्यक्ति के जीवन पर आधारित होती थी जो उनके द्वारा लिखी जाती थी। राजा–महाराजा आदि के काल में उनके दरबारियों, साथियों आदि के द्वारा उनके जीवन के बारे में जो

लिखा गया वह जीवनियां कहलाई इसके पश्चात् धीरे–धीरे व्यक्ति स्वयं अपने बारे में स्वयं लिखने लगा तो वह आत्म लेखन कहा जाने लगा।

प्रारंभिक जीवनियों में कॉर्नेलियस नेपोस की मानी जाती है जो 44 ई.पू. प्रकाशित हुई उसी के समान्तर ग्रीस में प्लूटार्क की जीवनी मानी जाती है जो 80 ई. पू. प्रकाशित हुई।

इसी प्रकार से वेटर्स, डेमोथेन्स, सिसरो, अलेक्जेंडर तथा जूलियस सीजर आदि का जीवन चरित्र महान् जीवनियों में सम्मिलित है।

इसी प्रकार से 121 ई. पू. सम्राट होडेयन पर लिखी गयी जीवनी स्यूटोनियस द्वारा रचित प्रसिद्ध है।

जीवनियों की शुरूआत यूरोप से मानी जाती है जहाँ कैथोलिक चर्च थे। इस तरह से भिक्षुओं, पुजारी आदि के शिष्य भी उनके गुरु के जीवन पर जीवनी लिखा करते थे।

लोगों के लिए प्रेरणादायक होने के कारण अधिकांश शिष्य या सहपाठी इस प्रकार के कार्य करते थे तथा चर्च भी इस प्रकार के कार्य करवाते थे। शारलेमेन के जीवन का वर्णन उनके दरबारी एन्हार्ड द्वारा किया गया।

मध्यकाल (750 ई.पू. से 1258 ई.पू.) इस्लामी सभ्यता का रहा तथा मुहम्मद साहब के शिष्यों आदि ने पारंपरिक मुस्लिम जीवनियां लिखी जो भविष्यवाणियों की जीवनी परंपरा से शुरूआत हुई। प्रारंभिक जीवनी संबंधी शब्दकोशों ने शुरू में इस्लाम के भविष्यवेत्ताओं और उनके साथियों के जीवन पर ध्यान केन्द्रित किया जैसे– 'इब्न साद अल बगदादी' द्वारा मेजर क्लासेस की 'द बुकिंग' थी। इस प्रकार से ऐतिहासिक आंकड़े तथा दस्तावेज बनाये जाने लगे।

मध्यकाल के अंतिम वर्षों में चर्च तथा इस्लाम कम होकर जीवन चर्चाएं शूरवीरों, सैनिकों, प्रमुख व्यक्तियों, सितारों पर केंद्रित होने लगी। जैसे– प्रसिद्ध

'ली मार्ट डी ऑर्थर' द्वारा सर थॉमस मैलोरी किताब का जीवन का एक विवरण था।

इसके पश्चात् पुनर्जागरण काल के दौरान मानवतावाद पर जोर दिया जाने के कारण जीवनियों पर कलाकारों तथा कवियों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा जिसके कारण स्थानीय लेखन को भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ।

जियोर्जियोवसारी के (1550) धर्मनिरपेक्ष जीवन पर आधारित एक ऐतिहासिक जीवनचर्या थी।

अंग्रेजी भाषा में जीवन हेनरी viii के शासनकाल के दौरान आयी। 'जॉन फॉक्स' के अधिनियम और स्मारक (1563) जो 'फॉक्स के शहीद' नाम से प्रसिद्ध हुई। यह यूरोप में जीवनी का पहला शब्दकोश था। 1662 में थॉमस फुलर पर आधारित 'हिस्ट्री ऑफ द वार्थिज ऑफ इग्लैण्ड' प्रकाशित हुई। समुद्री डाकू के लोकप्रिय धारणाओं को आकार देने में प्रभावशाली एक 'जनरल हिस्ट्री ऑफ द पाइटेट्स' (1724), चार्ल्स जॉनसन द्वारा कई प्रसिद्ध समुद्री डाकुओं की आत्मकथाओं का प्रमुख स्रोत है।

अमेरिकन जीवनी ने अंग्रेजी मॉडल का अनुसरण किया जिसमें थॉमस कार्लाइल का मत था कि जीवनी इतिहास का हिस्सा होती है। कार्लाइल ने जोर दिया कि समाज और उसके संस्थाओं को समझने के लिए महान पुरुषों के जीवन को समझना जरूरी है तथा उपन्यास पूर्ण रूप में पाठक के अनुसार चरित्र को प्रदान किये जाने पर जोर दिया जाने लगा अर्थात् समाज के प्रमुख लोगों के जीवन के पहलुओं को समझने तथा उन्हें जानने के लिए प्रेरित होने लगे।

प्रथम आधुनिक आत्मकथा (जीवनचर्या) जेम्स बोलवेल की 'लाइफ ऑफ सैमुअल जॉनसन' थी जिसमें ईमानदारी पूर्वक कई अध्यायों, गवाहों, खातों, साक्षात्कार आदि को मजबूत तथा आकर्षित तरीके से प्रस्तुत किया गया था।

धीरे–धीरे जीवनियां प्रशंसा की परिचायक बनने लगी जो उच्च संस्कृति का परिणाम था अर्थात् सूचनात्मक पद्धति का प्रतिवर्ती।

कई पत्र–पत्रिकाओं ने जीवनी पर आधारित लेख क्रम से प्रकाशित करने शुरू किये जिसने एक जागृति की शुरूआत की जिससे लोगों का इस ओर रुझान बढ़ने लगा। शिक्षा तथा सस्ती मुद्रण के विकास के साथ प्रसिद्धि और सेलिब्रिटी की आधुनिक अवधारणाओं को विकसित किया जाने लगा।

आत्मकथाएं लेखकों द्वारा लिखी गई जैसे कि चार्ल्स डिकेंस (आत्मकथात्मक तत्व पर आधारित) और एंथनी ट्रोलोप जिनकी आत्मकथा उनके मरणोपरांत प्रकाशित हुई और बेस्ट सेलर बन गई।

बीसवीं शताब्दी में जीवनियों पर मनोविज्ञानियों का प्रभाव पड़ा। दार्शनिक जॉन स्टुअर्ट मिल, जॉन हेनरी न्यूमैन, पी.टी. बरनम आदि।

मनोविज्ञान के सिद्धान्तों ने समाजशास्त्र की कल्पना को आधार प्रदान किया जिससे समाज को बेहतर तरीके से समझने की चेष्टा की जाने लगी। मनुष्य को महत्व दिया जाने लगा। इसने समाज के एक सामान्य व्यक्ति के जीवन को केन्द्र में लाकर खड़ा कर दिया जिससे आत्मचरित्र का स्वरूप बदलने लगा। प्रेरित जीवनियों को मर्मज्ञता और व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा तथा इसमें बचपन व किशोरावस्था को भी शामिल किया जाने लगा।

ब्रिटिश समीक्षक लिटन स्ट्रेची (1918) ने विक्टोरियन युग, कोडिनल मैनिंग, फ्लोरेंस नाइटेंगेल, थॉमस अर्नोल्ड और जनरल गॉर्डन की चार आत्मकथाओं को सम्मिलित कर समीक्षा प्रस्तुत की थी।

स्ट्रेकी ने प्रस्तावना में टिप्पणी की शुरूआत की। स्ट्रेकी ने जिस निष्पक्षता के साथ टिप्पणियां की वह समाज द्वारा बेहद स्वीकार की गई। जिसका अनुसरण गमली एल ब्रेडफोर्ड, आंद्रे मॉरिस, एमिल लुडविग और रॉबर्ट गेट्स द्वारा किया गया।

नारीवादी विद्वान कैरोलिन हेडलब्रन ने देखा कि महिला की जीवनी और आत्मकथाएं दूसरी लहर के नियंत्रणवादी सक्रियता के दौरान चरित्र को बदलने लगे हैं। नेंसी मिलफोर्ड (1970) में लिखी जीवनी 'जील्डा' को महिलाओं की जीवनी की एक नई शुरूआत के रूप में देखा गया।

हैलीकन ने 1973 को महिला आत्मकथा के मोड़ के रूप को नामित किया। यह पहला उदाहरण था जहाँ एक महिला ने अपनी जिंदगी की कहानी को बताया। इसने समाज के सामने यह बताया कि एक स्त्री का अपना स्वयं का जीवन भी होता है जिस पर उसका स्वयं का नियंत्रण होना चाहिए।

बायोलोजिकल रिसर्च को 'मिलर' द्वारा एक शोध पद्धति के रूप में परिभाषित किया गया, जो किसी व्यक्ति के पूरे जीवन को या जीवन के एक हिस्से को इकट्ठा और उसका विश्लेषण करता है।

इस भूमि पर नर व नारी का पदार्पण जब से हुआ है तभी से मानव का यह स्वभाव रहा है कि वह अन्यों को अपने अधीन कर सके। यहाँ तक की मनुष्य ने प्रकृति को भी अपने अधीन करने की कोशिशे की है परन्तु प्रकृति सर्वोपरी है तथा संतुलन बनाये रखना उसका कार्य है। अतः प्रकृति सृजन व विनाश दोनों प्रकार से अपने आपको बनाये रखती है।

जब संसार में एक नर व नारी के मध्य संबंध बना तो इससे उनमें संवेदनाओं की भी उत्पत्ति हुई, भावनाएं प्रदर्शित हुई, व्यवहार में परिवर्तन आये। मानव की उत्पत्ति के समय मनुष्य केवल बुद्धि से मुक्त था। अतः उसकी प्राथमिकता केवल भोजन व आवास रही।

मेरे विचार से जब एक नर व नारी के मध्य संबंधों व संवेदनाओं में विपरीत परिवर्तन देखे गये तथा एक नर द्वारा नारी को जो पीड़ा, दर्द दिया गया उस दर्द व पीड़ा को उसके पास उजागर करने का कोई खास तरीका नहीं था अतः उसने चित्रों के माध्यम से अपनी पीड़ा को उजागर किया।

धीरे–धीरे यह पीड़ा भित्ति–चित्रों तथा चित्रकारी द्वारा प्रदर्शित की जाने लगी। पुरातन काल में या प्राचीन समय में स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु मात्र समझा जाता था या उसका दायरा केवल घर तक या परिवार तक ही सीमित था। उसके लिए पति धर्म का पालन करना अनिवार्य था। अंधविश्वास व रूढ़ियों की परम्पराओं का निर्वाह स्त्रियों द्वारा ही किया जाता था या उसके लिए ही इस तरह की रूढ़ियां बनाई जाती थी। समाज में जब एक स्त्री को लज्जित किया जाता है या उस पर लांछन लगाया जाता है तो कई बार जब स्त्री का आवेग, संवेदनाएं सीमा को पार कर जाती हैं तो वह समाज के समक्ष एक चट्टान की भांति खड़ी होकर नैतिकता व न्याय प्राप्ति के लिए संघर्ष करती हुई देखी गई है।

मानव अपने प्रारंम्भिक जीवन के वर्षों में जब मानव छोटे–छोटे कबीलों व बस्तियों में रहने लगा तभी से एक नारी की स्थिति में परिवर्तन देखे जाने लगे। एक स्त्री को प्राप्त करने तथा एक स्त्री के कारण संघर्ष होने लगे। स्त्री एक प्रतिष्ठा का विषय बनने लगी तथा स्त्री प्राप्ति का यह संघर्ष निरंतर चलने लगा। इसके पश्चात् यूनान में जब शासकों का दौर आया तो सम्राट अपने सुख, वैभव तथा वासना व काम की इच्छा को पूर्ण करने के लिए स्त्रियों का अधिकाधिक उपभोग करने लगा तथा स्त्रियां भी ऐसे पुरुषों का चयन करने लगी जो उनका संरक्षण कर सके ।

रूस व जर्मनी में जब खानें अधिक हो गई तथा अमीर व गरीबों के मध्य एक खाई दिखाई देने लगी तो अमीर व्यक्ति भी नारी का उपभोग करने लगा। इसी प्रकार से समाज में नारी को वेश्यावृत्ति की ओर ले जाया गया। जब स्त्री एक बार इस ओर चली गई तो जीवन पर्यन्त इसी कार्य में संलग्न रहने लगी तथा उसकी स्वतंत्रता पूर्णतः खत्म हो गई। छोटे तथा मजदूर वर्ग मजदूरी करने के लिए नृत्यों के माध्यम से दुःख–दर्द को दूर करने की कोशिशे करने लगे, स्त्रियां नृत्य व वेश्यावृत्ति द्वारा अर्जन करने लगी। इस प्रकार से एक स्त्री का आत्मसम्मान व गौरव विलासिता पूर्ण जीवन पर आधारित होता चला गया।

सम्राटों ने तथा उनके रसीकदारों ने अपनी वासना के लिए दृश्य बनाये तथा स्त्रियों को उपभोग के लिए रखा। समाज में इस प्रकार से धीरे–धीरे नारियों की स्थिति बहुत ही दयनीय हो गई।

हिटलर के समय तो स्त्रियों पर जो भयावहता व बर्बरता की गई उसका वर्णन करना भी असंभव है। खुले आम स्त्रियों व लड़कियों की लज्जा को उछाला गया उनके साथ गुलामों सा व्यवहार किया जाता था। सामूहिक यौन शोषण उत्पीड़न तो आम हो गया था। सैनिक जिसके साथ जैसा चाहते थे वैसा ही व्यवहार करते थे। इस प्रकार की परिस्थितियों में भी कई नारियां ऐसी रही जिन्होंने इस प्रकार की स्थितियों का सामना किया तथा उनके साथ होने वाले अत्याचार, दुःख–दर्द, पीड़ा, तिरस्कार को समाज के समक्ष लाने का साहस किया।

धीरे–धीरे स्त्रियों की सहनशीलता कम होने लगी तथा विद्रोह के स्तर जब तेज हुए तो समाज के कुछ बुद्धिजीवी वर्ग भी स्त्रियों की इस ओर अपना मत प्रकट करने लगे तथा उन्हें भी स्वतंत्रता व स्वछंदता के साथ जीवन जीने को प्रोत्साहित करने लगे। नारी की दशाओं पर चर्चाएं भी की जाने लगी तथा बुद्धिजीवी वर्ग इस बात से सहमत होने लगा कि हमारा समाज बेहतर तभी हो सकता है जब एक स्त्री की दशा बेहतर हो उसे भी एक मानव होने नाते सभी सुविधाएं प्राप्त करने का अधिकार है। अतः कुछ महिलाएं स्त्री समस्याओं को विश्व पटल पर लाने की कोशिश करती देखी गई जिससे विश्व का ध्यान व आकर्षण स्त्रियों की दशाओं की ओर भी जाने लगा। इस समय स्त्रियां अपनी दशाओं व स्थितियों को विभिन्न पत्रों व डायरी के माध्यम से प्रस्तुत करने लगी।

भारतीय प्राचीन काल में नारियों की दशाओं का अधिकांश वर्णन चित्रों द्वारा प्रदर्शित किया गया है। भारतीय मंदिर शैलियों में भी नारियों की विभिन्न भंगिमाओं व नर–नारी की भावनाओं को विभिन्न शैलियों द्वारा उकेरा गया जो एक नारी की स्थिति को प्रदर्शित करती है। इसी प्रकार से महाभारत में द्रौपदी के चीरहरण तथा रामायण में सीता का विलग होना समाज में स्त्री की दशा को

स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं। भारतीय समाज में भी नारी को वह सम्मान कभी भी प्राप्त नहीं हो सका जो हमारे पुराणों व वेदों तथा संस्कृति व परम्पराओं में वर्णित है।

त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं

'त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं–दैवों न जानाति कुतो मनुष्यः' कह कर बड़ी आसानी से औरत के चरित्र को संदिग्ध करार दे दिया गया, जबकि पुरुष को अपने भाग्य का विधाता करार दिया गया। जो प्रजापति ब्रह्मा ही बन बैठा। चरित्र का मानदंड शायद ही कभी पुरुष पर लगा हो। अगर चरित्र का मानदंड होता तो पुरुष की सुविधा के लिए वेश्यालय क्यों खुलते? चरित्र का मानदण्ड यदि पुरुष के लिए होता तो वह बलात्कार करने के बाद अपनी मर्दानगी पर इतराता नहीं। किसी भी व्यक्ति विशेष पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पुरुष उस व्यक्ति को अक्सर माँ–बहन की गाली देता है, जिसका निहितार्थ यह है कि पुरुष उस व्यक्ति की माँ–बहन से यौन संबंध बनाएगा। काम दोनों पुरुष यौनिक करेंगे लेकिन इससे इज्जत उस औरत की चली जायेगी। यह एक आम मानसिकता है। यहाँ स्त्रियों के चरित्र से आशय स्त्री के यौन संबंध व्यवहार से है जिसे लेकर पुरुष वर्ग हमेशा भयाक्रांत रहता है। वह स्त्री के यौन–संबंधी व्यवहार पर किसी न किसी रूप में सदैव नियंत्रण की चाह रखता है। अगर कभी स्त्री अपनी प्रेम की इच्छा प्रकट कर दे तो वह त्रिया चरित्रं हो जाता है, जो पुरुष के लिए सदैव संदिग्ध रहता है, रहस्य होता है। जिसे लोग नहीं जानते उसे रहस्य मान लेते हैं। यह तो पुरुष का अज्ञान है फिर स्त्रियाँ चरित्रं से वह भी अपने भाग्य का निर्माण करने की दिशा में अग्रसर हैं।

हम उसे देवी का स्वरूप तो मानते हैं परन्तु वास्तविक जीवन में वह उपभोग की वस्तु मात्र रह जाती है। वह एक पुरुष के जीवन का अंग न होकर केवल उसके भोग विलास तथा सुख देने वाली वस्तु मात्र है। पुरुष के लिए उसकी संवेदनाएं निराधार होती है। पुरुष के लिए स्त्री का जीवन स्वयं का ना होकर पुरुष के लिए पूर्णतः समर्पण के लिए बना है तथा पुरुष जैसा चाहे उसी

प्रकार से स्त्री का उपभोग कर सकता है। प्राचीनकाल में कई स्त्रियां ऐसी रही हैं जिन्होंने लेखन के माध्यम से समाज में नारी की गरिमा व महत्ता को ऊपर उठाने का प्रयास किया।

भारतीय समाज में मुगल काल तथा राजा महाराजाओं व सम्राटों के शासन काल में शासकों द्वारा नारी का मानसिक तथा शारीरिक शोषण किया जाता रहा है। इसके पश्चात् जब ब्रिटिश शासक भारतीय भूमि पर पदार्पण कर चुके थे तब उन्होंने भारतीय परम्पराओं व संस्कृति को पूरी तरह से नष्ट कर दिया तथा नारियों पर विभिन्न अत्याचार किये। अंग्रेजी शासन व्यवस्था में भारतीय जमींदारों, सूदखोरों, महाजनों आदि के द्वारा भी भारतीय संस्कृति व परम्पराओं को तोड़ा तथा उसका अपमान किया। नारी की दशा बहुत ही दयनीय हो गई थी परन्तु इस अवस्था में भी ऐसी कई स्त्रियां थी जो समाज नारी की भलाई व उत्थान के लिए आगे आयी और नारी शक्ति को एक प्रेरणा प्रदान कर उसे संपादित करने की कोशिश करने लगी।

नारी चेतना के विकास का अध्ययन करने के लिए भारतीय समाज में परम्परागत नारी की छवि एवं उसकी ऐतिहासिक रूपरेखा का ज्ञान परम उपयोगी है। वर्तमान समय में नारी चेतना जितने सशक्त रूप में उभर कर सामने आई है उसके लिए उसे एक लंबी संघर्ष पूर्णयात्रा पूरी करनी पड़ी है। प्रागैतिहासिक काल से नारी को अपनी मेधा का प्रमाण देना पड़ा है नारी ने अपनी प्रबल मेधा का परिचय विभिन्न सूक्तों की रचना करके दिया हैं। ये वैदिक सूक्त परिष्कृत मनीषा वाली समधीत स्त्रियों की एक पूरी परम्परा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। आज–कल की बौद्धिक नारियों के समान वैदिक युग की नारियां भी मेधा में प्रखर थी। वे विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ करने की क्षमता रखती थी। इन वैदिक कालीन नारियों को ब्राह्मणवादिनी कहा जाता था। परम विदुषी मैत्रेयी ने वैभव का परिहास करते हुए सब कुछ त्याग दिया था। यह वैदिक कालीन स्त्रियां गृहस्थी से परे भी अपना अस्तित्व रखती थी, अश्विनी कुमारों से घोषा प्रार्थना करती है कि जब भी कोई ब्रह्मचारिणी नारी पति की

इच्छा करे तो उसे उसका अनुकूल वर प्राप्त हो पति के घर वधू को जीवन के सभी साधन सुलभ रहें और सदा उसके घर दया, परोपकार, उदारता और शालीनता आदि गुण बने रहे।

इन आर्य ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में नारी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। ऐसे अनुकूल परिवेश के प्रभाववश ही वांगाभृणी आदि तेजस्वी स्त्रियों का आत्मविश्वास इतना प्रबल हुआ कि उन्होंने कहा–

''अहमेव वात इवं प्रवारम्यरभ माणं भुवनानि विश्रापरो

परो दिवा पर ऐना पृथिव्यैतावनी महिमा सं वभूव"

मैं कारण रूप से समस्त विश्व की रचना करती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनों के परे हूँ। अपनी महिमा से ही मैं ऐसी हुई हूँ। इन श्लोकों के अतिरिक्त अन्य लोकों में गर्भ धारण करना और परिवार की सेवा करना स्त्री के प्रमुख कर्तव्य बताये गये।

भारत में स्त्रियों की स्थिति' का विषय अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अगर हम भारतीय समाज को पूर्ण रूप से समझना चाहते हैं तो उसकी 2011 की जनसंख्यानुसार 49 करोड़ 57 लाख (48.3 प्रतिशत) भाग जो स्त्रियों का हैं, को जानना, देखना और समझना आवश्यक हैं। भारत में स्त्रियों की स्थिति भूतकाल में क्या थीं? वर्तमान में क्या हैं? और भविष्य में क्या होगी? इसका ज्ञान होना आवश्यक है। इस ज्ञान के बिना भारतीय समाज का विकास अपूर्ण ही रहेगा। अगर भारतीय सामाजिक संगठन और सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना है तो स्त्रियों की स्थिति को पुरुषों के संदर्भ में देखना होगा तथा उसमें सन्तुलन लाना होगा । स्त्री और पुरुष दोनों समाज के अभिन्न अंग होते हैं। उनमें से किसी एक (स्त्री) का शोषण होगा तो वह समाज खुशहाल तथा सुखी नहीं हो सकता हैं। इसी संदर्भ में हम हिन्दू एवं मुस्लिम स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करेंगे।

हिन्दू नारी की स्थिति का सर्वेक्षण

अनेक वैज्ञानिक अध्ययनों, परीक्षणों तथा सर्वेक्षणों से पता चला है कि समाज के सन्तुलन, विकास तथा समृद्धि के लिए नारी की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ होती हैं। एक नारी को शिक्षित करने का अर्थ है एक परिवार को शिक्षित करना। नारी का प्रभाव अनेक क्षेत्रों में देखा गया है। वह सन्तानों को जन्म देती है। उन्हें पाल–पोस कर बड़ा करती है तथा समाज को भावी सदस्य तथा नागरिक प्रदान करती है। अगर स्त्री या माता अथवा गृहिणी के संस्कार, शिक्षा–दीक्षा आदि उत्तम नहीं होगी तो वह समाज और राष्ट्र को श्रेष्ठ सदस्य कैसे दे सकती है? समाज के लिए स्त्री का स्वस्थ, खुशहाल, शिक्षित, समझदार, व्यवहार कुशल, बुद्धिमान आदि होना अनेक दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। जब उसकी स्वयं की स्थिति सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक आदि दृष्टिकोणों से निम्न होगी तो स्वाभाविक है परिवार, समाज और राष्ट्र की स्थिति अच्छी नहीं हो सकती है। एक तो स्त्रियाँ स्वयं राष्ट्र की आधी जनसंख्या है तथा दूसरा बच्चे, युवा, प्रौढ़ वृद्धजन उन पर अपनी अनेक पारिवारिक आवश्यकताओं के लिए निर्भर रहते हैं। भारत में स्त्रियों की स्थिति का विभिन्न कालों में अध्ययन करना आवश्यक है तभी आत्मकथाओं में इनकी वर्तमान स्थिति के वास्तविक चित्र सामने आ पाएगा।

विभिन्न कालों में नारी की स्थिति

वेदों में स्त्री के कर्तव्य तो विस्तार से बताये गये पर पुरुष के कर्तव्य, इसके विषय में वेद प्रायः मौन हैं। केवल एक लोक में पुरुष के कर्तव्य बताये गए हैं बाहरी आक्रमणों से स्त्री की रक्षा करना।

हमारे समाज ने घोषा, मेत्रैयी, गार्गी और माध्वी को हमारा आदर्श नहीं बनने दिया। नारी जाति के लिए सीता और सावित्री को आदर्श माना गया। इसका कारण नारी को परिवार तक सीमित रखना था। प्रारम्भ में कबीलाई समाज में नारी स्वतंत्र और निरंकुश थी। उसकी सुरक्षा के नाम पर परिवार एवं

घर नामक संस्था का बीजारोपण हुआ। हमारे दैवीय ग्रन्थों में भी पूरे देवी परिवार का उल्लेख हुआ है और वे अन्य देवताओं के निर्देश पर सारे कार्य करती हैं। वैदिक युग में स्त्री की दशा समुन्नत थी। स्त्री का समाज में वही स्थान था जो शरीर में 'नाड़ी' का होता है। शरीर में नाड़ी का तीव्र गति या मन्द दोनों ही गतियाँ अस्वस्थता की द्योतक है। अतः चिकित्सा शास्त्र के अनुसार शरीर में नाड़ी का समभाव में चलना ही श्रेयस्कर माना जाता है। वैदिक समाज में यही स्थिति नारी की थी। समाजशास्त्रियों एवं इतिहासवेत्ताओं के अनुसार स्त्रियों की स्थिति का क्रमबद्ध अध्ययन आगे के कालों के अनुसार इस प्रकार है।

वैदिक काल

इस काल के उपलब्ध साहित्य से पता चलता है कि स्त्रियों की स्थिति सभी प्रकार से अच्छी थी। स्त्री–पुरुष में कोई भेद नहीं था तथा दोनों की सामाजिक स्थिति समान थी। लड़कियाँ ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं। आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थीं। सह–शिक्षा का प्रचलन था। यजुर्वेद के अनुसार इस काल में कन्या का उपनयन संस्कार होता था। उसे सन्ध्या करने का अधिकार था। पी.एच. प्रभु ने लिखा है कि जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री–पुरुष की स्थिति सामान्यतः समान थी। स्त्रियां शिक्षा प्राप्त करती थीं तथा शास्त्रों का अध्ययन करती थी। इस काल में अनेक विदुषी स्त्रियां हुई थी। लड़कियों का विवाह युवा अवस्था में होता था। स्त्रियां चाहती तो अपना जीवन बिना विवाह किए व्यतीत कर सकती थी। लड़कियां अपना जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र थी। पत्नी का अपने परिवार में सम्मान था। महाभारत के अनुसार, ''वह घर, घर नहीं अगर उस घर में पत्नी नहीं।'' गृहिणीहीन घर 'जंगल' है। अथर्ववेद में लिखा है कि ''नववधू तू जिस घर में जा रही है वहाँ की तू साम्राज्ञी है। तेरे श्वसुर, सास, देवर और अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हों।'' स्त्री सन्तान उत्पन्न नहीं होने पर अथवा उत्तम सन्तान के लिए नियोग द्वारा सन्तान प्राप्त कर सकती थी। बहुपत्नी विवाहों को

मान्यता प्राप्त थी। विधवा पुनर्विवाह कर सकती थी। देवर या अन्य व्यक्ति से वह इच्छानुसार विवाह कर सकती थी। पर्दा–प्रथा नहीं थी। स्त्रियां सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतन्त्र थीं। पुरुषों द्वारा स्त्रियों की रक्षा करना परम कर्त्तव्य माना जाता था। उनका अपमान करना लोग पाप समझते थे।

स्त्री–पुरुष समान रूप से धार्मिक कृत्यों को करते थे। किसी भी यज्ञ आदि में पति–पत्नी दोनों का होना आवश्यक था। ऐतरेय ब्राह्मण में स्त्री को 'जाया' कहा गया है जिसका अर्थ है कि स्त्री अपने पति को दूसरा जन्म देती है (जायति पुनः)। बाल्मीकि के अनुसार स्त्रियों को अकेले यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था। कौशल्या स्वयं 'स्वस्ति यज्ञ' करती थी। पी.एच. प्रभु के अनुसार सीता भी 'संध्या' करती थी। पुत्र के जन्म को अधिक महत्व दिया जाता था। पुत्र का महत्व वंश विस्तार, तर्पण, पिण्डदान आदि के कारण अधिक था। ऋग्वेद में वीर पुत्रों की कामना के लिए बार–बार प्रार्थना का उल्लेख मिलता है। पुत्रियों के साथ पक्षपात का व्यवहार नहीं किया जाता था। पुरुष स्त्रियों की रक्षा करना अपना धर्म समझते थे। उपर्युक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान ही अच्छी थी। उसे सभी क्षेत्रों–सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे।

उत्तर–वैदिक काल

ईसा से 600 वर्ष पूर्व से लेकर ईसा के 300 वर्ष बाद तक का काल उत्तर–वैदिक काल कहलाता है। महाभारत की रचना उस काल में प्रारम्भ हुई थी जो एक संस्कृति काल था तथा उसमें स्त्रियों की स्थिति के बारे में भिन्न–भिन्न तथा विरोधी विचार मिलते हैं। वैदिक काल में तो स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी परन्तु बाद में उनकी स्थिति में परिवर्तन होने लगा। अनुशासन–पर्व में भीष्म पितामह के अनुसार स्त्री को सदैव आदरणीय मानकर उससे स्नेह का व्यवहार किया जाना चाहिए। ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।'' अर्थात्

जहाँ स्त्रियों की पूजा की जाती है वहाँ देवताओं का निवास होता है। यह भी लिखा है कि इनकी अनुपस्थिति में सारे कामकाज पुण्यरहित हो जाते हैं। भीष्म पितामह ने नारी के दो प्रकारों का उल्लेख किया है–साध्वी और असाध्वी। साध्वी नारी धरती की माँ और संरक्षिका है तथा असाध्वी नारियाँ वे हैं जिन्हें उनके पापपूर्ण व्यवहार के कारण कहीं भी पहचाना जा सकता है। उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक वर्षों अर्थात् ईसा के करीब 300 वर्ष पूर्व तक स्थिति ठीक थी। सम्पन्न परिवार की लड़कियों को शिक्षा दी जाती थी। वे वेदों का अध्ययन कर सकती थी। वे अपना वर स्वयंवर में पसन्द करके चुनती थीं। उनके धार्मिक और सामाजिक अधिकार यथावत् थे। बाद में नारी की स्थिति में परिवर्तन आए जो निम्नांकित हैं।

जैन और बौद्ध धर्म के प्रभाव इस काल में प्रभावशाली हो गए। ये धर्म स्त्री को सम्मान देते थे। अनेक स्त्रियों ने इन धर्मों के प्रचार का कार्य किया। बाद में जब इन धर्मों का पतन हुआ तो उसके साथ–साथ स्त्रियों की स्थिति भी बिगड़ती चली गई। ए.एस. अल्तेकर के अनुसार, आर्यगृह में अनार्य नारी का प्रवेश नारियों की सामान्य स्थिति की अवनति का मुख्य कारण है। यह अवनति ईसा के करीब 1000 वर्ष पूर्व से धीरे–धीरे अति सूक्ष्म रूप में प्रारम्भ हुई और करीब 500 वर्ष पश्चात् काफी स्पष्ट मालूम पड़ने लगी। बाद में मनु–परम्परा आ गई। इस काल में नारियों की स्वतंत्रता पर अनेक प्रतिबन्ध लगा दिए गए। यज्ञ करना तथा वेदों का अध्ययन प्रतिबन्धित हो गए। विधवा–पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई। शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। इससे उनकी स्थिति धीरे–धीरे बिगड़ने लगी।

स्मृति युग में स्त्रियों के समस्त अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। स्मृतिकारों ने स्त्री को प्रत्येक अवस्था में परतंत्र बना दिया। उसे बचपन में पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में रहने के आदेश दिए गए। स्त्री के लिए एक मात्र कर्तव्य पति की सेवा करना रह गया। विधवा पुनर्विवाह बन्द कर दिए गए तथा सती का प्रावधान निश्चित कर दिया।

इस प्रकार स्त्रियों की स्थिति सिद्धान्त रूप में पूर्ण रूप से खराब कर दी गई जो आगे चलकर व्यावहारिक रूप में विकसित हो गई।

धर्मशास्त्र काल

यह काल ईसा के पश्चात् तीसरी शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक का है। जो कुछ मनुस्मृति में स्त्रियों के प्रतिबन्धों के बारे में लिखा था उसे धर्मशास्त्र काल में व्यावहारिक रूप दिया गया। इस काल में पराशर, विष्णु और याज्ञवल्क्य संहिताओं की रचना मनुस्मृति को ही आधार मानकर की गई। समाज तथा स्त्रियों पर इतने अधिक प्रतिबन्ध लगाए गए कि इसे सामाजिक और धार्मिक संकीर्णता का काल कहते हैं। स्त्रियों को परतन्त्र, पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बना दिया गया। स्त्री–शिक्षा पर पाबन्दी लग गई। स्त्री के लिए एक मात्र विवाह संस्कार रह गया। कन्याओं के विवाह की आयु घट कर 10–12 वर्ष रह गई तथा बाल–विवाह का प्रचलन बढ़ गया। बाल विवाह के कारण वह शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थी। वर के चुनाव में कन्या की भूमिका समाप्त हो गई। कुलीन विवाह तथा अनुलोम विवाह का महत्व बढ़ने से बहुपत्नी विवाह होने लगे। रखैल रखने का रिवाज प्रारम्भ हो गया। विदुर 8 या 10 वर्ष की कन्या से विवाह करने लगा। विधवाओं की संख्या बढ़ने लगी। इस धर्मशास्त्र काल या संकीर्णता के काल में स्त्रियां माता से 'सेविका' तथा गृहलक्ष्मी से 'याचिका' बन गई। स्त्री के लिए पति ही देवता और विवाह ही एकमात्र उसके लिए धार्मिक संस्कार रह गया। पति की मृत्यु के बाद सती होना सर्वश्रेष्ठ आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया गया। स्त्रियों के पतन का सबसे अधिक जिम्मेदार धर्मशास्त्र काल रहा हैं। मनुस्मृति में लिखा है, ''स्त्री कभी भी स्वतन्त्र रहने योग्य नहीं है। अविवाहित होने पर पिता, युवा अवस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र ही उसका संरक्षक है।'' इस काल ने नारी को उपभोग की वस्तु मात्र बना दिया। इस काल में स्त्रियों का स्थान सभी क्षेत्रों में पुरुष से निम्न हो गया।

मध्यकाल

ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक का समय मध्यकाल कहलाता हैं। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मुसलमानों का प्रभाव भारत पर बढ़ने लगा। हिन्दू धर्म और संस्कृति को मुस्लिम धर्म और संस्कृति से सुरक्षित रखने के लिए अनेक प्रयास किए गए। सर्वप्रथम स्त्रियों की सुरक्षा के लिए अनेक कदम उठाए गए। स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा तथा रक्त की शुद्धता के लिए अब 5 या 6 वर्ष की आयु में ही कन्याओं का विवाह किया जाने लगा। बाल–विवाहों को प्राथमिकता दी जाने लगी। स्त्रियों को घर की चाहरदीवारी में रखा जाने लगा। इससे कुप्रभाव स्त्री शिक्षा पर भी पड़ा बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, जीवन को चाहरदीवारी में होने से स्त्रियां शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती थीं। स्त्री– शिक्षा पर बाद में रोक लगा दी गई।

विधवा–पुनर्विवाह पर रोक लगा दी गई। सती–प्रथा को प्रोत्साहित किया जाने लगा। सम्पत्ति में स्त्रियों के अधिकार को समाप्त कर दिया गया। आर्थिक दृष्टिकोण से स्त्रियां परतंत्र हो गईं। पति तथा परिवार की सेवा करना एक मात्र उसके जीवन का लक्ष्य रह गया। मुसलमानों की इस प्रवृत्ति ''जेहि की कन्या सुन्दर देखी तेहि पर जाइ धरे हथियार'' ने बाल–विवाह को अत्यधिक प्रोत्साहित किया।

मध्यकाल में जहाँ अनेक कारकों एवं परिस्थितियों ने स्त्रियों की दयनीय स्थिति और शोषण में वृद्धि की थी वहीं इनकी धार्मिक और सामाजिक स्थिति को सुधार के लिए भक्ति आन्दोलन एवं सन्तों के प्रयास भी देखे जा सकते हैं। प्रथम प्रयास रामानुजाचार्य के माध्यम से स्त्रियों के धार्मिक और सामाजिक जीवन को सुधारने का प्रयास किया। स्त्रियों को धार्मिक पूजा–पाठ, धार्मिक–स्वतन्त्रता, पर्दा–प्रथा की समाप्ति आदि के लिए चैतन्य, नानक, कबीर, तुलसी, मीरा, तुकाराम आदि सन्तों ने प्रयास किए। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्रियां भजन–कीर्तन, प्रवचन, कथा आदि में जाने लगीं। इन

साधु–सन्तों के प्रयासों से स्त्रियां स्वयं को शिक्षित करने एवं धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने के लिए प्रयास करने लगीं।

सारांश में यही तथ्य सामने आते हैं कि मध्यकाल में धर्म के नाम पर तथा मुसलमानों से हिन्दू धर्म तथा संस्कृति की सुरक्षा की आड़ में भारतीय हिन्दू नारी पर अनेक प्रतिबन्ध लगा कर उसका घोर शोषण किया गया वहीं इनके सुधार के लिए सन्तों के प्रयास भी देखे जा सकते हैं।

ब्रिटिश काल

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर 1947 तक के समय को ब्रिटिश काल मानते हैं। अंग्रेजी सरकार ने भारत के मुसलमानों से राजनीतिक सत्ता प्राप्त की थी। मुसलमान उनके विरुद्ध थे ही, वे हिन्दुओं को अपने विरुद्ध नहीं करना चाहते थे। इसलिए अंग्रेजों ने हिन्दुओं के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में कोई सुधार नहीं करने की नीति अपनाई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश शासन काल में हिन्दू स्त्रियों के सुधार के लिए भी अंग्रेजी सरकार ने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया। इस काल में भी स्त्रियों की स्थिति निम्नलिखित क्षेत्रों में दयनीय रही।

पारिवारिक क्षेत्र

पारिवारिक जीवन में उन्हें कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। परिवार का मुखिया पुरुष होता था। सारी शक्तियाँ, निर्णय आदि के अधिकार उसी के पास होते थे। स्त्रियों को परिवार के बाहर जाने का अधिकार नहीं था। वह तो केवल सन्तानें पैदा करती तथा घर–गृहस्थी के कार्य करती। बाल–विवाह होता था। वर के चुनने में उससे पूछा नहीं जाता था। पति कैसा भी हो उसे विवाह–विच्छेद करने का अधिकार नहीं था। विधवा होने पर तो उसकी स्थिति बड़ी करुणामय हो जाती थी। मनोरंजन के कोई साधन नहीं थे। बस उसके भाग्य में काम करना लिखा था।

सामाजिक क्षेत्र

सामाजिक क्षेत्र में भी स्त्रियों को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। बाल–विवाह तथा पर्दा–प्रथा के फलस्वरूप वह घर के बाहर जाकर कोई औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं रखती थी। स्वतंत्रता–प्राप्ति से पहले स्त्रियों में साक्षरता का प्रतिशत मात्र 6 प्रतिशत था। समाज में उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था। बहुपत्नी विवाह सम्पन्न परिवारों में प्रचलित थे। स्त्री को उसके साथ सामंजस्य या व्यवस्थापन करना पड़ता था। धार्मिक और पारम्परिक दृष्टि से स्त्रियों का कार्यक्षेत्र घर की चाहरदीवारी था।

आर्थिक क्षेत्र

सन् 1937 से पहले स्त्री को आर्थिक क्षेत्र में कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। पणिक्कर के अनुसार हिन्दू समाज में पुत्री के अधिकार को कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया, पत्नी पति के परिवार का एक अंग बन गई और विधवाओं को मृत समान मान लिया गया। स्त्रियों को केवल स्त्री–धन सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियां घर के बाहर जाकर कोई आर्थिक कार्य नहीं कर सकती थीं। कुलीन परिवार में काम करना हीन माना जाता था। संयुक्त परिवार में इन्हें कोई भी सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार प्राप्त नहीं थे। स्त्रियों को तो वस्तु समान उपभोग की वस्तु माना जाता था। आर्थिक रूप से पराश्रित होने के कारण पुरुष इनका शोषण करते थे। स्त्रियां पुरुषों के अत्याचार सहती थीं। अविवाहित लड़की का संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं था। नाभिक परिवार में उसका अधिकार लड़कों और विधवाओं के बाद आता था। कुल मिलाकर नारी की आर्थिक स्थिति अति दयनीय थी।

नारी जीवन का पारिवारिक वातावरण

प्राचीन काल से ही दुनिया भर में नारियों को उनकी शारीरिक रचना के कारण पुरुषों की अपेक्षा निम्न स्थान दिया जाता रहा है, परन्तु शिक्षा और औद्योगिक विकास के साथ–साथ विकसित देशों में नारियों के प्रति सोच में परिवर्तन आया

और ''नारी समाज को पुरुष के बराबर मान, सम्मान और न्याय प्राप्त होने लगा। उन्हें स्वतंत्रता व कानून का बराबर अधिकार प्राप्त है। कोई समाजिक नियम नारियों एवं पुरुषों में भेदभाव नहीं करता।'' हमारे देश की स्थिति अभी भी प्रथम है यद्पि कानूनी रूप से महिलाएँ एवं पुरुषों को समान अधिकार मिल गये हैं परन्तु पारिवारिक जीवन में नारी का वातावरण वैसा का वैसा ही बना हुआ है। उसकी गति बहुत धीमी है शिक्षित पुरुष भी अपने स्वार्थ के कारण अपनी सोच बदलने में रुचि नहीं लेता, उसे अपनी प्राथमिकता को छोड़ना आत्मघात प्रतीत होता है। यही कारण है कि महिला आरक्षण विधेयक कोई भी दल पास नहीं करा पाया। आज भी माँ–बाप, पुत्री का कन्यादान करके संतोष अनुभव करते हैं। दो प्राणियों का मिलन नहीं है अथवा साथ–साथ रहने का वादा नहीं है एक–दूसरे के पूरक बनाने का संकल्प नहीं है बल्कि विवाह लड़की का संरक्षक बदलना मात्र है।

व्यक्ति की अनेक मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताएँ ऐसी है जिनकी पूर्ति परिवार में रह कर ही संभव हो सकती है। व्यक्ति का जीवन में जो लक्ष्य होता है उसकी पूर्ति परिवार में रह कर ही संभव है। समस्त परिवार से पृथक सर्वथा एकाकी जीवन की कल्पना भी उसके लिए असहाय है। पुरुष ही समाज को बनाते हैं। अतः परिवार में व्यक्तित्व को बनाना परोक्ष रूप से समाज का ही निर्माण है। किसी परिवार में नारी का क्या स्थान है इससे उस समाज की स्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। जिस समाज में नारी जाति का शोषण होता है उसका अर्थ है परिवार एवं समाज का आधा अंग शोषित और पीड़ित है। यदि नारी के अधिकारों का हनन हो, उसे आगे बढ़ने से रोका जाए तो ऐसी स्थिति में संपूर्ण समाज की उन्नति संभव नहीं होगी। प्राचीन काल से स्त्री की स्थिति परिवार व समाज का विकास नापने का मापदंड रही है। कौशल्या बेसंत्री ने दोहरा अभिशाप में माना है कि दलित समाज में यह प्रथा बहुल रूप से देखी जा सकती है। इन इलाकों में आज भी लड़की का अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। उसे एक रखवाला चाहिए उसकी अपनी भावना कोई मायने नहीं रखती।

उसे जिस खूँटे से बाँध दिया जाये उसकी सेवा करना ही उसकी नियती बन जाती है। यही कारण है की परिवार में पुत्री के जन्म पर निराश होते हैं और लड़का होने पर उत्साहित। जब लड़का एवं लड़की में समान स्तर का व्यवहार नहीं होगा तब तक नारी का सामाजिक उत्थान संभव नहीं है।

नारी की पीड़ा को विभिन्न माध्यमों से प्रदर्शित किया जाने लगा। रैली तथा विभिन्न नारों के माध्यम से परिवार व समाज में नारी की स्थिति को सुधारने तथा उसे भी पुरुष के समान अधिकार प्रदान करने की आवाजें मुखरित होने लगी। जिसका प्रभाव अंग्रेजी शासन व्यवस्था पर भी पड़ा। भारतीय परिवारों व समाज में व्याप्त सतीप्रथा इसी प्रकार की कुप्रथा थी जिसे अंग्रेजी शासन व्यवस्था द्वारा खत्म किया गया जिसमें महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह पुरुषों व स्त्रियों द्वारा किया गया।

पुरुष परिवार व समाज द्वारा नारी को सहयोग प्रदान करने के कारण ही धीरे–धीरे समाज का स्वरूप परिवर्तित होता हुआ दिखाई देने लगा तथा स्त्रियां भी शिक्षा प्राप्त कर महिलाओं के उत्थान व अधिकारों की प्राप्ति के लिए लेख लिखने लगी। लेखों की श्रृंखला से ही लेखनी का प्रारंभ हुआ तथा कलम की आवाज समाज में सुनाई देने लगी।

इस काल या समय तक अधिकांश स्त्री व पुरुषों ने अन्यों की जीवनियों को ही लेखन का आधार बनाया लेकिन अंग्रेजी शासन व्यवस्था में वैश्वीकरण व पाश्चात्यकरण ने समाज की कुछ महिलाओं को इस प्रकार की प्रेरणा व आत्मविश्वास प्रदान किया की वह स्वयं अपने बारे में लिख सके तथा उसे प्रकाशित भी कर सके जिससे परिवार व समाज की वास्तविक सच्चाई को समझ सके।

परिवार व समाज में पुरुष द्वारा होने वाले उत्पीड़न, अत्याचार आदि को एक स्त्री समाज के दृष्टिपटल पर ला सके। अतः विश्वविद्यालय व महाविद्यालय स्तर पर कई कवयित्री व लेखिकाओं द्वारा लेख प्रकाशित होने लगे तथा उनका आत्मविश्वास बढ़ने लगा।

एक नारी के चरित्र में जब पुरुष के हस्तक्षेप से उसका स्वरूप परिवर्तित होने लगता है तब उसका स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं रहता, जीवन नीरसता, दुखों, उत्पीड़न से ग्रसित हो जाता है, मन में अनेक प्रकार की कुंठाएं व्याप्त हो जाती है, जीवन सारहीन प्रतीत होता है, जीवन में लोगों द्वारा दिए गए धोखे, छल–कपट, झूठ से जीवन छिन्न–भिन्न सा हो जाता है तो इस प्रकार की परिस्थितियों में कई बार नारी का उत्थान उत्कर्ष की ओर उठने लगता है। उसका करुण व कोमल मन कठिन व कठोर निष्कर्ष के द्वारा निर्णय करने लगता हैं और विद्रोह शारीरिक रूप से प्रदर्शित होने लगता है। एक स्त्री द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा करने तथा भविष्य की सुरक्षा के लिए वह अधिकारों की मांग करने लगती है तथा अपनी आपबीती परिवार की व्यथा–कथा को समाज के सामने रखने लगती है। यह आपबीती ही एक नारी की आत्मकथा की द्योतक होती है।

एक नारी द्वारा अपनी आत्मकथा को स्वयं के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है जो सच्चाई के वास्तविक धरातल पर केन्द्रित होती है तो आत्मकथा की अवधारणा प्रज्वलित होती है। अपने जीवन की घटनाओं को सिलसिलेवार प्रस्तुत करना ही आत्मकथा है।

जब एक स्त्री अपने समान ही अन्य स्त्रियों को समान संवेदनाओं व भावनात्मक सोच से ग्रसित होकर दुःख सहन करते हुए पाती है तो वह यह देखती है कि उसकी जिन्दगी भी वैसी ही है तो वह द्रवित तथा उद्वेलित मन से अपनी कहानी स्वयं बयान करने लगती है जिससे समाज को एक प्रेरणा व अधिकार प्राप्त हो सके।

हिन्दी साहित्य में आत्मकथा की विकास यात्रा निम्न प्रकार से मानी गई है :

दयानन्द युग	प्रारंभिक काल	(सन् 1857 से 1931 ई. तक) (प्रथम उत्थान)
प्रेमचन्द युग	मध्यकाल	(सन् 1932 से 1947 ई. तक) (द्वितीय उत्थान)

स्वातन्त्र्योत्तर युग	आधुनिक काल	(सन् 1947 ई. से आज तक) (तृतीय उत्थान)

कई विद्वानों ने इसे इस प्रकार से भी विभाजित किया है :

दयानन्द युग	(उद्भव काल)	(सन् 1875 से 1931 ई. तक)
प्रेमचन्द युग	(उत्कर्ष काल)	(सन् 1932 से 1946 ई. तक)
स्वातन्त्र्योत्तर युग	(विकास काल)	(सन् 1947 से 1980 ई. तक)
अदत्मनन युग	(उन्नयन काल)	(सन् 1980 से आज तक)

थियोसोफिकल सोसायटी के लिए लिखा गया स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र हिन्दी में लिखित पहली धार्मिक आत्मकथा है।

दयानन्द युग

वर्ष	**आत्मकथाकार**	**आत्मकथा**
1889	श्रीमती हरदेवी	लन्दन यात्रा
1929	इलाचन्द्र जोशी	मेरे प्राथमिक जीवन की स्मृति

प्रेमचन्द युग

वर्ष	**आत्मकथाकार**	**आत्मकथा**
1932	श्रीमती यशोदा देवी	मेरा एक अनुभव
1932	शिवरानी देवी	मेरी गिरफ्तारी

स्वातन्त्र्योत्तर युग

वर्ष	**आत्मकथाकार**	**आत्मकथा**
1956	जानकी देवी बजाज	मेरी जीवन यात्रा
1975	अनीता राकेश	चन्द सपने और
1990	प्रतिभा अग्रवाल	दस्तक जिन्दगी की

1996	प्रतिभा अग्रवाल	मोड़ जिन्दगी का
1996	कुसुम अंचल	जो कहा नहीं गया
1997	कृष्णा अग्निहोत्री	लगता नहीं है दिल मेरा, और......और.... औरत
1998	शिवानी	सुनहुतात यह अकथ कहानी
1999	पद्मा सचदेव	बूँद बावड़ी
2000	शीला झुनझुनवाला	कुछ कही कुछ अनकही
2002	मैत्रेयी पुष्पा	कस्तूरी कुण्डल बसै
2005	रमणिका गुप्ता	हादसे
2005	सुशीला राय	एक अनपढ़ कहानी
2007	प्रभा खेतान	अन्या से अनन्या
2007	मन्नू भंडारी	एक कहानी यह भी
2008	मैत्रेयी पुष्पा	गुड़िया भीतर गुड़िया
2008	चंद्रकिरण सक्सेना	पिंजरे की मैना
2009	कौसल्या बैसंत्री	दोहरा अभिशाप
2010	कृष्णा अग्निहोत्री	लगता नहीं है दिल मेरा
2014	सुमन बेदी	आरोह–अवरोह
2014	मैरी कॉम	मेरी कहानी
2015	रमणिका गुप्ता	आपहुदरी : एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा

आत्मकथा : जीवनी सहधर्मी विधाएं

आत्मकथा की सहधर्मी विधाओं में जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र डायरी, यात्रा वृत्तांत आदि है। इनमें जीवनी आत्मकथा के सबसे निकट है। यहाँ हम हिंदी साहित्य के जीवनी–साहित्य को ही संक्षिप्त में रेखांकित करेंगे क्योंकि आत्मकथा के सबसे निकट जीवनी विधा ही है।

हिंदी साहित्य का संक्षिप्त जीवनी–साहित्य

किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तांत को जीवनी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'बायोग्राफी' कहा जाता है। हिन्दी में जीवनी–साहित्य का शुभारंभ सन् 1882 ई. से प्रारम्भ होता है। ''कार्तिक प्रसाद खत्री ने 1883 ई. में मीरांबाई का जीवन चरित्र लिखा। भारतेन्दु हरीशचन्द्र, राधाकृष्णदास, मुंशी देवीप्रसाद ने भी जीवनी साहित्य का सृजन किया है। बालमुकुन्द गुप्त का प्रतापनारायण मिश्र पर लिखित जीवनी हिन्दी के आरम्भिक जीवनी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। शरतचन्द्र के जीवन पर विष्णु प्रभाकर की 'आवारा मसीहा' (1974 ई.), निराला के जीवन पर डॉ. रामविलास शर्मा की 'निराला की साहित्य साधना' (1969 ई.), मुंशी प्रेमचन्द के जीवन पर उनकी पत्नी द्वारा लिखित 'प्रेमचन्द घर में' (1956 ई.), मदनगोपाल द्वारा रचित 'कलम का मजदूर' (1965 ई.), और प्रेमचन्द के पुत्र अमृतराय द्वारा लिखित 'कलम का सिपाही' (1968 ई.), पंत के जीवन पर आधारित शांता जोशी की 'सुमित्रानन्द पंत' (1970 ई. प्रथम भाग, 1977 ई. में द्वितीय भाग), बंगला के विप्लवी कवि काजी नसरूल इस्लाम के जीवन पर विष्णुचन्द्र शर्मा विरचित 'अग्नि सेतु' (1976 ई.) इत्यादि जीवनीपरक रचनाएँ हिन्दी साहित्य की कुछ ऐसी विशिष्ट एवं उल्लेखनीय कृत्तियां हैं, जिनसे हिन्दी–साहित्य का जीवनी साहित्य अत्यन्त समृद्ध है।

छायावादोत्तर काल में जीवनी–साहित्य का बहुविध विकास हुआ। इस दौर में लोकप्रिय नेताओं, सन्तों, महात्माओं, विदेशी महापुरुषों, वैज्ञानिकों, खिलाड़ियों एवं साहित्यकारों से सम्बन्धित प्रचुर मात्रा में जीवनियां लिखी गई। स्वामी

दयानन्द द्वारा आधुनिक संतों एवं महात्माओं पर सर्वाधिक जीवनियां लिखी गईं। महात्मा गाँधी इस युग के सर्वाधिक ख्याति प्राप्त राष्ट्रीय नेता थे, फलस्वरूप इनसे सम्बन्धित जीवनियां सर्वाधिक मिलती हैं। घनश्याम दास बिड़ला (बापू, 1940 ई.), लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज (महात्मा गाँधी, 1939 ई.), ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' (महात्मा गाँधी, 1940 ई.), सुशीला नायर (बापू के कारावास की कहानी, 1949 ई.) इत्यादि जीवनीकारों ने गाँधीजी पर जीवनियां लिखी, जो अत्यन्त प्रसिद्ध है। हरिकृष्ण त्रिवेदी, छविनाथ पाण्डेय, गिरीशचन्द्र जोशी इत्यादि ने सुभाष चन्द्र बोस पर जीवनियां लिखकर जीवनी साहित्य को समृद्ध किया। माता सेवक पाठक, लक्ष्मण प्रसाद भारद्वाज, देवी धवन प्रसाद इत्यादि ने पण्डित जवाहर लाल नेहरू पर जीवनियाँ लिखी। इसी प्रकार मन्मथनाथ गुप्त ने चन्द्र शेखर आजाद (1938 ई.), सीताराम चतुर्वेदी ने महामना मालवीय (1938 ई.), जगदीश झा विमल ने अबुल कलाम आजाद (1940 ई.), देवराज मिश्र ने राजश्री टंडन (1950 ई.), रामवृक्ष बेनीपुरी ने जयप्रकाश नारायण (1951 ई.), शिवकुमार कौशिक ने प्रियदर्शिनी इन्दिरा गाँधी (1970 ई.), डॉ. अमरनाथ सेठ ने जयप्रकाश नारायण (1975 ई.), डॉ. चन्द्र शेखर ने ज्ञानी जैल सिंह पर जीवनी जीवन यात्रा शीर्षक से लिखकर जीवनी साहित्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्तों–महात्माओं के जीवन–चरित लेखन के क्षेत्र में भदंत आनन्द कौसल्यायन, सुन्दर लाल, दीनदयाल उपाध्याय एवं बलदेव उपाध्याय महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। इनके अतिरिक्त मन्मथनाथ गुप्त (गुरु नानक, 1938 ई.), हंसराज रहबर (योद्धा संन्यासी विवेकानन्द), शिवप्रसाद सिंह (उत्तरयोगी श्री अरविन्द, 1972 ई.), अमृतलाल नागर (चैतन्य महाप्रभु, 1975 ई.), डॉ. रघुवंश (मानव पुत्र ईसा : जीवन और दर्शन, 1985 ई.) के नाम उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी साहित्यकारों ने अनेक विदेशी महापुरुषों की जीवनियां लिखकर जीवनी–साहित्य के क्षेत्र में एक मिसाल कायम की है। नेपोलियन बोनापार्ट (1983 ई., रमाशंकर व्यास), गैरीबाल्डी (1901 ई., सिद्धेश्वर वर्मा), कोलम्बस (1917 ई., शिवनारायण द्विवेदी), सुकरात (1917 ई., बेनीप्रसाद), अब्राहन

लिंकन (1928 ई., सत्यव्रत), महात्मा लेनिन (1934 ई., सदानन्द भारती), हिटलर महान् (1936 ई., चन्द्रशेखर शास्त्री), मिस्टर चर्चिल (1942 ई., अनंत प्रसाद विद्यार्थी) इत्यादि अनेक विदेशी महापुरुषों पर हिन्दी के साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण जीवनियां लिखी। श्रमणलाल अग्रवाल ने हिटलर (1950 ई.), स्तालिन (1954 ई.), लेनिन (1954 ई.), कार्लमार्क्स (1954 ई.) पर जीवनियां लिखी तो राहुल सांकृत्यायन ने स्तालिन, कार्ल मार्क्स, लेनिन, माओत्सेतुंग (सभी 1954 ई. में) को जीवनी साहित्य का विषय बनाया। इस सन्दर्भ में यदि डॉ. रामविलास शर्मा की मार्क्स, त्रोत्सकी और एशियाई समाज (1986 ई.) की चर्चा न की जाए तो बात अधूरी होगी। विदेशी महापुरुषों पर आधारित डॉ. रामविलास शर्मा की यह कृति एक उल्लेखनीय रचना है। राजपाल एण्ड सन्ज कश्मीरी गेट, नई दिल्ली ने विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिकों, आविष्कारकों की जीवनियाँ प्रकाशित कर जीवनी साहित्य के क्षेत्र में सराहनीय योगदान दिया है।

दूसरी ओर इन वर्षों में मुरली मनोहर प्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित फैज की शख्सियत : अन्धेरे में सुर्ख लौ 2002 ई. में, गीतेश शर्मा ने जननायक हो चिह्न और भारत 2013 ई. में, नीतिश कुमार और उभरता बिहार (2013 ई. में), अरुण सिह्ना ने एक संवेदनशील राजनेता शांता कुमार (2013 ई. में), सुशील कुमार फुल्ल, पी.के. सिंह रचित फिदेल कास्त्रों (2014 ई. में), अरुण माहेश्वरी कृत सिरहाने ग्रामसी (2014 ई. में), रश्मि बंसल रचित सात रंग के सपने (2014 ई. में), विजय बहादुर ने आलोचक का संदेश (नंद दुलारे वाजपेयी की साहित्यिक जीवनी) इत्यादि उल्लेखनीय जीवनियाँ हैं। 2015 ई. में यासिर उस्मान ने फिल्म अभिनेता राजेश खन्ना पर 'राजेश खन्ना : कुछ तो लोग कहेंगे' शीर्षक से जीवनी लिखी है।''[41] हिंदी जगत में अब इन दोनों विधाओं पर खुलकर लेखनी चलाई जा रही है। आत्मकथा एक प्रकार की जीवनी ही है।

महिला आत्मकथा लेखन

जब मानव ने समाज के रूप में अपने आप को स्थापित किया तो उसने संस्कृति व परम्पराओं का निर्वहन करना भी प्रारंभ किया। भारतीय वैदिककालीन सभ्यता में स्त्रियों की दशा सामान्य थी। उच्चकुलीन स्त्रियों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। लेकिन मध्यम व निम्नस्तरीय परिवारों में स्त्रियों की दशा दयनीय थी, उन्हें केवल भोग की वस्तु माना जाता था। आर्थिक परिस्थितियों के कारण शिक्षा प्राप्त न करने तथा परम्पराओं, रीतिरिवाजों, आडम्बरों आदि से घिरे होने से स्त्रियों की दशा विचारणीय थी। स्त्रियों को समाज में सम्माननीय स्थान नहीं मिलता था। लेकिन फिर भी उच्च कुल की स्त्रियों द्वारा स्त्रियों की दशा पर भी कई बार आक्षेप भी प्रदर्शित किया गया। लेखक व गीतकारों, कवियों द्वारा स्त्रियों की दशाओं का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया जिससे समाज में महिलाओं में कुछ जागरुकता उत्पन्न हुई।

मध्यम व निम्न स्तरीय परिवारों में महिलाओं की स्थिति दयनीय थी। जागीरदारों व रसूकदारों द्वारा महिलाओं का शोषण किया जाता था। उन्हें बंधुआ मजदूर के रूप में या भोग विलास की वस्तु मात्र समझा जाता था।

ब्रिटिश काल में समाज की स्थिति में परिवर्तन तथा शिक्षा के प्रसार तथा अंग्रेजों की नीतियों, अंग्रेजी परम्पराओं का प्रभाव समाज की गतिविधियों पर अपना प्रभाव डालने लगे। जिससे भारतीय समाज में परिवर्तन की एक नयी लहर का उदय हुआ जिनकी मानसिकता में अंग्रेजी संस्कृति की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती थी।

ब्रिटिश काल में समाज का एक पक्ष जैसे राजा राम मोहन राय जो समाज में स्त्रियों की दशा से चिंतित थे तथा महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों व शोषण को रोकने के लिए उन्होंने कदम उठाये। सतीप्रथा पर रोक लगवाई तथा स्त्रियों को सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए प्रेरित किया। समाज में उन्हें अधिकार दिये जाने के लिए प्रेरणा स्रोत बने। विधवा विवाह को लागू कराया,

जिससे एक स्त्री अपने जीवन को सुखपूर्वक जी सके। राजा राम मोहन राय के साथ विद्यासागर तथा रानाडे जैसे महापुरुषों ने इसमें अहम् भूमिका का निर्वाह किया। ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज ने भी महिलाओं के अधिकारों की रक्षा व आत्मसम्मान के लिए अथक प्रयास किये।

महिलाओं की शिक्षा के अधिकार के प्रयास किये जाने लगे, जिससे समाज की महिलाओं में जागरुकता का संचार हुआ तथा महिला मंडलों, नारी संगठनों आदि के रूप में महिला सशक्तिकरण का उदय हुआ।

दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, तिरस्कार, बाल–विवाह आदि के प्रति समाज में चेतना का संचार होने लगा। कई स्वयंसेवी संस्थाओं तथा सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा तथा प्रशासन के सहयोग से, नारी के अधिकारों की रक्षा के लिए कई प्रकार के कानूनों का निर्माण किया जाने लगा।

इस प्रकार के संघर्ष के दौरान ही कई महिलाओं द्वारा शोषण व अत्याचार के विरुद्ध लेखन के माध्यम से संघर्ष की शुरूआत की गई। ज्योतिबा फुले द्वारा नारी शिक्षा, केसर चन्द्रसेन द्वारा बाल विवाह रोकने, गांधी जी तथा रानाडे द्वारा महिला सशक्तिकरण को प्रोत्साहन, विरेशलिगंम पंथुलु तथा गुरुजादा अप्पाराव द्वारा महिला पुनःजागृति, सरोजिनी नायडू द्वारा महिला शिक्षा, रामबाई, सावित्री द्वारा नारी शिक्षा व विधवा विवाह का समर्थन किये जाने से समाज में एक नयी क्रांति का सूत्रपात हुआ, जिसे महिला जागृति कह सकते हैं। इसीके फलस्वरूप आजादी के संघर्ष में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ।

ऐनी बेसेन्ट तथा पंडित रामाबाई द्वारा महिला जागृति के लिए कई प्रकार के लेख लिखे गये। इसी प्रकार सरोजिनी नायडू, अरुणा आसिफ अली द्वारा महिलाओं के प्रति किया योगदान अमूल्य है। आत्मकथा का भारत में प्रारम्भ ब्रिटिश के भारत आगमन के पश्चात् शुरू हुआ। परन्तु अनौपचारिक रूप से इसकी शुरूआत वैदिक साहित्य के सामवेद–सूत्र, ऋग्वेद (10,32.2), 1500 बी. सी. से तथा बुद्ध साहित्य थेरीगाथा (छठीं शताब्दी से तीसरी शताब्दी) एवम्

संस्कृत साहित्य जैसे ''हर्षचरित्रम्'' (सातवीं) तथा मुगल सहित्य जैसे–बाबरनामा, तुजग–ए–जहाँगीर आदि में भी उल्लेख मिलता है।

औपचारिक तौर पर सर्वप्रथम 1833 में राजा राम मोहन राय द्वारा अंग्रेजी में लघु आत्मकथा से ज्ञात होता है। सर्वप्रथम 1951 में नीरद सी. चौधरी द्वारा आत्मकथा लिखी गई।

1848 में काशी प्रसाद घोष द्वारा पत्रों का प्रकाशन ''Hand Book of Bangal Mission'' में किया गया था। प्रथम बार 1857 में ब्रिटिश आफिसर लुटुफुल्लाह ने आत्मकथा लिखी थी। 1873–76 में लालबिहारी डेस द्वारा ''Recollections of my School Day's'' में श्रृंखला के रूप में बंगाली मैगजीन में प्रकाशित की गई।

इसी प्रकार निशीकांत चट्टोप्पाध्याय द्वारा ''Reminiscences of German University Life" (1892) में तथा रूकहाल दास हेल्डर द्वारा ''The English Dairy of an Indian Student'' 1861–62 में लिखी गई।

बीसवीं शताब्दी में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी द्वारा ''A Nation Making (1925)'' द्वारा आत्मकथा लिखी गई। महात्मा गाँधी द्वारा ''The Story of My Experiments with Truth'' 1927 में लिखी गई। इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी में कई महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा आत्मकथा का लेखन किया गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में नयनतारा सहगल द्वारा ''Prison and Chocolate Cake (1954)'' तथा ''From Fear set Free (1961)'' में तथा लेडी धन्वन्ती रामा रॉय द्वारा ''An Inheritance (1976)'' में प्रकाशित की गई। प्रसिद्ध पंजाबी आत्मकथा लेखिका अमृता प्रीतम द्वारा ''Revenue Stamp and Shdow of Words (2004)'' में लिखी गई। 1998 में शोभा डे द्वारा ''Selective Memories Stories from My Life'' तथा तसलीमा नसरीन द्वारा ''My Girlhood Days'' प्रसिद्ध आत्मकथाएं हैं।

शान्ता रामा रॉय द्वारा ''Remember for the House (1956)'', रूथ पंवार झाबवाला द्वारा प्रथम नॉवल ''To whom She Will (1955)'' व अन्य नॉवल ''Heat and Dust (1975)'' तथा कमला मारकन्डे द्वारा लिखित ''Two Virgins (1994)'', रामा मेहता ''Inside the Havali (1994)'', गीता हरिहरण ''The Thousand Faces of Night (1992)'', अरुंन्धती रॉय द्वारा लिखित ''The God of Small Thing'' प्रसिद्ध नॉवल्स हैं।

इसी प्रकार शशि देशपांड़े, मंजू कपूर, अनीता देसाई, आशापूरणा देवी, छाया दातार, भारती मुखर्जी, कमला मारकण्डे, किरण देसाई, नयनतारा सहगल आदि बीसवीं शताब्दी की प्रसिद्ध लेखिकाएं हैं।

इनके द्वारा लिखित नॉवल्स, लेख आदि का प्रभाव समाज में प्रत्यक्ष रूप से देखने को मिलता है। नारी से सम्बन्धित सभी प्रकार के पक्षों को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना एक प्रकार की कला है जो इनमें दिखाई देती है। यह नारी के विचारों, सोच, क्षमता आदि का खूबसूरती से बखान कर उसे समाज में प्रस्तुत करती हैं। इनके विचारों से नारियों को एक शक्ति व प्रेरणा प्राप्त होती है।

''दुःखिनी बाला द्वारा लिखित 'सरलाः एक विधवा की आत्मजीवनी' हिंदी में किसी स्त्री के द्वारा आत्मकथा लिखने का पहला प्रयास मानी गई है परन्तु इसे आत्मकथा विधा की पहचान प्राप्त नहीं हो सकी।''[42] भारतेन्दु परिवार की प्रतिभा अग्रवाल द्वारा लिखित आत्मकथा ''दस्तक जिंदगी की'' (1990) और ''मोड़ जिंदगी का'' (1996) को आत्मकथा विधा के अनुसार लिखी गई आत्मकथा माना गया है। इसीलिए ''दस्तक जिंदगी की'' को हिंदी की पहली आत्मकथा माना गया है। इन आत्मकथाओं में व्यक्तिगत जिंदगी के सुख–दुःख का मार्मिक वर्णन व चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

आत्मकथा लेखन की समृद्ध परम्परा मराठी के दलित साहित्य में मिलती है। महाराष्ट्र में दलित आंदोलन के उभार के साथ ही दलित वर्ग की स्त्रियों द्वारा आत्मकथा लिखने की पहल की। दलित मराठी लिखित कौसल्या बैसंत्री

की आत्मकथा दोहरा अभिशाप हिंदी में अनूदित है। मराठी की लोकप्रिय अभिनेत्री हंसा बाड़कर की आत्मकथा ''अभिनेत्री की आपबीती'' (1972) मराठी से हिंदी में अनूदित है। अभिनेत्री द्वारा बलात्कार जैसी शारीरिक यातनाओं को बड़ी बेबाकी से वर्णित किया है।

शान्ताकृष्ण कांबले की आत्मकथा ''नाजा'' मराठी से हिंदी में अनूदित है। इसमें एक दलित महिला द्वारा शिक्षा प्राप्त करने की पीड़ा को उजागर किया गया है।

सुशीला टाकमौरे की आत्मकथा ''शिकंजे का दर्द'' जो एक दलित मराठी महिला की दलितों के प्रति नकारात्मक सोच व पीड़ा पर केन्द्रित है।

पंजाबी लेखिका अजीत कौर की आत्मकथा ''खानाबदोश'' (1986) हिंदी में अनूदित है। यह आत्मकथा हृदयस्पर्शी तथा रोचक है। यह आत्मकथा विवाह के पश्चात् मायके ससुराल के संबंधों, मकान बदलने, मकान मालिक से कानूनी लड़ाई पर आधारित है तथा लेखिका की पुत्री कैंडी की जलने से हुई मृत्यु और ओमप्रकाश द्वारा किये गये विश्वासघात पर आधारित है।

पंजाबी लेखिका अमृता प्रीतम की आत्मकथा ''रसीदी टिकिट'' तथा ''अक्षरों के साये'' पंजाबी भाषा से अनूदित है। रसीदी टिकिट लेखकों के द्वारा प्रताड़ित लेखिका की दुख गाथा है। साथ ही रूढ़िवादी परम्परा के विद्रोह तथा प्रेम पर आधारित है। जिसमें लेखिका स्वयं यह मानती है कि ''मन का मेल सर्वोपरि है जब मन मिल जाये तो फिर धर्म, जाति, वर्ग आदि का कोई महत्व नहीं रह जाता है।''[43]

लेखिका द्वारा लिखित ''अक्षरों के साये'' जीवन की समग्र यादों पर आधारित है। जिस पर स्वयं के प्रकाशन का मत निम्न है :

''बचपन से आज तक के अपने जीवन के सभी अध्यायों और अनुभवों को वे किसी न किसी साये के तले जिया गया मानती है जैसे– जन्म लेते ही मौत के साये, फिर हथीयारों, अक्षरों, सपनों, स्याह ताकतों और चिन्तन के साये।''[44]

तस्लीमा नसरीन (बांग्लादेश की विवादास्पद लेखिका) की आत्मकथाएं हिंदी में अनूदित हुई तथा सात खण्डों में प्रकाशित हो चुकी हैं। उर्दू लेखिका इस्मत चुगताई की आत्मकथा ''कागजी है पैरहन'' हिंदी में अनूदित है। इसमें मुस्लिम परिवार की लड़कियों के संघर्ष का वर्णन है।

जोहरा सहगल की आत्मकथा ''करीब से'' (2013) का हिंदी अनुवाद दीपा पाठक ने किया।

1.3 इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखन का परिचय : जो अब विकास के पथ पर अग्रसर हैं :

वर्ष	**लेखिकाएं**	**आत्मकथाएं**
1999	कौसल्या बैसंत्री	दोहरा अभिशाप
2002	मैत्रेयी पुष्पा	कस्तूरी कुंडल बसै
2005	रमणिका गुप्ता	ळादसे
2005	सुशीला राय	एक अनपढ़ कहानी
2007	प्रभा खेतान	अन्या से अनन्या
2007	मन्नू भंडारी	एक कहानी यह भी
2008	मैत्रेयी पुष्पा	गुड़िया भीतर गुड़िया
2010	कृष्णा अग्निहोत्री	लगता नहीं है दिल मेरा
2014	मैरी कॉम	मेरी कहानी

इक्कीसवीं शताब्दी के वर्तमान में कृष्णा उदयशंकर, मीना कन्डासेमे, प्रीति शिनाय, माधुरी बेनजी, किरन मानरल, चित्रा बेनजी दिवाकुरूनी, मीनाक्षी रेड्डी माधवन, अदिती माथुर कुमार, अन्दालेब वाजिद, निलंजना रॉय, शुची सिंह कालरा, सुन्दरी वेंकटरमन, सोनाली देव, रितु ललित, रश्मी बंसल, निओमी दत्ता, रसना अत्रेया, ईरा त्रिवेदी, शमिता अरनी, इन्दरजीत कौर आदि महिलाएं लेखन

के क्षेत्र में अग्रणीय स्थान रखती हैं। समाज में नारी के प्रति सोच को इन महिलाओं ने एक नयी सोच में परिवर्तन कर नारी को एक स्थान पर लाकर रख दिया है। जहाँ उसे आत्मसम्मान व गौरव का अहसास होता है कि समाज में उसका भी वही स्थान है जो एक पुरुष का है। उसके भी वही अधिकार है जो समाज एक पुरुष को प्रदान करता है।

बीसवीं शताब्दीं में विश्व स्तरीय सामाजिक कार्य होने, जागृति व जागरुकता के कारण महिलाएं भी अपने अधिकारों की रक्षा के लिए समाज में आगे आने लगी। इस शताब्दीं में मीडिया की भूमिका बहुत अहम रही। विभिन्न संगठनों, समाजसेवी संस्थाओं द्वारा समाज में महिलाओं के शोषण व घरेलू हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई जाने के कारण, प्रिन्ट मीडिया, अखबार आदि में समाचार के कारण समाज का एक वर्ग नारी को पुरुष के समान अधिकार प्रदान करने लगा तथा नारी की वर्तमान में भूमिका को देखते हुए उसे सम्मान प्रदान किये जाने पर बल दिया जाने लगा है।

समाज में कई महिलाओं द्वारा समाज में संघर्ष कर अपने को समाज में प्रतिष्ठित किया है। इस प्रकार से संघर्षपूर्ण जीवन जीने वाली कई महिलाओं ने इसे प्रेरणा स्रोत्र के रूप में, जागृति के लिए आत्मकथा के रूप में लिखा, जिससे समाज में अत्याचारों, रीतिरिवाजों, आड़म्बरों से ग्रसित महिलाओं में जागरुकता की एक नयी लहर का उदय हो सके। वह अपनी क्षमता, सोच आदि को एक नयी दिशा प्रदान कर सके।

प्रस्तुत शोध में समाहित महिला आत्मकथाओं के लेखन के पीछे कई कारण रहे हैं जिनके कारण ही एक महिला अपनी आत्मकथा को लिखने के लिए प्रेरित होती है जो निम्न प्रकार हैं–

कस्तूरी कुण्डल बसै

मैत्रेयी पुष्पा, 2002 उत्तर आधुनिकता की और इशारा करती आत्मकथा है। इसमें वह लिखती हैं–''यही है हमारी कहानी।'' मेरी और मेरी माँ की

कहानी जिनकी पारिवारिक स्थिति बड़ी ही दयनीय व कष्टप्रद बताई गई। घर में कई–कई दिन तक खाने का अभाव। परिवार अत्यंत गरीबी में जी रहा है। अंग्रेजों द्वारा लगान वसूला जाता है तथा जमींदारों द्वारा घरों को लूटा जाता है। गरीबी व अत्याचार से तंग आकर लेखिका के पिता उसकी माँ को छोड़कर चले जाते हैं। इसी तंग हाल में भी कस्तूरी का ब्याह कर दिया जाता है। ससुराल में पति ब्याह के लिए 800 रुपये उधार लेकर ब्याह कर कस्तूरी को गर्भवती कर साहूकार के डर से भाग जाता है। पीहर की तरह ससुराल की भी स्थिति समान ही होती है। कुछ समय बाद ही पति की मृत्यु हो जाती है तथा कस्तूरी की गोद में अठारह महीने की अबोध बालिका रह जाती है।

कस्तूरी के पति द्वारा छोड़कर जाने तथा उसके विधवा हो जाने पर समाज की परवाह न करते हुए वह रेशमी वस्त्र व गहने पहनती है। अपनी जमीन की रक्षा के लिए स्वयं अपने को तैयार करती है। कस्तूरी रोज–रोज का झोला लेकर मीरांबाई बनकर फिरती है। माँ उसका विरोध करती है। वह माँ को सबसे बड़ा दुश्मन मानती है। मायके से रिश्ता काट देती है। मैत्रेयी द्वारा संगीत की ओर रुझान का वह विरोध करती है। मैत्रेयी के कुछ बड़ी होने पर वह उसकी चोटी काट देती है। इस समय मैत्रेयी माँ को दुश्मन समझती है। मैत्रेयी द्वारा बी.ए. में पढ़ते हुए सोलह साल की उम्र में ब्याह करने की कहना माँ के सपनों पर चोट करने जैसा था परन्तु कस्तूरी उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपहास में बदल देना चाहती है। माँ को उसकी साधारण गृहस्थी से चिढ़ हो रही है। माँ मैत्रेयी से कहती है– ''स्त्रीत्व माने स्त्री शक्ति तू उस स्त्री शक्ति को गंवाने पर तुली है, मुसीबत तो यही है'' कस्तूरी मैत्रेयी को नौकरी लगाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती है परन्तु मैत्रेयी ब्याह करना चाहती है। गाँव का मुखिया भी मैत्रेयी के विवाह की बात करता है परन्तु कस्तूरी उसका विरोध करती है। एक दिन दर्जी का बेटा मैत्रेयी को प्रेमपत्र लिखता है और माँ उसकी औकात बताकर उसका विरोध प्रकट करती है। कस्तूरी दहेज न देने की कसम से बंधी होने पर समाज व परिवार का विरोध करती है तथा किसी की भी बात

नहीं सुनती। शादी के ऐसे समय पर उसकी माँ कस्तूरी को थप्पड़ तक मार देती है, ऐसे समय पर मैत्रेयी को माँ सबसे बड़ी दुश्मन लगती है। शादी के पश्चात् पति द्वारा उसका निरादर व तिरस्कार करने पर एक दिन वह उसका विरोध प्रदर्शन भी करती है। क्योंकि जिस विवाह सुख की उसने कल्पना की थी। पति उसे उससे वंचित कर रहा था जिसके कारण पति–पत्नी के रिश्ते में प्रतिरोध की स्थिति बन गयी थी।

हादसे

रमणिका गुप्ता, 2005 की आत्मकथा हादसों के मुठभेड़ों की शृंखला है। इसमें अपने आस–पास के कई लोगों का अक्स है। मुख्य सरोकार आदिवासी जीवन से रहा है। लेखिका खुद को कोयले की रानी और पानी की रानी बताती है। इसके पीछे यह तथ्य है कि उन्होंने झारखंड के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कोयले और पानी के लिए अनवरत संघर्ष किया है। आपने पुरुषवादी पितृसत्ता और सामन्तवादी मानसिकता को धता बताई है। आपने एक और स्त्री स्वाभिमान की लड़ाई लड़ी है तो दूसरी और दलितों साथ होने वाले भेदभावों का समाधान प्रशस्त किया है।

मजदूर संगठनों में काम करती है। वह खदान मजदूरों, दलितों, आदिवासियों एवं औरतों की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश करती रही है।

एक अनपढ़ कहानी

सुशीला राय, 2005 आत्मकथा में पति, बच्चों के साथ अकेला रहता है। बच्चों को संभालकर ऑफिस भी जाता है। पति–पत्नी दोनों तालमेल बनाकर रहने की कोशिश करते हैं। पति पर निर्भर पत्नी का जीवन दुःख का अध्याय होता है। पति के साथ उसकी खुशी जुड़ी हुई होती है। पति के बिना उसका जीवन दुःख यातना से भर जाता है। आत्मकथा की पात्र चम्पा के पति की मृत्यु से उसका जीवन दुःखों से भर जाता है। वह तीन बच्चों की परवरिश की

कल्पना से दुःखी होती है। विधवा नारी का जीवन असुरक्षित बनता है। बच्चों की चिन्ता, और स्वयं की रक्षा के पाटों में उसकी जिन्दगी पिस जाती है।

अन्या से अनन्या

प्रभा खेतान, 2007 लिव इन रिलेशनशिप में है या अविवाहित पत्नी है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा अन्या से अनन्या में प्रेम को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया तथा जिससे प्रेम किया जीवनभर उसका साथ भी दिया परन्तु डॉ. सर्राफ न तो उससे प्रेम कर सके, ना रिश्ते को मान सके। बल्कि बिना नाम के रिश्ते पर भी शक करते थे। जब प्रभा जी व्यवसाय से जुड़ी तथा आर्थिक रुप से सुदृढ़ होने लगी तो जो सम्मान उन्हें अपमानित करता था उसी ने उन्हें पद प्रदान किया, सम्मान दिया। उन्होंने स्वयं अपनी पहचान बनायी। लेखिका अपना सर्वस्व देकर भी डॉ. सर्राफ के परिवार की देखभाल एक पत्नी के रूप में करती है परन्तु अन्ततः उनके रिश्तों को कोई भी स्वीकार नहीं करता। वह मानती है कि एक स्त्री का विवाह करना आवश्यक है।

एक कहानी यह भी

मन्नू भंडारी, 2007 में जिस लेखक को अपना आदर्श मानती है तथा उसके द्वारा विवाह का प्रस्ताव प्राप्त होता है तो उनकी कल्पना साकार होते हुए नजर आती है परन्तु विवाह के पश्चात् ''समानान्तर जिन्दगी'' का जो आधुनिक पैटर्न पति द्वारा दिया जाता है उससे उनकी जिन्दगी रेगिस्तान में जल की तलाश में फिरने वाले मृग के समान हो जाती जिसे पति तो नजर आता है परन्तु उसका प्रेम तथा साथ उन्हें प्राप्त नहीं होता। उनके रिश्ते में एक ठहराव व ठण्डापन ही रह गया था परन्तु प्रेम करने की विवशता के कारण पति का साथ छोड़ने में उन्हें तीस वर्ष लग गये। धीरे–धीरे उन्होंने अपने जीवन को पुनः साहित्य की ओर अग्रसर किया तथा उन्हें सफलता प्राप्त होती गई।

गुड़िया भीतर गुड़िया

मैत्रेयी पुष्पा, 2008 एक स्त्री के भीतर की अनेक स्त्रियों की परतों के व्यक्तित्व का उद्‌घाटन है। लेखिका पर कबीर और निर्गुण काव्यधारा का प्रभाव परिलक्षित है। अध्यायों के शीर्षक कबीर काव्यों की पंक्तियों पर आधारित हैं। माँ एवं पति के प्रति विरोध एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति द्वारा वह अपने पाठकों तक यह संदेश पहुँचाना चाहती हैं कि वे अपनी नायिका की तरह पुरुष सत्ता के प्रति विद्रोहिणी हैं। डॉ. शर्मा को सारंग और मैत्रेयी में साम्य दिखाई देता है। दाम्पत्य जीवन में जो समझबूझ और समायोजन जरूरी है, वह लेखिका और डॉ. शर्मा के पास है। मैत्रेयी की रचनात्मकता लेखन ही नहीं गृहस्थ जीवन के संतुलन में भी सक्रिय दिखाई देती है। आज मैत्रेयी को तीन बेटिया हैं, उनके तीन पीढ़ियों में बेटा नहीं है। मैत्रेयी की पहली बेटी नम्रता है, वह डॉक्टर है। दूसरी बेटी मोहिनी भी डॉक्टर है, उसने एम.एस. किया है। तीसरी बेटी सुजाता है, वह भी डॉक्टर है। लेखिका विवाह के बाद अपने पारिवारिक जीवन में उलझ गई कि उसे अपने पढ़े–लिखे होने का अहसास नहीं रहा। वह घर की सभी मर्यादाओं का पालन करती है। उन्होंने वैवाहिक जीवन के सीमित दायरे में जीना पसन्द किया। उन्होंने अपनी बेटियों को अपने पैरों पर खड़ा किया। वह यह मानती थी कि लड़की पढ़–लिखकर कितने ही ऊँचे ओहदे पर काम करती हो, लेकिन परिवार उससे छूटता नहीं है। घर के सभी काम उसे ही करने पड़ते हैं। विकास का मतलब परिवार की ओर अनदेखा करके मनमानी करना नहीं बल्कि पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए जितनी प्रगति कर पाये, उसी में मनुष्य जीवन की सफलता है। परिवार के टूटने–बिखरने की कीमत पर विकास, सुधार या सामाजिक प्रतिबद्धता की बातें करना खोखलापन है। ग्रामीण संस्कारों वाली मैत्रेयी पति के साथ देश की राजधानी दिल्ली पहुँचती है। पति पत्नी को आधुनिक बनाना चाहता है और नियन्त्रण भी रखना चाहता है। पति द्वारा मैत्रेयी पर थोपी गई आधुनिकता दिखावटी और सीमित है। मैत्रेयी घर–गृहस्थी के पिंजरे में बन्द मैना–सी जिन्दगी नहीं जीना चाहती। वह उन्मुक्त होकर उड़ान

भरना चाहती है। जो उसकी उड़ान में बाधा डालता है, उससे उसकी टकराहट होती रहती है। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का जीवन सराहनीय है।

लगता नहीं है दिल मेरा

कृष्णा अग्निहोत्री, 2010 की आत्मकथा पितृसत्तात्मक समाज की लिंग भेद की पक्षपातपूर्ण नीति के दुष्परिणामों की ओर संकेत करती है। उनको भोग्या बनना या सौदा करना रास नहीं। उसने दो बार शादी कर संतुलित एवं संस्कारबद्ध जीवन जीने की कोशिश की थी। सुन्दर स्त्री के प्रति कामुक पुरुषों की दूषित निगाहें उसके जीवन को संकटग्रस्त बनाती है। हर किसी पर विश्वास करने की प्रवृत्ति उन्हें अनावश्यक उलझनों के जाल में फंसाती है। उनमें लोलुप व्यक्तियों को कड़ी फटकार देने के साहस की कमी नहीं है। किसी व्यक्ति की बुराइयों का उल्लेख करते हुए वे अच्छे गुणों का भी निर्देश करती है। हिन्दी लेखिका का जीवन निष्कंटक और सुखदायी नहीं है। पुरुष का अहं उसके पथ की दीवार है।

दोहरा अभिशाप

कौसल्या बैसंत्री, 1999 दलित नारी और समाज की उन्नति चाहती है। कौशल्या बैसंत्री को सामाजिक अन्याय–अत्याचार का शिकार होना पड़ा है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनके अपने समाज के लोगों ने ही निर्माण की थी। उनकी बिरादरी के लोगों ने ही उन्हें पढ़ने से रोका था। इतना ही नहीं बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा से काम करने वाले सहयोगियों ने जबरन यौनाचार करना चाहा था। बस्ती के लोगों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया था। वह उच्च वर्ण की नारी से विशेष उम्मीद नहीं रखती क्योंकि उन्होंने ऑल इण्डिया प्रोगेसिव विमेन्स एसोशिएशन में साथ नहीं दिया था। उन्होंने भारतीय महिला जागृति समिति द्वारा दलित महिलाओं की समस्याओं को उठाना चाहा। दिल्ली की बहुत सारी महिला संस्थाओं को निमंत्रित किया गया। वह राजनीतिक जागरण से परिचित है वह मानती है कि–''अगर हम स्वाभिमान से

अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पाँवों पर खड़ा होकर, अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अन्दर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा। तभी दलित महिला का उत्थान हो सकता है। उसकी पहली मुठभेंट सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं तो दलित पुरुष सत्ता से है। वह नारी जागरण के कारण पुरुष गुलामी को तोड़ती है। वह पति को छोड़कर बेटे के साथ रहती है। शिक्षा और जागरण के कारण वह बच्चों के जन्म को भगवान की मर्जी मानकर स्वीकारने का विरोध करती है। वह जान चुकी है कि ऐसी मानसिकता का कारण अशिक्षा और अज्ञान है।

पारिवारिक जीवन

एक नारी का जीवन परिवार से प्रारम्भ होता है तथा परिवार में ही खत्म हो जाता है। एक अबोध बालिका का बचपन तथा रिश्ते, सम्बन्धों का सीधा प्रभाव उसके अन्तर्मन पर पड़ता है जो उसकी शारीरिक तथा मानसिक दशा के लिए उत्तरदायी होते हैं।

परिवार में रहते हुए एक नारी की यौन इच्छाओं की पूर्ति, संतानोत्पत्ति, बच्चों का पालन–पोषण, सदस्यों में आपसी प्रेम, स्नेह, सद्भाव, सहानुभूति, आत्मीयता से निर्मित मानसिक शांति एवं सुरक्षा, सदस्यों की शारीरिक रक्षा, भोजन और वस्त्र की व्यवस्था, निवास स्थान की व्यवस्था, श्रम विभाजन, धनोपार्जन एवं खर्च का प्रबंध सदस्यों का सामाजिक स्तरीकरण, व्यक्ति पर नियत्रंण कर मार्गदर्शन प्रदान करना, बच्चों तथा बड़ों के मध्य आपसी प्रेम, परोपकार, कर्तव्य, आज्ञापालन आदि का व्यावहारिक ज्ञान, घर–परिवार में मनोरंजन का आयोजन, धार्मिक क्रियाकलाप, संस्कृति की शिक्षा, आत्मीय सम्बन्ध व अपनत्व की भावना, सम्मान, राजनीतिक शिक्षा तथा कार्यों की पूर्ति की व्यवस्था आदि का प्रभाव नारी के मन तथा कार्यों पर पड़ता है जिसका प्रभाव उसके जीवन पर भी परिलक्षित दिखाई पड़ता है।

इसी प्रकार से परिवार में एक विवाह, बहु–विवाह अन्तः विवाह, विच्छेदन, परित्यक्ता, बहुपत्नी आदि के साथ पितृसत्तात्मक, मातृसत्तात्मक आदि का प्रभाव भी नारी के व्यवहार को प्रदर्शित करता है।

एक परिवार में सदिगत परम्पराएं, धार्मिक रीति–रिवाज कानून की पालना आदि का प्रभाव भी स्त्री के चरित्र पर स्पष्ट दिखाई देता है।

परिवार में रहते हुए परिवार की सोच, विचार, कृत्य आदि का प्रभाव स्त्री के मन मस्तिष्क पर पड़ता है तथा उसका व्यवहार भी वैसा ही हो जाता है।

अधिकांश परिवारों में झूठे अभिमान तथा समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए ढोंग किये जाते हैं तथा उन परिवारों की वास्तविक स्थिति सोच विचार तथा कृत्य अमानवीय तथा घृणित होते हैं जो एक नारी या स्त्री को केवल पैर की जूती समझते हैं या उनके लिए नौकरानी या खेलने का खिलौना मात्र होती है उनके लिए एक नारी का स्वयं का कोई अस्तित्व नहीं होता है वह केवल पुरुष के उपभोग की वस्तु मात्र होती है।

वर्तमान समय में परिवार छोटे होते जा रहे हैं। एकल परिवारों की संख्या बढ़ रही है तथा परिवार टूट रहे हैं। जिनके उपर्युक्त कारण ही है जो परिवारों को तोड़ रहे हैं।

आधुनिकता की दौड़ तथा सुख–सुविधाओं, धन, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए व्यक्ति अपनी नौकरी या व्यवसाय में इस प्रकार से उलझ गया है कि उसके पास परिवार (पत्नी तथा बच्चों) के लिए समय नहीं है, विचारों का आदान–प्रदान नहीं है, मनोरंजन नहीं हैं तथा मेल–मिलाप नहीं रहा। आत्मीयता, विश्वास खत्म हो रहा है। जीवन की कठिनाईयों व परेशानियों का दबाव, डर, भय आदि सभी का गुस्सा, कुण्ठा वह स्त्री या नारी पर ही उतार देता है जिससे रिश्तों में कटुता व कड़वाहट उत्पन्न हो रही है जो धीरे–धीरे रिश्तों को खोखला कर उन्हें खत्म कर देती है।

एकल परिवार का बोझ स्वयं एक पति व पत्नी को ही उठाना पड़ रहा है जीवन की परेशानियां उनकी स्वयं की ही हैं और उन्हें ही दूर करना होता है। यदि नहीं कर पाते या सामंजस्य या समायोजन की स्थितियां बिगड़ती हैं तो परिवार टूटता है।

इसी प्रकार से संयुक्त परिवार में कुछ महिलाएं या नारी सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेकर कार्य करती रहती है तथा कुछ तटस्थ रहती हैं जिसके कारण भी परिवारों के मध्य तनाव उत्पन्न होता है झगड़े होते हैं तथा उनका शिकार भी महिलाएं ही होती हैं।

स्थिति इतनी विकट होती जा रही है कि एक नारी या पुरुष विवाह के बंधन से मुक्त रहकर साथ जीवन जीना चाहता है बिना किसी शर्त या नियम के।

दोहरा अभिशाप (कौशल्या बैसंत्री) में कौशल्या के माता–पिता गरीब थे परन्तु आपसी समन्वय के कारण वह बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान कर सके।

एक अनपढ़ कहानी (सुशीला राय) में पति, बच्चों के साथ अकेला रहता है। बच्चों को संभालकर ऑफिस भी जाता है। पति–पत्नी दोनों तालमेल बनाकर रहने की कोशिश करते हैं।

अन्या से अनन्या (प्रभा खेतान) में ''चालीस वर्षीय प्रेमी के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देती है।''[45]

सम्बन्धों में कटुता

नवजीवन में प्रवेश करने के पश्चात् घर–परिवार की जिम्मेदारियों से दूर होने या न उठा पाने के कारण पति–पत्नी में अक्सर झगड़े, तनाव होता है जो धीरे–धीरे रिश्तों को तोड़ देता है। बांझ होने के बोझ से नारी हमेशा अत्याचार का शिकार होती हुई आयी है तथा सामाजिक कार्यों में अधिक झुकाव के कारण भी सम्बन्धों में विच्छेदन देखा गया है।

पुरुष का उत्तरदायित्व

अधिकांश आत्मकथाओं में तथा वास्तविक समाज की पारिवारिक समस्याओं में पुरुष अपने उत्तरदायित्व व कर्तव्यों से विमुख देखा गया है। वह घर–परिवार के कार्यों में बहुत कम रुचि दिखाता है। इस प्रकार से अन्य स्त्रियों में उसे प्रेम नजर आता है वह अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए हमेशा तैयार रहता है जबकि पत्नी उसे केवल तृप्ति का साधन मात्र नजर आती है।

स्वार्थी प्रवृत्ति

वर्तमान समय में रिश्ते खोखले होते जा रहे हैं। व्यक्ति रिश्ते वहाँ तक निभा रहा है जहाँ तक उसका स्वार्थ सिद्ध हो रहा होता है। यही वस्तु–स्थिति पारिवारिक संबंधों में भी होने लगी है। यदि पति को लगता है कि पत्नी अब उसके लायक नहीं तो संबंध विच्छेद हो जाता है जो एक दुर्भाग्यपूर्ण विषय है। पति अधिकांश पत्नी पर हमेशा अत्याचार करता है जब तक की उसकी स्वार्थ सिद्धि पूर्ण नहीं हो जाती वर्तमान समय में पत्नी भी पुरुषों के समान व्यवहार प्रदर्शित करने लगी है। अपने स्वभाव, स्वार्थीपन, अहंकारवश पुरुष अपने कई कर्तव्यों व दायित्वों को नहीं निभाता जिसके कारण भी परिवार टूट रहे हैं।

पत्नी पर अत्याचार

पुरुष प्रधान समाज हमेशा से एक स्त्री को भोग तथा उपयोग की वस्तु मात्र मानता आया है उसके लिए एक स्त्री आदर व सम्मान के योग्य नहीं होती है। उसका कार्य केवल पति को खुश व सुख प्रदान करना तथा परिवार को संभालना ही है। पुरुष अपने अहं के कारण छोटी–छोटी बातों पर अक्सर पत्नी को मारते–पीटते हैं, गालियां देते हैं, अत्याचार व प्रताड़ित करते हैं।

दोहरा अभिशाप में दादा हमेशा दादी को गालियां देते थे, मारते–पीटते थे। कौसल्या का पति देवेन्द्र खाने–पीने की सभी वस्तुओं को अलमारी में बन्द करके रखते थे। पति को पत्नी की आवश्यकता से कोई मतलब नहीं था अतः उसका जीवन नरक बन गया था।

विचार व प्रथाएं

भारतीय समाज में जिस प्रकार के विचार एक पति अपनी पत्नी के लिए रखता है तथा प्रेमिका या अन्य स्त्रियों के सम्बन्ध में रखता है उससे उसकी मानसिकता तथा कुविचारों का पता चलता है। यही विचार उसके व्यवहार में आते हैं तथा उसी प्रकार के कृत्य पुरुष करता है। एक पुरुष अपनी संतान को भी वही प्रदान करता है जिससे यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है।

परन्तु वर्तमान समय में प्रेम की अवधारणा में परिवर्तन आने लगा है आपसी समन्वय तथा तालमेल को प्रेम की संज्ञा प्रदान की जाने लगी है। युवा पीढ़ी अपने साथी के विचारों तथा व्यवहार को समझते हुए जीवन जीना चाहते हैं। अतः नारी के प्रति सम्मान व प्रतिष्ठा बढ़ भी रही है। परन्तु कहीं ना कहीं पुरुष का अहं नारी की गरिमा को ठेस अवश्य पहुँचा रहा है। वह किसी ना किसी रुप में अत्याचार या प्रताड़ित अवश्य कर रहा है।

समाज में स्थापित परम्पराओं, रीति–रिवाजों में हमेशा नारी को पुरुष से कम स्थान प्रदान किया जाता है। नारी ही नारी को दोषी तथा पुरुष से कम मानती है। पुरुष को वह स्वयं भगवान तथा मुखिया के रुप में देखती है तथा स्वयं को परिवार का केवल अंग मानती है जिसका फायदा पुरुष हमेशा उठाता है। वह स्वयं यदि परिवार की प्रमुख मानकर कार्य करे तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि उसे भी सम्मान व प्रतिष्ठा प्राप्त न हो। समाज में नारी के लिए विचारों को परिवर्तित करने से ही नारी पर होने वाला शोषण रोका जा सकता है।

नारी शिक्षा

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै), प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) में आत्मकथाकारों ने नारी शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए इसे नारी के आत्मसम्मान तथा गौरव के साथ भी जोड़ा है। शिक्षा का अभिशाप केवल किताबी ज्ञान से न होकर व्यावहारिक तथा सामाजिक ज्ञान से होता है जो एक

स्त्री को सम्मान तथा गौरव प्रदान करता है तथा वह स्वयं अपना लक्ष्य निर्धारित कर उसे प्राप्त करती है तथा समाज उन्हें सम्मान प्रदान करता है। शिक्षा प्राप्त करके तथा अनुभवों से नारी में ऊर्जा का संचार होता है, आत्मचेतना प्रबल होती है तथा अपनी समस्याओं व दुःख–दर्द से स्वयं ही लड़ने की प्रेरणा उसे प्राप्त होती है।

इस प्रकार की आत्मकथाएं स्वयं नारी के लिए प्रेरणात्मक स्रोत है जो समाज से प्राप्त, परिवार से प्राप्त दुःख दर्दों तथा अन्य आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक समस्याओं से ग्रसित है। जो उन्हें उस परिस्थितियों से बाहर निकलने को प्रेरित करती है।

रूढ़िगत परम्पराओं पर प्रगतिशील विचारों का प्रभाव

आत्मकथाओं में तथाकथित पुरुष स्वयं को अहंकारी, विलासी भोगी प्रदर्शित करता आया है तथा उसके इस प्रकार के व्यवहार का प्रभाव नारी पर परिणामस्वरुप प्रदर्शित होते हुए देखा जाता रहा है। एक पुरुष के असामाजिक कार्य हमेशा नारी को ही दोषपूर्ण मानते हैं।

रूढ़िगत परम्पराओं के नाम पर नारी को ही बलि पर चढ़ाया जाता है पुरुष के लिए कोई परम्परा नहीं होती है।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) में लेखिका ''रूढ़िगत परम्पराओं का विरोध करती हुई एक अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ प्रेमवश रहती है तथा उस सम्बन्ध को निभाती है।''[46]

सभी आत्मकथाओं में नारियों द्वारा किसी ना किसी रूढ़िवादी परम्पराओं का विरोध कर, संघर्ष करते हुए एक मुकाम हासिल किया हैं।

समाज के साथ विचारों में परिवर्तन लाते हुए नारी अब प्रगतिशीलता के पथ पर अग्रसर होती हुई प्रतीत होती है तथा अन्यों के लिए भी एक प्रेरणा तथा मंच प्रदान करती है।

सामाजिक तथा मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन

वर्तमान समय में नारी ने यह सिद्ध कर दिया कि वह परिवार में बेटे से कम नहीं है बल्कि एक बेटे से भी बढ़कर है अतः आज के अभिभावक अपनी बेटी का हमेशा हर परिस्थितियों में साथ देने को तैयार हैं। अब समाज में दोहरी मानसिकता में बदलाव एवं परिवर्तन हो रहा है।

आज नारी नौकरीपेशा होकर घर व परिवार की जिम्मेदारी को भी बखूबी निभा रही है तथा समाज की मानसिकता को बदल रही है वर्तमान नारी टी–शर्ट, जींस पहनकर मीडिया, मल्टीनेशनल कम्पनियों में कार्य कर अपना सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त कर रही है। पुरुष प्रदान क्षेत्रों में भी अपना वर्चस्व स्थापित कर चुकी है। समाज के दोहरे मापदण्ड का वह खुलकर विरोध प्रदर्शन कर रही है। समानता की मांग कर रही है तथा उसे प्राप्त भी कर रही है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय की नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग है तथा उसमें आत्मविश्वास है, जागरुकता है, समाज के सामाजिक ढांचे में तथा मानसिकता में परिवर्तन लाने के लिए तैयार है।

1.4 निष्कर्ष

आत्मकथा लेखन केवल मात्र किसी के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं होता है। नारी आत्मकथा में पात्रों का उल्लेख, उस पर होने वाली अत्याचारों, मन की कुण्ठा, समाज व परिवार तथा अन्यों से प्राप्त तिरस्कार, व्यक्तियों द्वारा दिये गये धोखे, मान–सम्मान व प्रतिष्ठा पर आँच, मन की भावनाओं, समाज व परिवार में उपयुक्त स्थान प्राप्त न होने, स्त्री होने के नाते कई प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहने के कारण, समाज में व्याप्त कई प्रकार के असामाजिक कृत्यों से परेशान होकर प्रेरणा के रूप में अपने को स्थापित करना।

इस प्रकार अपने जीवन की सच्ची व कड़वी यादों को आत्मकथा में वर्णित किया जाता है। जिससे समाज में एक नयी सोच का उदय हो सके।

समाज में महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाये। आज भी समाज में महिलाओं को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, जो स्थान पुरुष को प्राप्त है फिर भी समाज में बालिका शिक्षा व नारी उत्थान, महिला सशक्तिकरण ने समाज में एक नयी दिशा व सोच की नींव रखी है। जो आगे जाकर मील का पत्थर साबित होगा।

संदर्भ सूची :

1. हिन्दी आत्मकथाएं संदर्भ और प्रकृति– श्याम सुन्दर पाण्डेय, पृ. 23

2. सिद्धान्तालोचन– श्री धर्मचंद संत, पृ. 2

3. आदर्श हिन्दी कोश– पृ. 3

4. वृहद् हिन्दी कोश– पृ. 7

5. मानक हिन्दी कोश– पृ. 2

6. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत– डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, पृ. 508

7. साहित्य के नये रूप– डॉ. श्याम सुन्दर घोष, पृ. 18

8 आस्था के चरण– डॉ. नगेन्द्र, पृ. 202

9. पत्रकार प्रेमचंद और हंस– डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ. 144

10 पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्ता, पृ. 350

11. काव्य के रूप– बाबू गुलाब राय, पृ. 232

12. हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास– डॉ. चन्द्रावती सिंह, पृ. 14

13. मेरी आत्मकथा– गंगा प्रसाद, पृ. 1

14. हिंदी आत्म कथा– डॉ. नारायण विष्णु शर्मा, पृ. 1

15. हिंदी साहित्य में आत्मकथा– सरोज जग्गी, पृ. भूमिका से

16. हिंदी का जीवनी परकसाहित्य– डॉ. शांति खन्ना, पृ. 13

17. गद्य विविधा– ओमप्रकाश सिंहल, पृ. 13

18- Oxford Dictionary-Cvol-I- P. 573

19- Shorter oxford English Dictionary- P. 126

20- Cassels Encyclopedia of Literature- by S.H. Steinsburg- P. 62

21. A Reader's Guide to Literary Terms-by Rail Backson and Arthuyr Gan- P. 21

22. Design and Truth in Autobiography- Dr. Roy Pascal- P. 9&2

23. Dictionary of Literature- J.T. Shipley- P. 23

24. One mighty Torrent- Johnson- P. 97

25. Experiment in Autobiography- H.G.Wells. Vol.Second- P. 417

26. Art of Autobiography-Dr. D. G. Naik- P. 11

27. आधुनिक हिंदी का जीवनी परक साहित्य– डॉ. शांति खन्ना, पृ. 39

28. हिंदी साहित्य में जीवन–चरित्र का विकास–चन्द्रवती सिंह, पृ. 29

29. आस्था के चरण– डॉ0 नगेन्द्र, पृ. 202

30. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त– डॉ0 शांतिस्वरूप गुप्ता, पृ. 370

31. साहित्य के नये स्वरूप–डॉ. श्यामसुन्दर घोष, पृ. 28

32. राहुल जी का जीवनी यात्रा साहित्य– जनक दुलारी सहगल, पृ. 66

33. मेरी आत्मकथा– रवीन्द्रनाथ ठाकुर पृ. भूमिका से

34. अरुणायन एक आत्मकथा– श्री रामवतार पोद्दार अदण, पृ. भूमिका से

35. क्या भूलूं क्या याद करूँ– हरिवंशराय बच्चन पृ. भूमिका से

36. मेरी आत्म कहानी– डॉ. श्यामसुंदर दास पृ. निवेदन से

37. भारतीय मानककोश, संपा. डॉ. नगेन्द्र पृ. 94

38. हिंदी मानक कोश– भाग–2 संपा0 रामचंन्द्र वर्मा पृ. 249

39. हिंदी साहित्य कोश– भाग–2 संपा0 धीरेन्द्र वर्मा पृ. 98

40. रसीदी टिकट– अमृता प्रीतम पृ. 228

41. हिंदी साहित्य– डॉ. विवेक शंकर, पृ. 397–398

42. महिला आत्मकथा लेखन में नारी– डॉ रघुनाथ गणपति देसाई पृ. 51

43. रसीदी टिकट– अमृता प्रीतम, पृ. 42

44. अक्षरों के साथ– अमृता प्रीतम, फ्लैप से

45 अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, फ्लैप से

46 वही

अध्याय – 2

अध्याय – 2

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन

2.1 पारिवारिक स्थिति

2.2 विभिन्न सम्बन्ध

2.3 शिक्षा का बढ़ता स्तर व बढ़ता आत्मकथा लेखन

2.4 सामाजिक विद्रोह और महिला आत्मकथा लेखन

2.5 निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन :

2.1 पारिवारिक स्थिति

हम यदि इक्कीसवीं सदी की महिलाओं की पारिवारिक स्थिति के संदर्भ में चर्चा करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि इस सदी में महिलाओं की स्थिति विवादास्पद प्रतीत होती है। एक ओर उन्हें स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता को बांधना भी चाहते हैं। यह स्थिति तो उस प्रकार की होगी जैसी पिंजरे में कैद तोते की होती है। हम तो यह मान लेते हैं कि तोता स्वतंत्र है परन्तु तोते की स्थिति को हम नकार देते हैं।

समानान्तर जिन्दगी : आधुनिक पैटर्न

मन्नू भंडारी एक कहानी यह भी में जिस लेखक को अपना आदर्श मानती है तथा उसके द्वारा विवाह का प्रस्ताव प्राप्त होता है तो उनकी कल्पना साकार होते हुए नजर आती है परन्तु विवाह के पश्चात् ''समानान्तर जिन्दगी''[1] का जो आधुनिक पैटर्न पति द्वारा दिया जाता है। उससे तो उनकी जिन्दगी रेगिस्तान में जल की तलाश में फिरने वाले मृग के समान हो जाती जिसे पति तो नजर आता है परन्तु उसका प्रेम तथा साथ उन्हें प्राप्त नहीं होता। मन्नू भंडारी के रिश्ते में एक ठहराव व ठण्डापन ही रह गया था परन्तु प्रेम करने की विवशता के कारण पति का साथ छोड़ने में उन्हें तीस वर्ष लग गये। उनकी पारिवारिक और सामाजिक स्थिति का हश्र जगजाहिर है।

तुलनात्मक रूप से देखा जाये तो उच्च कुल में जन्मी महिलाओं की स्थिति सामाजिक तौर पर उच्चतापूर्ण व गुणवत्तापूर्ण दृष्टिगोचर होती है परन्तु वास्तविक जीवन से सम्बन्धित घटनाओं व स्थितियों में अन्तर नजर आता है। सामाजिक तौर पर पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं की स्थिति को भ्रामक तौर पर दिखाया जाता है। उच्च कुल व अमीर घरानों से ताल्लुक रखने वाली महिलाओं का जीवन काल्पनिक तथा दिखावेपन से ओतप्रोत व ग्रसित नजर

आता है। इस प्रकार की महिलाएं दोहरा जीवन जीने को विवश दिखाई देती हैं। पारिवारिक स्थिति में पुरुष प्रधानता अधिक दिखाई देती है।

आजन्म उपेक्षिता

पारिवारिक मामलों में या परिवार की किसी भी स्थिति में निर्णय का अंतिम अधिकार पुरुष स्वयं अपने पास ही रखते हैं। इससे एक स्त्री की गरिमा व स्वतंत्रता धूमिल होती दिखाई देती है। प्रभा खेतान अन्या से अनन्या में समाज एवं परिवार में उपेक्षणीय और महत्वहीन समझी जाती है। वह माँ के घर में ही आत्महत्या के प्रयास तक करना चाहती है–''मुझे आज भी याद है। अम्मा की पानी पीने की एक काँच की केटली थी, बड़ी नफीस सी... जो मेरे हाथों गिरकर टूट गई। उनका चिल्लाकर पूछना–

अरे क्या तोड़ा?

और तब तक मैं भागकर पीछे वाले बरामदे में, एकदम रेलिंग के ऊपर चढ़ गई। रेलिंग के इस ओर एक पैर तथा दूसरा पैर उठने की तैयारी में। मैंने नीचे झांककर देखा। पथरीली जमीन थी।

मैं मर जाऊँगी।

अच्छा होगा...

लेकिन मेरे मरने पर कौन रोयेगा?

केवल दाई माँ

और शायद गीता

और पुष्पा...

नहीं किशन भी।

बाबूजी रहे नहीं

और अम्मा,

वे तो मेरे मरने पर बेहद खुश होगी।

बरामदे की रेलिंग पर बैठी एक पैर बाहर की ओर झुलाए हुए सोचे चली जा रही थी। अच्छा मैं जाऊँगी कहाँ? किस लोक में, क्या बाबूजी के पास? बाबूजी तो स्वर्ग में है, और दाई माँ कहती है कि जो आत्महत्या करके मरते है, वे ही प्रेत हो जाते है...आज सोचती हूँ कि कैसा अनाथ और असहाय बचपन था।''[2]

"ऐसी परिस्थिति में मैं अपने ही बाल नोंचने लगती, चप्पलों से अपना सर पीटने लगती थी। उस वक्त मुझे अपने आपसे इतनी घृणा होती कि अपनी–अपनी चिन्दी बिखेर देना चाहती, चीखते हुए कहने लगती कि मैं मर क्यों नहीं जाती, खतम क्यों नहीं हो जाती।''[3]

अवैद्य रिश्ते समाज में अस्वीकृत

प्रभा खेतान लिव इन रिलेशनशिप में है या अविवाहित पत्नी है। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में प्रेम को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया तथा जिससे प्रेम किया जीवनभर उसका साथ भी दिया परन्तु डॉ. सर्राफ न तो उससे प्रेम कर सके, ना रिश्ते को मान सके। बल्कि बिना नाम के रिश्ते पर भी शक करते थे।

जब प्रभा जी व्यवसाय से जुड़ी तथा आर्थिक रुप से सुदृढ़ होने लगी तो जो सम्मान उन्हें अपमानित करता था उसी ने उन्हें पद प्रदान किया, सम्मान दिया। उन्होंने स्वयं अपनी पहचान बनायी। वह मानती है कि क्या एक स्त्री का विवाह करना आवश्यक है।

वह चिंतन करती है–

क्या किसी विवाहित पुरुष से प्रेम करना पाप है?

क्यों?

जब यही एक पुरुष करता है तो उसके सम्मान में तो कोई कमी नहीं आती?

समाज उसे तो कुछ नहीं कहता।

लेखिका अपना सर्वस्व देकर भी डॉ. सर्राफ के परिवार की देखभाल एक पत्नी के रूप में करती है परन्तु अन्ततः उनके रिश्तों को कोई भी स्वीकार नहीं करता।

परिवार में स्त्री को केवल एक पत्नी की पहचान के रूप में मान्यता प्रदान की जाती है। उसका कार्य पति तथा कार्यक्षेत्र बच्चों की देखभाल करना तथा पति को परमेश्वर मानकर केवल आज्ञा का पालन करना ही है।

बीती ताहिं बिसार, आगे की सुधि लेय

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उच्च कुल की महिलाओं नें कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण घर से बाहर निकलकर अपना स्वयं का एक मुकाम हासिल किया। कुछ राजनीतिक क्षेत्र में तो कुछ ने साहित्यिक क्षेत्र में–

''उनके रिश्ते में एक ठहराव व ठण्डापन ही रह गया था परन्तु प्रेम करने की विवशता के कारण पति का साथ छोड़ने में उन्हें तीस वर्ष लग गये।''[4]

धीरे–धीरे उन्होंने अपने जीवन को पुनः साहित्य की ओर अग्रसर किया तथा उन्हें सफलता प्राप्त होती गई। वह उच्च पदों तक आसीन रही हैं। लेकिन समाज में नौकरी करने या सामाजिक कार्य करने के बाद भी पारिवारिक कार्यों का उत्तरदायित्व उन्हीं पर रखा जाता था। कुछ महिलाओं द्वारा ही सामाजिक आड़म्बरों से ऊपर उठकर अपना स्वामित्व स्थापित किया।

'अन्या से अनन्या' में लेखिका अपने जीवन के सार को इस प्रकार से व्यक्त करती है ''मैंने अपने–आपको बचाया है अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हाँ टूटी हूँ, बार बार टूटी हूँ ..... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं ..... दुनियाँ के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ ,जो जिन्दगी झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपरमास्थियों पर नाज है। मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है पर यह अकेलापन जीवन का अर्थ भी समझता रहा है।''[5]

अनवरत रुदन

मध्यमवर्गीय परिवार में स्थिति विषमतापूर्ण थी और आज भी है। मध्यम परिवार में हमेशा से स्त्री–पुरुष के मध्य संघर्ष की स्थिति दृष्टिगोचर होती है। सदी के प्रारम्भ में इस वर्ग की महिलाओं की स्थिति केवल उपभोग की वस्तु मात्र थी और घर व बच्चों की पारिवारिक स्थिति व उत्तरदायित्वों का बोझ उसी पर थोपा जाता था। उसका अस्तित्व परिवार में ही पूर्ण स्वतंत्र नहीं था तथा परिवार व सामाजिक बंधनों पर आधारित होने से उसका रहन–सहन, खान–पान परिवार पर निर्भर करता था। इसी के साथ जातिगत प्रथाएं, सामाजिक सोच, पारिवारिक सोच, परिवार का मान–सम्मान, प्रतिष्ठा के दायरे में ही उसे समेट कर रखा जाता था। वह हमेशा घर परिवार में रोती रहती है– ''मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूंद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाये? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना, आँसुओं का समन्दर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम। अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ क्या सभी रोने के लिए पैदा हुई। यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ जिनकी और कभी मैंने बड़ी ललक से देखा था। जो मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समन्दर को भरे चली जा रही थी। स्कूल की हैडमिस्ट्रेस पुष्पमयी बसु को मैंने प्रायः उदास और दुःखी पाया। वे अकेली थी लेकिन मन्नू भण्डारी, जिन्होंने मुझे चौथी से ग्याहरवीं तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थी? राजेन्द्र यादव को उन्होंने जीवन साथी के रूप में स्वीकारा था। लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नूजी ने रोते–रोते अपने पति परमेश्वर के कारनामें सुनाये। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उसी दिन समझा था।''[6]

मुझे लगता–स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है, जो बिना मालिक के जी नहीं पायेगा।''[7]

माँ कहती है कि भगवान क्यों जन्म देता लड़कियों को? लड़कियाँ पाप का फल होती है। ये फल विषफल होते हैं। जमींदार भी इसी तरह अन्याय अत्याचार करते रहते हैं। भाभी कहती है कि जवानी में औरत को रोटी–कपड़ा वहीं देता है जो उसके संग सोए।''[8]

''लड़की खरीदी हुई घोड़ी से ज्यादा नहीं है। लड़की बेची हुई गाय होती है। ब्याह गौने के नाम पर खरीदने बेचने का धन्धा है। खेती नहीं हुई, तो बेटी काम आ जाती है। कस्तूरी को उसके पति ने आठ सौ रुपये में लिया था। यह रूपया जमींदार और साहूकार से लिए थे, जिनके डर से वह दिल्ली भाग गया था।''[9]

आज भी कई परिवारों में महिलाएं घर से निकलकर समाज में स्वतंत्र रूप से अपनी पहचान बनाने लगी हैं लेकिन अधिकांश परिवारों में आज भी उन्हें मानसिक तौर पर प्रताड़ना सहन करनी पड़ती है।

समाज की मानसिकता में परिवर्तन

पुरुष की मानसिकता में अभी भी पूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है या सोच में उच्चता प्रदर्शित नहीं होती है। लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में बेटियों को शिक्षा प्रदान करने से समाज की मानसिकता में परिवर्तन तो आया है।

इन्टरनेट तथा संचार साधनों के कारण महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है। समाज में आर्थिक स्थिति को सुधारने में महिलाओं का योगदान निरंतर बढ़ता जा रहा है। सदी के प्रारंभ में बहुत ही कम महिलाएं अपनी व्यथा को व्यक्त कर पाती थी। यदि कर भी पाती थी तो केवल पारिवारिक सीमा तक ही सीमित रह जाती थी। धीरे–धीरे बदलाव व परिवर्तन तथा पाश्चात्य देशों की शिक्षा के प्रभाव के कारण परिवर्तन आने लगा। पुरुष स्त्री को उपभोग की वस्तु

न समझकर एक परिवार की संचालिका समझने लगा तथा स्वयं भी उसका साथ देने लगा।

शहरी सभ्यता और युगीन परिवेश के प्रभाव से ग्रामीण नारी की आदतों एवं व्यवहारों में परिवर्तन आया है। वह भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति की कोशिश करती है। उसकी मानसिकता और सोच–विचार में परिवर्तन आया है।

सुशीला राय पति के साथ कोलकत्ता रहने लगी है। जब वह गाँव में थी तो पति के विरोध में कुछ भी नहीं बोलती थी। वह बात–बात पर रोती रहती मगर शहर में आने के बाद उसकी आदतों में परिवर्तन आया है। वह उसमें आये परिवर्तन को स्वीकारती हुई कहती है–''कोलकत्ता आकर मेरी आदत बिगड़ गई है क्योंकि बीच–बीच में पति के साथ बहुत बहस करने लगी हूँ जिससे कभी–कभी अनुचित बाते भी कह जाती हूँ। गाँव में मैं डरती थी, कुछ बोल नहीं पाती थी, लेकिन यहाँ आकर पता नहीं मेरे सिर पर क्या सवार हो जाता है कि बोलने लगी हूँ।''[10]

निम्न वर्ग में इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में स्थिति दयनीय थी। महिलाओं के प्रति उनमें आत्मसम्मान या प्रतिष्ठा का गुण बहुत ही कम उपस्थित था। सामाजिक परम्पराओं व रीतिरिवाजों तथा आडम्बरों में उसे बाँध कर रखा जाता था।

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के कुछ वर्षों के बाद सामाजिक तौर पर कुछ बदलाव व परिवर्तन दिखाई देने लगे। शिक्षित वर्ग में लड़का व लड़की के मध्य भेद जैसी कुरीतियों व असमानता ने अपना प्रभाव छोड़ना प्रारम्भ कर दिया था। शिक्षा के द्वारा जीवन में उजाले की एक किरण या दिशा के सूत्र से धीरे–धीरे बालिकाओं को शिक्षा की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिलने लगी।

स्वनिर्णय की हिम्मत

''इस पार्टी में वह डॉ. सिद्धार्थ के साथ डांस करने लगती है तो पति की त्योरियां चढ़ जाती हैं। डॉ. सिद्धार्थ के प्रति मैत्रेयी का आकर्षण बढ़ता ही जाता

है। अपने पक्ष में वे तर्क देती है– नाचना मेरी इच्छा का नतीजा था, मेरी अपनी इच्छा, नाचकर मैं उस 'गंवार' शब्द से शहरी हथियार का साहस के साथ सामना कर रही थी। जिसने अभी तक मुझे नीचा दिखाने के लिये अपना इस्तेमाल कराया है... मैंने अनुमति के लिये पति की ओर देखा नहीं। अपना निर्णय अपने हाथ में ले लिया। खतरों के बारे में सोचा नहीं।''[11]

डॉ. सिद्धार्थ के उन गुणों का जिक्र है। जिन्होंने मैत्रेयी को अपनी ओर खींचा। डॉ. सिद्धार्थ मौसमों की रंगतों, हवा की सुगन्धों में रचे बसे लोकगीतों का अर्थ जानते है। यही था मेरे जुड़ाव का कारण।[12]

मैत्रेयी में एक उन्मुक्तता है। जिस पर माँ और पति दोनों बंधन लगाने की फिराक में रहते हैं। मैत्रेयी भी हठधर्मिता से बाज नहीं आती है–''यदि कोई पति पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।''

नियंत्रण की कसावट उन्मुक्तता को और गति प्रदान करती है तभी मैत्रेयी लिखती है–''कारण की मेरा दिल प्रेम से लवरेज था और मुझे अपने हृदय को कसने की हिदायत दी। हृदयघट कसावट से तड़क गया। प्रेम रिसने लगा।''[13]

समाज से प्रताड़ित, तिरस्कृत, विधवा आदि महिलाओं की ओर भी समाज का ध्यान आकर्षित होने लगा। नीति व कानून की ओर से सहायता प्रदान करने, योजनाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने, स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा समाज में उत्थान की ओर बढ़ते कदमों ने महिला सशक्तीकरण को एक बल प्रदान किया। नवीन दिशा का प्रादुर्भाव हुआ। अब महिला घर की चौखट को पार कर विभिन्न क्षेत्रों में अपना स्वयं का अस्तित्व व मुकाम बनाने की कोशिश करने लगी।

पारिवारिक तौर पर महिलाओं को परिवार का एक अंग के तौर पर देखा जाने लगा, लेकिन पारिवारिक कार्यों में फैसले लेने का अधिकार अभी भी केवल

पुरुष के अधीन ही था और है। लेकिन समाज में धीरे–धीरे बढ़ने वाली भागीदारी ने समाज में महिलाओं की स्थिति में बदलाव जरूर दर्शाये।

उन्मुक्त उड़ान की और नारी

मैत्रेयी घर–गृहस्थी के पिंजरे में बंद मैना–सी जिन्दगी नहीं जीना चाहती। वह उन्मुक्त होकर उड़ान भरना चाहती है। बाह्य जगत में अपनी क्षमताओं का विकास करना चाहती है। छात्र जीवन में वह निरन्तर सक्रिय रही है जो भी उनकी उड़ान में बाधा पैदा करना चाहता है। उससे मैत्रेयी की टकराहट होती है। आत्मकथा के इस भाग में पति निशाने पर है–''मेरा जीवन साथी, साथी के नाम पर जलकुक्कड़ आदमी है। दिशाओं में जब रंग बिखरने शुरू होते है, वह कालिख पोतने आ जाता है।''[14]

दिखावटी आधुनिकता

पति द्वारा मैत्रेयी पर थोपी गई आधुनिकता दिखावटी और सीमित है। घर पर आये यूपीएससी के चैयरमेन से पत्नी को अभिवादन करने का भी अवसर नहीं दिया गया। रसोई में सिकुड़कर रहने को कहा गया। हिन्दी में एम. ए. की उपाधि मैत्रेयी ने पीएच.डी. करने की सोची। वह डॉ. रेखा अग्रवाल से मिलने गई। उन्होंने गाइड ढूँढ़ देने का वादा किया। गाइड न दिला पाई तो 'लिग्विस्टिक' के कोर्स में प्रवेश लेने की सलाह दीं। उन्होंने फार्म भरा। इण्टरव्यू काल भी आया। लेकिन पति ने उसे छिपा दिया। पति ने अपना बचाव करते हुए कहा– ''जानता हूँ कि मैं तुम मुझसे नाराज हो। पर इतना जरूर कहना चाहूँगा कि मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह तुम्हारे भले के लिए करता हूँ। तुम परेशान होती फिरोगी। मुझे चैन नहीं आयेगा।''[15]

दूरदर्शन के द्वारा तथा मीडिया के द्वारा दिखाये जाने वाले पारिवारिक कार्यक्रमों से भी समाज में महिलाओं के प्रति स्थिति पर विचारणीय व चिंतनशील बिन्दुओं को निरन्तर उजागर किया जाने लगा। महिलाओं में

परिस्थितियों के विरुद्ध संघर्ष करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए ठोस कदम उठाने के लिए आत्मविश्वास पैदा करने की पहल हुई।

वर्तमान दशक में महिलाओं की पारिवारिक स्थिति में बहुत ही बड़ा परिवर्तन नजर आ रहा है। महिलाएं पुरुषों के समान कदम से कदम मिलाकर चलने लगी हैं। पुरुष प्रधान समाज भी महिलाओं की स्थिति के प्रति गंभीर दिखाई देता है। शिक्षा, न्याय, समाजसेवा, जागरुकता आदि के कारण पारिवारिक स्थितियों में महिलाओं की भागीदारी निरंतर बढ़ती जा रही है। कई परिवारों में वह अब परिवार के फैसले स्वयं लेने लगी हैं।

पारिवारिक स्थिति में बदलाव तथा मीडिया की निकटता तथा अपने विचारों की आसानी से स्वतंत्रता ने उसे नये पंख प्रदान किये हैं। जिससे वह अपनी भावनाओं, मनोदशाओं, परिस्थितियों, संघर्षों, कुण्ठाओं, घृणा, द्वेष, तिरस्कार आदि को समाज के सामने ला सके तथा उन्हें उजागर कर अन्य महिलाओं व स्त्रियों के आत्मसम्मान की रक्षा कर सके।

परिवार में इस प्रकार से प्रताड़ित या तिरस्कृत महिलाएं या विधवा, परित्यक्ता महिलाओं की मनोदशा का वर्णन करना एक कठिन कार्य है। कस्तूरी कुण्डल बसै में– ''गरीबी व अत्याचार से तंग आकर लेखिका के पिता उसकी माँ को छोड़कर चले जाते हैं। इसी तंग हाल में भी कस्तूरी का ब्याह कर दिया जाता है। ससुराल में पति ब्याह के लिए आठ सौ रुपये उधार लेकर ब्याह कर कस्तूरी को गर्भवती कर साहूकार के डर से भाग जाता है।''[16]

पीहर की तरह ससुराल की भी स्थिति समान ही होती है। कुछ समय बाद ही पति की मृत्यु हो जाती है तथा कस्तूरी की गोद में अठारह महीने की अबोध बालिका रह जाती है। कस्तूरी के पति द्वारा छोड़कर जाने तथा उसके विधवा हो जाने पर समाज की परवाह न करते हुए ''वह रेशमी वस्त्र व गहने पहनती है। अपनी जमीन की रक्षा के लिए स्वयं अपने को तैयार करती है। कस्तूरी रोज–रोज का झोला लेकर मीरांबाई बनकर फिरती है। माँ उसका

विरोध करती है।''[17] वास्तविक जीवन में होने वाले संघर्षों से लड़ना वह भी एक स्त्री द्वारा कठिन कार्य है।

समाज के आडम्बरों, खोखले रीति–रिवाजों से अपने आप को ऊपर उठाना एक साहसिक कार्य है। अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए स्त्री का एक जीवन भी कम पड़ जाये। जब इस प्रकार की पारिवारिक परिस्थितियों से संघर्ष कर एक महिला आत्मसम्मान प्राप्त करती है तो वह समाज में एक प्रेरणा स्रोत बनकर उभरती है। जो अन्य महिलाओं के जीवन में एक किरण बनकर आती है।

इस प्रकार के संघर्षों, चुनौतियों को वह अपनी कलम की ताकत से अमिट स्याही द्वारा अमिट बनाती है, जो आत्मकथा के रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत होती है।

''कस्तूरी कुण्डल बसै'' में लेखिका की पारिवारिक स्थिति बड़ी ही दयनीय व कष्टप्रद बताई गई। घर में कई–कई दिन तक खाने का अभाव। परिवार अत्यंत गरीबी में जी रहा है। अंग्रेजों द्वारा लगान वसूला जाता है तथा जमींदारों द्वारा घरों को लूटा जाता है। गरीबी व अत्याचार से तंग आकर लेखिका के पिता उसकी माँ को छोड़कर चले जाते हैं। इसी तंग हाल में भी कस्तूरी का ब्याह कर दिया जाता है।

''ससुराल में पति ब्याह के लिए आठ सौ रुपये उधार लेकर ब्याह कर कस्तूरी को गर्भवती कर साहूकार के डर से भाग जाता है।''[18]

पीहर की तरह ससुराल की भी स्थिति समान ही होती है। कुछ समय बाद ही पति की मृत्यु हो जाती है तथा कस्तूरी की गोद में अठारह महीने की अबोध बालिका रह जाती है।

'अन्या से अनन्या' में लेखिका ने बताया है कि उन्होंने कलकत्ते के व्यापारिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार समझे जाने वाले खेतान परिवार में जन्म

लिया परन्तु परिवार के सदस्यों के बारे में ज्यादा वर्णन प्रस्तुत नहीं किया, केवल इतना ही कि ''पिता जी को जहर देकर बचपन में ही मार दिया गया।''[19]

घर परिवार के सभी सदस्य गौर वर्ण के होने तथा उनका सांवला रंग–रूप तथा दिखाई देते दाँत ही बचपन के लिए अभिशाप जैसे थे। परिवार में हमेशा उनके रंग व रूप की तुलना की जाती तथा हमेशा उसे उलाहना सहनी पड़ती, जिससे उनका आत्मबोध प्रभावित रहा।

''एक कहानी यह भी'' में बड़ी ही सादगी के साथ यह माना कि इन्दौर में उनके पिता जी की बड़ी प्रतिष्ठा थी परन्तु–

''आर्थिक झटके के कारण उन्हें अजमेर आना पड़ा। इनके पिताजी कोमल व संवेदनशील थे तथा अधिकांश समय पढ़ने या पढ़ाने तथा सामाजिक कार्यों को दिया करते थे।''[20]

घर की मनोदशा का चित्रण बखूबी किया है कि माँ हमेशा पिताजी की हर बात को पूर्ण करना अपना फर्ज समझती थी। गोरा रंग न होने से लेखिका पिता का स्नेह व प्रेम पाने में कम सफल रही। माँ की स्थिति भी कुछ ठीक नहीं थी–

''पिता से ठीक विपरीत थी
हमारी बेपढ़ी–लिखी माँ
धरती से ज्यादा ही
धैर्य और सहनशक्ति थी शायद उनमें।''[21]

परन्तु परिवार में संवेदनाओं तथा साहित्यिक वातावरण का प्रभाव लेखिका पर अवश्य दिखाई देता है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा परम्पराओं में ऐसा सम्मान केवल हमारे देश में ही स्त्री को प्राप्त है परन्तु वर्तमान समय में पारिवारिक स्थिति बहुत ही विकट तथा भयावह होती जा रही है।

सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास

एक पुरुष के साथ–साथ स्त्री भी स्वछंदता तथा स्वतंत्रता को जीने के लिए पाश्चात्य संस्कृति की विलासिता की ओर अग्रसर हो रही है। मन को शांति व संतुष्टि प्राप्त नहीं है। व्यक्ति कामवासना की ओर उन्मुख होता हुआ दिखाई दे रहा है तथा हमारी पीढ़ी के संस्कार व परम्पराएं धीरे–धीरे पतन की ओर अग्रसर हो रहे हैं। हमारी संस्कृति को हम स्वयं ही गर्त की ओर ले जाते हुए देख रहे हैं। इसका सबसे बड़ा कारण ''संस्कार'' है जो हम बच्चों को प्रदान नहीं कर पा रहे हैं। जिससे उनके मन में विकृतियां पैदा हो रही है तथा मानसिक रूप से सक्षम नहीं हो पा रही है। संबंधों में विच्छेदन हो रहा है। पति को पत्नी, पत्नी को पति पर विश्वास नहीं रहा। संबंधों में विश्वास नहीं है। जीवन में अजीब सी कशमकश होती जा रही है। व्यक्ति केवल दौड़े जा रहा है। पारिवारिक जीवन के आदर्श, मूल्य, उद्देश्य नष्ट होते जा रहे हैं।

एक नारी अपने को ही मातृत्व सुख से वंचित रखना चाहती है तथा विवाह जैसे बंधनों से दूर हटने की कोशिश करने लगी है। इसका कारण पुरुष प्रधान समाज ही है जो इस प्रकार की विसंगतियों के लिए उत्तरदायी है क्योंकि एक नारी में जो गुण देव तुल्य है यदि उन्हें उभारा जाये तो यह पंक्तियां सही हैं। ''नारी के चरणों में ही स्वर्ग है।'' अर्थात् नारी ही है जो एक परिवार को स्वर्ग बनाती है अपने संस्कारों, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य द्वारा बच्चों में वह गुण पैदा कर सकती है जो एक अच्छे नागरिक के होते हैं।

परन्तु वास्तविक पारिवारिक स्थिति में जो भिन्नता दिखाई दे रही है उसमें मानसिकता का योगदान सबसे अहम हो जाता है। एक विकृत मानसिकता पूरे समाज को नष्ट करने तथा एक देश को नष्ट करने के लिए बहुत है। इससे तात्पर्य यह है कि किसी देश या राज्य का राजा ही विकृत मानसिकता वाला हो तो सम्पूर्ण राज्य व देश पतन की ओर अग्रसर हो जाता है। इस बात का गवाह हमारा इतिहास भी रहा है तथा इतिहास यह भी बताता है कि पुरुष की मानसिकता कैसी रही है और वर्तमान में कैसी हो गयी है।

पुरुष मानसिकता की वह स्थितियां जिसमें एक नारी झुकती है या उसकी दासता स्वीकार करती है या उसके अधीन होकर ही कार्य करती है। स्वयं को पुरुष को सौंप देती है तथा उन विसंगत पारिवारिक स्थिति को स्वीकार कर अपना भाग्य मान कर बैठ जाती है। निम्न प्रकार की हो सकती हैः

परिवार में बड़ों का दबदबा

किसी भी परिवार में यदि बड़े पुरुषों का दबदबा होता है तो ऐसी परिस्थितियों में घर की स्त्रियों को बोलने, सुझाव देने या अपने मन से स्वतंत्र रूप से कार्य करने की अनुमति नहीं होती है। उन्हें पारिवारिक परम्पराओं का हवाला देकर बंधनों में पूर्णरूप से बांध दिया जाता है। वह केवल मूक बधिर की भांति केवल घर के कार्यों तक ही सीमित रह जाती हैं। उसकी स्थिति एक कठपुतली की भांति होती है। वह केवल भोग की वस्तु मात्र रह जाती है। उसका स्वयं का जीवन या जीवन का लक्ष्य नहीं रह जाता है। उसका जीवन केवल पति की बात मानना तथा बच्चों का लालन–पालन करना होता है।

सहनागरिक का दर्जा

मैत्रेयी का सभी लेखन अब स्त्री जीवन में बदलाव लाने की मांग करता है। वह स्त्री के लिए ऐसे समाज की संरचना करती है, जो स्त्री की स्वाधीनताओं के सौन्दर्य की रक्षा कर सके। पुनः ‘चाक’ लिखने के बाद मैत्रेयी कहती है :

”मैंने स्त्री के लिए मनुष्य के स्तर पर जीने की स्थिति ही तो खोजी हैं, कि मैंने पुरुष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने समाज में लोकतांत्रिक विधान की घोषणा की है, कि औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए। मैं इन सारी बातों को इसलिए नहीं लिख रहीं कि अपने लिए एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर रही हूँ, जिससे अनैतिक सुख और अभद्र इच्छाओं वाली जिन्दगी के चित्र हैं, बल्कि इसलिए सब कुछ रचा है कि

प्रेम की सहभावनाओं में 'अनैतिक और अभद्र' भी उदात्त रुप धारण कर लेता है।"[22]

ऐसी मानसिकता अधिकांश सम्पन्न घरानों में तथा प्रतिष्ठित परिवारों में देखने को प्राप्त होती है जहाँ स्त्रियों को अपने मन की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है ना ही उन्हें किसी प्रकार का स्वतंत्र अवसर प्रदान किया जाता है उनके हर निर्णय के पीछे पुरुष प्रधानता स्पष्ट रूप से होती है।

परिवार में प्रमुख स्त्रियों द्वारा चुप रहना व कार्य करना

कई परिवारों में ऐसी भी स्थितियां देखी जाती हैं जहाँ परिवार की प्रमुख स्त्रियां पति को परमेश्वर मानती हैं तथा उनके हर आदेश की पालना बिना सोचे विचारे की जाती है तथा उनके अनुसार ही कार्य किया जाता है। वह स्वयं पूर्ण रूप से पुरुष पर ही निर्भर रहती हैं तथा उसके स्वयं के निर्णय भी पुरुष द्वारा ही लिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में परिवार की अन्य स्त्रियां असहाय व परतंत्र महसूस करती हैं तथा अपने विचारों को अभिव्यक्त नहीं कर पाती। ऐसे परिवारों की बहुएं अपने को सजा प्राप्त दोषी की तरह पाती हैं जो बिना किसी कारण के भी अपने अधिकार व स्वतंत्रता से दूर ही रहती है। ऐसी स्थिति में एक स्त्री ही स्त्री के दुःख की भागीदार होती है तथा उसे स्त्री के द्वारा ही दुःख व पीड़ा सहन करनी पड़ती है।

इस प्रकार के परिवार का वातावरण बड़ा ही नीरस होता है तथा किसी भी सदस्य के जीवन का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता। जो भी सदस्य परिवार से किसी भी कारण दूर होता है वह पुनः उस परिवार में आना ही नहीं चाहता। यही कारण है कि एक बहू अपने पति को लेकर अलग रहना चाहती है तथा एक बेटी समाज से विपरीत जाकर प्रेम विवाह कर लेती है तथा फिर जैसा भी पति हो जिस प्रकार का भी उनमें संबंध रहे उसे भोगना उसका भाग्य बन जाता है।

इस प्रकार की स्थितियों में स्त्रियों की महत्वाकांक्षाओं, आशाओं आदि को हमेंशा दबाकर रखा जाता है। स्त्रियां परम्पराओं, आडम्बरों का ढोंग करती है और जीवन जीती है।

पारिवारिक निर्णय केवल पुरुष प्रधान

पारिवारिक स्थिति में हो सकता है कि नारी को सम्मान दिया जाता हो, उन्हें स्वतंत्रता भी प्रदान की जाती है परन्तु घर या परिवार का वातावरण इस प्रकार का होता है कि एक स्त्री अपने स्वतंत्र निर्णय को न तो लागू कर पाती है ना ही उसे पूर्णरूप से कह पाने में सक्षम होती है। परिवार में एक डर या भय का वातावरण निर्णयों में व्याप्त रहता है तथा पुरुषों के समक्ष किसी भी स्त्री के निर्णय की मान्यता नहीं के बराबर होती है। सम्पूर्ण निर्णयों का अन्तिम अधिकार पुरुष के पास ही होता है और वह अपने अहंकार व अभिमानवश अपने अनुसार ही लागू करता है। इस प्रकार के निर्णय पूर्णतः आदेशात्मक होते हैं जिस पर किसी भी प्रकार की कोई सुनवाई पुरुष के द्वारा नहीं की जाती है। स्त्री केवल निर्णय को सुनने के लिए बाध्य होती है।

इस प्रकार की स्थितियां मध्यम परिवारों में अधिक प्रधानता के साथ देखी जाती है। जहाँ स्त्री यदि कारोबार द्वारा या नौकरी द्वारा परिवार का आर्थिक भरण पोषण में सहयोग भी प्रदान कर रही होती है तब भी वह निर्णय मानने के लिए पूर्णरूप से बाध्य होती है। उसकी सोच व मानसिकता को पूर्ण रूप से दबा दिया जाता है तथा उसे सामाजिकता के बंधनों में इस प्रकार से बांधा जाता है कि वह केवल छटपटा तो सकती है पर कर कुछ भी नहीं पाती।

स्त्री के प्रति संकीर्ण मानसिकता

इस शताब्दी में लिखी गई अधिकांश स्त्री आत्मकथाओं में पुरुष की संकीर्ण मानसिकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है तथा पुरुष मानसिकता पर ही समाज की नींव व आधार निर्भर करते हैं। जो आगामी पीढ़ियों में या समाज के भविष्य में नजर आते हैं। वर्तमान समय में तथा विगत दस वर्षों के अध्ययन

से स्पष्ट होता है कि भारतीय परिस्थितियों में बड़ा बदलाव व परिवर्तन आया है। पुरुष की संकीर्ण मानसिकता में कुछ बदलाव आधुनिकता तथा पाश्चात्य संस्कृति, संचार व प्रौद्योगिकी क्रांति के साथ–साथ समाज में कई बार समस्याओं व परेशानियों में एक स्त्री का योगदान व सहयोग प्रदान करने के कारण यह परिवर्तन दिखाई देने लगा है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों तथा स्वतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति तथा जीवन जीने के अधिकार ने नारी को एक प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान की है परन्तु हमारा समाज पुरुष प्रधान समाज है तथा वर्तमान में जीवन जीने में बढ़ती परेशानियों, समस्याओं के साथ–साथ महत्वाकांक्षाएं, आशाएं, विलासिता भी बढ़ती जा रही है। पुरुष में असंतोष, कुण्ठा, घृणा, नफरत, द्वेष जैसे विकार भी बढ़ते जा रहे हैं।

''व्यक्ति काम वासना की ओर उन्मुख है तथा भोग विलास की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इन सबका प्रभाव एक नारी या स्त्री के संबंधों पर भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है। आज पुरुष मारपीट या झगड़े के साथ–साथ मानसिक रूप से भी प्रताड़ित कर रहा है। स्त्रियां शारीरिक शोषण का शिकार हो रही है तथा उन्हें धोखे, प्रेम आदि के द्वारा उपभोग के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। पुरुष की नजरों में स्त्री को केवल उपभोग के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। पुरुष की नजरों में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु मात्र है वह उसे आदर, सम्मान आदि प्रदान कर रहा है परन्तु केवल औपचारिकतावश। उसके मन में तो घृणित भाव उत्पन्न हो रहे हैं तथा मानसिकता मैली हो चुकी है।''[23]

नारी के प्रति पुरुष की मानसिकता संकीर्ण होती जा रही है वह उसे आजादी भी अपनी शर्तों पर ही देना चाहता है।

पत्नी का केवल शारीरिक शोषण

हमारे ही समाज व देश के पुरुषों की सोच व मानसिकता इतनी तुच्छ व संकीर्ण होती है कि वह पत्नी को केवल और केवल शारीरिक शोषण द्वारा उपभोग की वस्तु मात्र मानते हैं। उनके विचार से स्त्री केवल शारीरिक उपभोग तथा संतान पैदा करने के लिए तथा पति के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित होकर

उसे शारीरिक सुख की प्राप्ति का साधन होती है। उन्हें इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसकी दिनचर्या क्या रही है। उसके दिनचर्या के कार्यों के पश्चात् उसके शरीर व मन को सुकून व आराम की भी आवश्यकता होती है या उसे किसी भी प्रकार का शारीरिक व मानसिक कष्ट भी है।

इस प्रकार के पुरुषों की मानसिकता इतनी संकीर्ण होती है कि यह घर गृहस्थी संभालने वाली स्त्री तथा नौकरी कर आर्थिक रूप से सहयोग प्रदान करने वाली स्त्री में भेद भी नहीं करते हैं। इनके अनुसार सभी प्रकार के कार्य पति की सेवार्थ व निशुल्क होते हैं। सभी सिद्धान्त व नियम केवल पत्नी पर ही लागू होते हैं। यह शारीरिक संबंधों में स्त्री को कष्ट, प्रताड़ना, शारीरिक कष्ट देकर भी सुख व संतुष्टि का अनुभव करते हैं। इनके अनुसार पत्नी को जब तक शारीरिक कष्ट नहीं होगा तब तक इन्हें संतुष्टि प्राप्त नहीं होती। ऐसे पुरुष विकार मानसिक प्रवृत्ति के पुरुष होते हैं तथा स्त्री हमेशा कष्ट व दुःख भोगने के लिए विवश रहती है क्योंकि वह इस बारे में न तो किसी से कह पाती है और न ही कुछ कर पाती है केवल उसकी विवशता रह जाती है।

सामाजिक मर्यादा व परम्पराओं का ढोंग

अधिकांश सम्पन्नशील तथा समाज में प्रतिष्ठित परिवारों की वास्तविक स्थितियां दिखाई देने वाली स्थितियों से मेल नहीं खाती है अर्थात् दिखावे के लिए समाज के समक्ष सामाजिक मर्यादाओं की दुहाई देते हुए वह अभिनय कर नियम व सिद्धान्तों, परम्पराओं की बातें करते हैं परन्तु उनके परिवार की स्वयं की स्थिति इसके विपरित होती है। जो विचार तथा भाव वह जनता के सामने या लोगों के समक्ष व्यक्त करते हैं उसके पीछे एक घृणित व संकीर्ण मानसिकता का चेहरा छुपा रहता है जो हमेशा अपनी सच्चाई से दूर रहता है तथा छिपा कर रखा जाता है।

ऐसे परिवारों में स्त्रियों का कोई सम्मान नहीं होता है। उन्हें केवल राजनीतिक व सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग व प्रयोग में लाया जाता है। हाल ही के कुछ वर्षों में एक सम्पन्न परिवार की बहू ने यह बयान

दिया कि कारोबार व व्यवसाय में उन्नति के लिए लोगों द्वारा उसका शारीरिक शोषण व उपयोग के लिए प्रयुक्त किया जाता था। उसे शारीरिक कष्ट व प्रताड़नाएं दी जाती थी तथा भय व डर से उसे हमेशा डराया जाता था। इस प्रकार की स्थितियां हमारे समाज में अब बहुत आने लगी है।

एक पुरुष अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सामाजिक मर्यादाओं व परम्पराओं का ढोंग कर वास्तविकता में स्त्री का अनादर कर अपमान करता है और उसे शारीरिक शोषण व प्रताड़ना प्रदान की जाती है। कई बार तो उस पर इस प्रकार के दोषारोपण किये जाते हैं कि वह स्वयं ही मृत्यु प्राप्त कर लेती है या आत्महत्या जैसे कदम उठा लेती है।

उसे पागल, मानसिक रोगी, कुलटा, बदचलन बताकर नरकीय जीवन जीने के लिए छोड़ दिया जाता है।

पर्दा प्रथा : एक प्रश्नचिह्न

वर्तमान भारतीय समाज आज जिस प्रकार है उस प्रकार के आधुनिक समाज या प्रगतिशील, उदीयमान समाज में पर्दाप्रथा को अपनाना वर्तमान समय व समाज की प्रासंगिकता पर एक प्रश्नचिह्न है। यह परम्परा सदियों से भारतीय परम्परा का अभिन्न अंग रही है तथा इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि यह स्त्री को पुरुष से बचाकर रखती है तथा उसके आत्मसम्मान, मान मर्यादा की रक्षा भी करती है। परन्तु आज भारतीय स्त्री को विचारों के आदान प्रदान की स्वतंत्रता है तथा उसे अपने विचारों व भावों को व्यक्त करने का भी अधिकार है।

मेरे विचार से पर्दाप्रथा एक नारी को उसके विचारों को व्यक्त करने की सीमा तय कर उसे बांध देते हैं। उसके भावों व विचारों की अभिव्यक्ति केवल उस पर्दे तक ही सीमित रह जाती है तथा उसके स्वतंत्र विचारों पर बंधन लग जाता है वह चाह कर भी घूंघट के पर्दे को हटा नहीं पाती है क्योंकि उसे पता होता है कि परिवार के सदस्य तथा समाज उसी पर उंगली उठायेगा तथा उसी

के मान सम्मान को ठेस पहुँचेगी तथा इस प्रकार की स्थिति में घर परिवार के सदस्य ही उसके विरोधी होकर उसका प्रतिकार करेंगे। उसे अपमानित कर लज्जाशील कहेंगे। इस प्रकार की प्रथाओं में स्वयं स्त्री के घर वाले भी वर पक्ष का ही पक्ष लेते हैं क्योंकि वे रूढ़िगत विचारधारा से बंधे हुए होते हैं। कई बार तो उसकी लज्जा को भी अपमानित किया जाता है और कृत्य केवल पुरुष ही करते हैं जिससे एक स्त्री कभी भी किसी भी प्रकार का विरोध न कर पाये।

ससुराल ही वास्तविक घर

यह रूढ़िवादी परम्परा एवं धारणा आज भी अधिकांश स्त्रियों के लिए दंश है जिसका भुगतान कई बार तो उन्हें अपने जीवन की आहुति देकर करना पड़ जाता है। आज भी बेटी जब विदा होती है तो पिता व माता ससुराल को ही उसका वास्तविक घर मानने की सलाह देते हैं ऐसी विचित्र स्थिति है कि एक लड़की जिस घर में रहकर बड़ी होती है अपने सपने संजोती है। लाड प्यार में पलती है वही उसे पराया धन समझते हैं। यह एक लड़की का दुर्भाग्य है कि अभिभावक उसे यह नहीं कहते कि अगर कोई परेशानी या समस्या हो तो यह घर हमेशा तेरा है और हमेशा तेरा ही रहेगा। यह रूढ़िगत परम्परा एक स्त्री को अपने ही घर व परिवार से दूर कर देती है तथा कहीं ना कहीं संबंधों में दूरियां आ जाती है।

यदि ससुराल पक्ष से किसी प्रकार की समस्या या परेशानी लड़की को होती भी है तो माता–पिता लड़की को ही समझाते हैं। उसे सहनशीलता बढ़ाने की सलाह दी जाती है। परन्तु उसकी समस्याओं का समाधान माता–पिता बनकर नहीं किया जाता है।

शादी के बाद ऐसा लगता है कि वास्तविक अभिभावक, अभिभावक न रहकर केवल संरक्षक मात्र रह जाते हैं। इसी का फायदा पुरुष वर्ग हमेशा उठाता है क्योंकि उसे ज्ञात होता है कि पति तो परमेश्वर है एक स्त्री के लिए तथा जीवन में उसे ही झुकना व सहन करना है तथा लड़की का परिवार इस प्रकार के मामलों में हस्तक्षेप करने से डरता व कतराता है। जिसका परिणाम

एक स्त्री को जीवन भर भोगना पड़ता है तथा कभी–कभी तो वह अपने प्राण तक दे देती है।

जनाजा (अर्थी) ससुराल से ही उठे

समाज तथा परिवारों की मानसिकता तथा रूढ़िगत विचारधारा का प्रभाव ही है कि एक बेटी के लिए माता–पिता ही यह कहते हैं कि चाहे कुछ भी हो जाये अर्थी ससुराल से ही उठे। वर्तमान समय में यह प्रासंगिक नहीं है परन्तु क्या इसका महत्व नहीं है? लेकिन इसका अर्थ यह होता है कि एक बेटी जब किसी परिवार की बहू बनकर जाये तो वह अपने कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह इस प्रकार से करें कि उसका सुखद जीवन ससुराल में ही व्यतीत हो तथा इस सुख संसार से वह अपने बनाये हुए घर संसार से ही खुशी–खुशी विदा हो जिससे उसकी आत्मा को संतोष की प्राप्ति रहे। उसे मोक्ष की प्राप्ति हो।

परन्तु वर्तमान में भी अधिकांश माता–पिता इस प्रकार की धारणा से ग्रसित रहते हैं जिसके कारण अपनी ही बेटी की परेशानियों व समस्याओं में सहयोग प्रदान नहीं कर पाते हैं तथा समाज के डर व भय से ग्रसित रहते हैं। जिससे ससुराल पक्ष या एक पुरुष हमेशा उसका फायदा उठाकर उसे प्रताड़ित करता है या उस पर अत्याचार करता है।

इस प्रकार की धारणा व मानसिकता के कारण कई बार माता–पिता, बेटी को समझाते रहते हैं परन्तु परिस्थितियां कितनी विकट या भयावह हो जायेगी इसकी कल्पना नहीं कर पाते जिसके कारण बेटियां जला दी जाती है या मार दी जाती है।

पति परमेश्वर

सदियों से भारतीय संस्कृति व परम्पराओं में पति को परमेश्वर माना गया है जबकि समाज में सभी प्रकार के व्यक्ति मिलते है। पुरुष अच्छे भी होते हैं तथा बुरे भी। आज भी माता–पिता की धारणा के अनुसार पति परमेश्वर होता है तथा अन्य सभी पुरुष भाई जैसे होते हैं जो पत्नी अपने पति को परमेश्वर

मानती है तथा तन, मन, धन से उसकी सेवा करती है तो यह हमारी गौरवशाली परम्परा व संस्कृति तथा सभ्यता का एक अभिन्न अंग कहलाती है तथा एक परिवार व अच्छे समाज के लिए उत्तरदायी भी है परन्तु भारतीय समाज में जो बदलाव व परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं उसके अनुसार पुरुष आधुनिकता तथा वैश्विक व पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित होकर अपनी मानसिकता को विकृत कर रहा है साथ ही समाज में मीडिया तथा इन्टरनेट के द्वारा उसकी मानसिकता विकृत होती जा रही है साथ ही महत्वाकांक्षाओं, आशाओं, लालच, लोभ, भ्रष्टाचार आदि के कारण पुरुष वर्ग मानसिक रोगों का शिकार हो रहे हैं। ''पारिवारिक दिनचर्या, कार्यालय कार्यों का दबाव, संबंधों का दबाव उसकी मानसिक स्थितियों को प्रभावित कर रहा है जिसका सीधा प्रभाव उसके परिवार या पत्नी पर दिखाई देता है। वह अपने तनाव, गुस्से आदि को पत्नी पर ही निकालता है तथा पति को परमेश्वर मानने वाली स्त्रियां केवल उसके अत्याचार, पीड़ा को सहन करती रहती है तथा उसे ही अपना भाग्य मान बैठती है।''[24] उसके अनुसार पति कैसा भी क्यों न हो वह उसके लिए अच्छा ही होता है तथा सुधार की कल्पना में वह अपना पूरा जीवन व्यतीत कर देती है।

स्त्री अशिक्षा

पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियां इस कारण भी समाज में बनी हुई है कि स्त्री का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी अशिक्षित है। एक स्त्री के अशिक्षित होने का भार उसके सम्पूर्ण परिवार पर पड़ता है। लेकिन यदि एक स्त्री शिक्षित होती है तब भी उसके पूरे परिवार पर इसका स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। ऐसी नारी अपने परिवार का पालन पोषण करने के साथ बच्चों की पढ़ाई व परवरिश अच्छी प्रकार से कर पाती है तथा पुरुषों द्वारा होने वाले अत्याचारों, दर्द, पीड़ा आदि से अपने आप को बचा भी पाती है साथ ही पुरुष द्वारा देने वाले धोखों, ठगी आदि से भी अपना बचाव कर पाती है।

शिक्षित होने से वह अपने कुछ अधिकार तो प्राप्त कर ही लेती है परन्तु जो नारी शिक्षित नहीं हो पाती वह हमेशा जुल्म सहने, सूदखोरी, मेहनताने के

लिए कई बार मोहताज हो जाती है। अशिक्षा के कारण उसकी स्थिति न तो कुछ करने की होती है ना ही वह कुछ कर पाती है। केवल अपने भाग्य को ही कोसती हुई दुःख व पीड़ा सहन करती रहती है। इस प्रकार की ''नारी का शोषण पुरुष वर्ग कार्यस्थल पर भी करते हैं तथा आम पुरुष भी जैसे दुकानदार हमेशा वस्तु के ज्यादा पैसे ले लेते हैं। कई पुरुष स्त्रियों के पैसे खा जाते हैं। सेठ, जमींदार लूटते हैं। भ्रष्टाचार की चक्की में उन्हें जीवनभर पीसा जाता है। योजनाओं के पैसे लोग खा जाते हैं।''[25] इस प्रकार समाज में अशिक्षित स्त्री का शारीरिक ही नहीं मानसिक व आर्थिक शोषण भी किया जाता है।

2.2 विभिन्न सम्बन्ध

इस पृथ्वी पर नारी की गरिमा व उसका वर्णन प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। नारी को भारतीय समाज के अलावा अन्य धर्मों में भी उच्च पद तथा देवी माना गया है। वेद पुराणों में नारी को अर्द्धांगिनी माना गया है तथा नर–नारी की महिमा का बखान किया गया है। नारी के विविध रूपों की पूजा आज भी भारतीय समाज में विविध रूपों में की जाती है। नारी केवल स्त्री न होकर एक बेटी, पत्नी, बहन होने के साथ–साथ परिवार की आन–बान–शान भी होती है। उसका मान–सम्मान, प्रतिष्ठा परिवार में सर्वाधिक महत्व रखती है। कहा भी जाता है कि ''यदि एक नारी बिगाड़ने पर आ जाये तो सात पीढ़ियां बिगड़ जाती है और यदि नारी परिवार बना दे तो सात पीढ़ियां तर जाती हैं।''[26]

नारी में मातृत्व के वह गुण, शक्ति होती है जो असंभव को संभव बना देती है। यदि पतिव्रता स्त्री हो तो मृत्यु के द्वार से भी पति को वापस लेकर आ जाती है। ऐसी अनगिनत कहानियां भारतीय समाज में आदर्श व प्रेरणा का आज भी स्रोत है।

नारी एक परिवार का आधारस्तंभ होती है तथा बालक की प्रथम गुरु होती है। उसके मातृत्व, प्रेम, स्नेह, वात्सल्य जैसे गुणों के कारण ही बालक समाज में अपना अस्तित्व बना पाता है। नारी एक संसार की रचयिता होती है

जिसे परिवार कहते हैं। नारी बेटी या पत्नी के साथ–साथ परिवार के कई अन्य संबंधों से जुड़ी होती है। एक परिवार की बेटी होने के साथ–साथ दूसरे परिवार की बहू भी होती है। कभी वह भाभी, देवरानी, जेठानी, सास, बुआ, दादी जैसे संबंधों को भी धारण करती है तथा इन संबंधों को जीवन के साथ अग्रसर करती है।

''नारी अपने आप में एक पूर्णता का प्रतीक है। वह स्वयं ही भू है, तो स्वयं ही रक्षिता है, वह धारणी है, तो पालनकर्ता भी है। वह संग्राहक है, तो पालनहार भी है। वह मीरां है तो वह राधा भी है। नारी में जहाँ भक्ति समाहित है, तो प्रेम, वात्सल्य व करुणा भी है। इन्हीं विभिन्नताओं, विशेषताओं व गुणों के आधार पर ही वह सम्बन्धों में प्रगाढ़ता व निकटता लाती है, जीवन बनाती है।''[27] नारी ही अपने गुणों से बच्चों का पालन पोषण कर उन्हें संस्कारों से सृजित कर जीवन जीने के लिए तैयार करती है। एक परिवार में विभिन्न रिश्तों व संबंधों को बनाती है। जब इन्हीं संबंधों से विशेषतः पति व बच्चों तथा परिवार से घृणा, तिरस्कार, अपमान प्राप्त होता है, तो उसके अन्तर्मन में सृजित कुण्ठा, तनाव ही उसे जीवन में सृजनात्मकता की ओर लेकर जाते हैं। उसकी कल्पनाओं को साकार रूप प्राप्त होने लगता है। उसका आत्मसम्मान उसे जागृत कर स्वयं के होने का अहसास जब कराने लगता है, तो वह स्वतः ही अपनी कल्पनाओं व जीवन के उतार–चढ़ावों को लेखनी के माध्यम से जीवंत करने लगती है।

''जीवन से मिली कड़वाहट व कटुता उसे उच्च शिखर की ओर ले जाने लगती है, जहाँ उसे समाज द्वारा अब आत्मसम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगता है। जब एक नारी के साथ संबंध में प्रगाढ़ता या विछिन्नता आने लगती है, तो उसका अपना अस्तित्व बिखरने लगता है। उसी अस्तित्व को बनाने व स्त्री होने का गौरव प्राप्त करने के लिए वह अपनी सृजनता को उकेरना प्रारंभ करती है।''[28] रिश्तों की मर्यादा जब अपनी सीमा पार कर जाती है, तो एक नारी के गुण जो उसमें परिलक्षित होते हैं। वह अपना रूप बदलकर समाज में

एक नवीन छवि बनाने का प्रयास करने लगती हैं। पुरुष द्वारा परित्याग की गई स्त्री का अपना अस्तित्व पूर्णरूप से नहीं होता। समाज मानता है कि स्त्री, पति के द्वारा ही पूर्ण होती है, लेकिन हमारे समाज में मानसिकता का स्तर निम्न होने के कारण अधिकांश पुरुष व समाज स्त्री को ही दोष देता है जबकि ''उसे दोष व कलंक, पुरुष द्वारा ही प्रदान किया जाता है। पुरुष अपने प्रभुत्व, महत्वाकांक्षाओं एवम् शारीरिक सन्तुष्टि के लिए स्त्री का उपभोग करता आया है। एक शादी के पश्चात् भी एक से अधिक शादियाँ करना। एक स्त्री के होते हुए दूसरी स्त्री के साथ संबंध बनाना या उसे रखैल व बंधनी के रूप में रखना, शारीरिक रूप से शोषण करना, जमीदारों, जागीरदारों, सामंतों तथा अहंकार से पूर्ण व्यक्ति अपना अधिकार समझते आये हैं।''[29]

इसी प्रकार से समाज में प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त समाज के कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों के परिवार की स्थितियों तथा जीवन मूल्यों तथा वास्तविकता में विषमताएं दिखाई देती हैं। समाज में केवल प्रतिष्ठा के लिए स्त्री सम्मान की बातें करते हैं, लेकिन वास्तव में वही नारी जाति का अपमान करते हैं।

कस्तूरी कुडण्ल बसै (2002), एक कहानी यह भी (2007), अन्या से अनन्या (2007) तथा दोहरा अभिशाप (2009), मेरी कहानी (2014) की आत्मकथाओं में विभिन्न संबंध हमें दिखाई देते हैं परन्तु इन कथाओं के मुख्य पात्र माँ, बेटी, बहन, पति, पत्नी व प्रेमिका ही रहे हैं।

पिता–पुत्र का सम्बन्ध

इक्कीसवीं शताब्दी में उच्चकुलीन परिवारों में यह माना जाने लगा कि यदि लड़का यौवन प्राप्त कर चुका है, तो वह पिता का वारिस बनने लायक है। इस शताब्दी में लड़के की अहमियत अधिक थी, उसे कुल का दीपक समझा जाता था। चाहे उसका व्यवहार क्रोधी, अपमान करने वाला, असभ्य, स्त्रियों का आदर न करने वाला ही क्यों न हो। चाहे बालक संस्कारों से रहित ही क्यों न हो, परन्तु परिवार की परम्परा व मान–मर्यादा का असली हकदार उसे ही समझा

जाता था। पिता, पुत्र को अपना उत्तराधिकारी समझकर पूर्णरूप से स्वतंत्र कार्य करने के लिए प्रेरित करता था चाहे वह समाज विरुद्ध ही क्यों न हो।

पिता–पुत्र में मित्रता का सम्बन्ध भी देखने को मिलता है जबकि मध्यमवर्गीय परिवारों में पिता, पुत्र के लिए आदरणीय व सम्मानीय होता था। वह पिता के द्वारा कहे गये शब्दों को ईश्वर तुल्य मानता था तथा उनकी आज्ञा का पालन करता था। वह घर का पालन पोषणकर्त्ता होता था। उसका उत्तरदायित्व सभी के पालन पोषण तक सीमित था। उसका स्वयं का जीवन परिवार के लिए ही होता था। उसे अपने उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों का निर्वाह कर्ज लेकर भी पूर्ण करना होता था। पिता परिवार का मुखिया होता था, तो पुत्र मुखिया के उत्तरदायित्वों का निर्वहन कर्ता होता था। पिता का पुत्र की ओर मोह के कारण ही वंश वृद्वि का संचालनकर्ता होने के कारण पिता का प्रेम व उत्तराधिकार पुत्र को ही प्राप्त होता था। अधिकांश समाज में इसी कारण पुत्रियों को अधिकारों से वंचित रखा जाता था।

कस्तूरी कुंडल बसै, एक कहानी यह भी, अन्या से अनन्या तथा दोहरा अभिशाप में पिता–पुत्र संबंधों पर किसी भी प्रकार की चर्चा नहीं की गई है, केवल लेखिकाओं द्वारा इस बात को स्वीकार किया गया है कि यदि परिवार में लड़का है तो अधिकांश ध्यान तथा प्राथमिकता पुत्र को ही दी जाती है परन्तु ''मेरी कहानी'' में लेखिका मैरी कॉम यह पुष्टि करती है कि पिता द्वारा स्नेह, प्रेम तथा प्रेरणा व प्रोत्साहन के द्वारा तथा पति की प्रेरणा व प्रोत्साहन व समन्वयन, सहयोग से ही लेखिका ने अपना लक्ष्य हासिल किया।

पति–पत्नी का सम्बन्ध

भारतीय समाज में स्त्री को देवी माना गया है। वह सर्वदा पूजनीय रही है लेकिन भारतीय समाज की यह विडम्बना ही है कि धर्मों व ग्रन्थों के विपरीत समाज में वास्तविक परिस्थितियां भिन्न प्रतीत होती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में निम्नवर्गीय समाज में पत्नी, पति की सहभागी या साथी की भूमिका में दिखाई देती है। उसका सम्पूर्ण जीवन पति तथा परिवार के प्रति समर्पण से ओत–प्रोत दिखाई देता है। वह पति के साथ मजदूरी भी करती है तथा परिवार का भरण–पोषण भी। परन्तु सामाजिक परम्पराओं व अंधविश्वास, आडम्बरों का बोझ उस पर ही डाला गया है। वह इस प्रकार की सामाजिक कुरीतियों का शिकार होती आयी है तथा हो रही है क्योंकि समाज में उसकी कोई हैसियत नहीं है। उसकी अपनी कोई मान–मर्यादा व गरिमा नहीं है। अतः उच्च्य कुल व सूदखोरों, जमीदारों आदि के द्वारा वह घृणित व तिरस्कृत जीवन जीने के लिए विवश व बाध्य थी।

पति, पत्नी पर पूर्ण अधिकार नहीं रख पाता था। सामाजिक बंधनों तथा कर्ज के बोझ से उसे तिरस्कृत, अपमान सहने के लिए हमेशा बाध्य किया गया।

मध्यमवर्गीय परिवारों में पति–पत्नी के संबंधों में द्वन्द्व नजर आता है। इक्कीसवीं सदी के संबंधों की विवेचना करने से यह प्रतीत होता है कि मध्यमवर्गीय परिवारों में बालिकाओं की शिक्षा के प्रति झुकाव व सकारात्मक दृष्टिकोण की एक अलख जगाई तथा कई परिवारों में स्त्रियों को पुरुष के समान समानता प्रदान करने की कोशिश की जाने लगी।

सामाजिक बंधनों से मुक्ति का प्रयास यहाँ पर स्त्री द्वारा करने का प्रयास सफल होता हुआ दिखाई देता है। पति द्वारा उत्पीड़न का शिकार महिलाएं जागृति की दिशा में अपना प्रयास करती हुई प्रतीत होती है तथा कुछ महिलाओं ने अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाई तथा अपने अधिकार प्राप्त भी किये।

''पुरुष प्रधान समाज कभी भी स्त्री को पूर्णरूप से अधिकार प्रदान नहीं करता। केवल समानता की कुछ सीमाओं तक अवश्य लेकर जाता हुआ प्रतीत होता है। परन्तु वास्तविकता में नारी को समानता का अधिकार कभी भी प्राप्त नहीं हुआ। निर्णय लेने का अंतिम अधिकार वह अपने पास सुरक्षित रखता है।''[30] लेकिन समाज की कुछ महिलाओं ने शिक्षा तथा अपना स्वयं का मुकाम हासिल कर पुरुष प्रधान समाज को चुनौती भी दी है।

आज की नारी न तो पुरुष के आगे रहना चाहती है न ही उसके पीछे। वह तो उसके बराबर रहना चाहती है। इक्कीसवीं सदी की महिला लेखिकाओं की आत्मकथाओं में यही भाव प्रतिध्वनित है। भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में स्त्रियां पुरुषों के समान अधिकार तथा पद चाहती हैं। सदियों से इनका शोषण हो रहा है। नारीवाद की उत्पत्ति ने महिला आन्दोलन और नारी–मुक्ति संगठनों को जन्म दिया है। आज घर के अन्दर पत्नी के समान, बहिन भाई के, पुत्री पुत्र के, बहू बेटी के समान अधिकार, सम्मान तथा समानता की मांग कर रही है। दूसरी ओर घर के बाहर समाज में नारी पुलिस, डॉक्टर, इन्जीनियर, पायलट और ऐसी ही अन्य सेवाओं में अपने हिस्से की मांग कर रही हैं। नारी घर और उसके बाहर समानता चाहती है। जो सुख–सुविधाएँ पुरुषों को प्राप्त हैं नारी भी वैसी सुख–सुविधाएं और वस्तुएं चाहती है। शिक्षित स्त्रियां बाहर व्यवसाय करने लगी हैं। प्रभा खेतान अमेरिका में डॉ. सर्राफ के चेकअप के साथ अपने व्यवसाय को बढ़ाने की सोच रखती है।

''मैंने भी सोचा चलो काम में लगा जाए... मुझे निर्यात के व्यापार में एक बड़ा आइटम और जोड़ना है। चमड़े से केवल औद्योगिक दस्ताने और जूते ही क्यों बनाएं जाएं, बैग क्यों नहीं? भारत में कितनी बड़ी सख्या में बैग का निर्यात किया जाता है।''[31]

अब नारी घर की चारदीवारी में नहीं रहना चाहती है। मूल्यों में वृद्धि का विरोध नारियां भी करने लगी हैं। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियां समानता की माँग कर रही हैं। महिला सामाजिक कार्यकर्ताओं, महिला–संगठनों, राजनीतिज्ञों ने मूल्य–वृद्धि, दहेज, बलात्कार, शोषण आदि मामलों को उठाया है। इससे स्त्रियों में समानता के प्रति जागरुकता पैदा हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस, अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष, नारी उत्थान सम्बन्धी सभाएं, गोष्ठियां, अनुसन्धान आदि इसके परिणाम हैं। भारत सरकार द्वारा नियुक्त स्त्री परिस्थिति सम्बन्धी समिति, 1974 की रिपोर्ट का सभी ने स्वागत किया था।

उच्चवर्गीय परिवारों की स्त्रियों द्वारा राजनीतिक तथा सामाजिक उत्थान के क्षेत्रों की ओर अग्रसर होने तथा पत्नी की भूमिका से पृथक होकर अपना अस्तित्व सिद्ध करने की कोशिश ने एक नयी दिशा का प्रादुर्भाव किया।

ऐसी स्त्रियों द्वारा पति–पत्नी के संबंध से ऊपर उठकर समाज में अपनी प्रतिष्ठा व सम्मान प्राप्त किया तथा यह प्रदर्शित किया कि पत्नी केवल परिवार को ही संचालित नहीं कर सकती, वह समाज के किसी भी पद को गरिमापूर्ण निभा भी सकती है।

सरोजिनी नायडू, इंदिरा गाँधी, लता मंगेशकर, आशा भोंसले जैसी स्त्रियों ने समाज में स्त्रियों के लिए नवीन दिशा के द्वार खोल दिये तथा आदर्श स्थापित किये कि पत्नी होते हुए भी एक स्त्री समाज में अपना योगदान पुरुष के समान प्रदान कर सकती है।

पति–पत्नी के संबंधों में सामाजिक बंधन अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। जिसमें अधिकांश पत्नी त्याग व समर्पण का भाव प्रदर्शित करती हुई अपना सर्वस्व अपने पति को अर्पण कर देती है। 'एक कहानी यह भी' में–

> ''पिताजी की हर ज्यादती को अपना प्राप्य
> और बच्चों की हर उचित अनुचित फ़रमाइश और जिद को
> अपना फ़र्ज समझकर बड़े ही सहज भाव से स्वीकार करती थी।''[32]

इक्कीसवीं सदी में आये सामाजिक बदलावों ने इस दिशा में कई क्रांतिकारी परिवर्तनों का सूत्रपात किया तथा पत्नी अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगी। वह अपने पत्नी होने के समान अधिकारों के लिए न्यायालय तक जाने लगी। 'लगता नहीं है दिल मेरा' की कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा का प्रारम्भ ही न्यायालय में बयान से होता है–

> ''मैं कृष्णा अग्निहोत्री वल्द रामचन्द्र तिवारी
> गीता की कसम खाकर कहती हूँ

कि जो कहूँगी सच कहूँगी।

मेरा बयान नंगा रहे...।''[33]

पत्नी के शिक्षित होने के कारण भी सामाजिक संबंधों के साथ–साथ, पति–पत्नी संबंधों में प्रगाढ़ता, प्रेम, सौहार्द तथा समर्पण व समानता का भाव व प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा तथा पति द्वारा पत्नी को समान अधिकार प्रदान किये जाने लगे लेकिन फिर भी भारतीय समाज की संकीर्ण विचारधारा व मानसिकता को परिवर्तन करने में अभी भी समय की आवश्यकता प्रतीत होती है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा द्वारा यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि पति द्वारा

''आठ सौ रुपये में उसकी माँ को ब्याह के लिए खरीदा गया

तथा कर्ज होने पर पति उन्हें छोड़कर भाग गया।''[34]

अतः पति–पत्नी जैसे संबंध को उन्होंने जिया ही नहीं। हर आत्मकथा में पति–पत्नी संबंध लाचार, खोखले और मुखौटा पहने ही नज़र आते हैं।

कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) का पति स्वार्थी एवं क्रूर है। वह पत्नी को केवल वासना की तृप्ति के लिए प्रयोग करता है। यहाँ तक कि वह उसे नौकरानी की तरह चालीस रुपये पगार के देता है। पत्नी की जरुरतों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। दवा के लिए भी पैसे नहीं देता। वह अक्सर बीमार रहती है। घर चलाने के लिए भी पैसे नहीं देता। शिक्षित पति घर की किसी भी समस्या पर कोई ध्यान नहीं देता है। वह पत्नी को केवल नौकरानी समझता है। वह बात–बात पर पत्नी को गालियां देकर मारता था। वह ''मारता भी था क्रूर तरीके से।'' कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा) का पति भी पत्नी पर अत्याचार करता रहता है। वह स्वयं भी अन्य महिलाओं से अनैतिक व अवैद्य संबंध स्थापित करता है पर पत्नी को लांछित, अपमानित, प्रताड़ित करते हुए उसे भोगने में विश्वास करता है। सुशीला राय (एक अनपढ़ कहानी) में दस

साल तक पति के अत्याचारों को झेलती रहती है। उसका पति दूसरी शादी कर उसकी सौतन लाने की बात कहता है तब वह हमेशा रोती रहती है। खाती पीती नहीं है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी पुष्पा पति से जिस प्रेम को पाने की आशा करती है। वह केवल कल्पना मात्र लगती है।

सुशीला राय (एक अनपढ़ कहानी) ''काली–बांझ होने के कारण पति के अत्याचारों का शिकार बनती है। पति को आकर्षित करने में, घर में बाँधकर रखने में वह असफल बन गई। तब उसका पति उसके सामने दूसरे विवाह का प्रस्ताव रखता है।''[35]

भारतीय समाज व्यवस्था में पत्नी को बच्चे पैदा करने का बेजान यंत्र मानकर उस पर अत्याचार किए जाते हैं। ''बच्चों को जन्म देने में असफल पत्नी पर पति और घर वाले अत्याचार करते हैं। उसे बाँझ कहकर प्रताड़ित करते हैं। उससे तलाक चाहता है। पति स्वार्थवश पत्नी पर दूसरी शादी के लिए दबाव डालता है।''[36]

कौसल्या बैसंत्री का पति स्वार्थी एवं क्रूर है। वह पत्नी को केवल वासना की तृप्ति के लिए प्रयोग करता है। पत्नी की जरुरतों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। दवा, कपड़े व चप्पल की सिलाई तक के लिए भी पैसे नहीं देता। घर चलाने के लिए भी पैसे नहीं देता। कृष्णा अग्निहोत्री का पति पत्नी पर अत्याचार करता है। वह हमेशा रोती रहती है। वह पत्नी को लांछित, अपमानित, प्रताड़ित करते हुए उसे भोगने में विश्वास करता है।

छात्र–अध्यापक का सम्बन्ध

भारतीय समाज की पुरातन परम्पराओं में गुरु–शिष्य अर्थात् आश्रम व्यवस्था तो आजादी के बहुत पहले ही केवल कुछ स्थानों तक सीमित होकर रह गई थी। लेकिन गुप्तकाल, मुगलकाल आदि में यह व्यवस्था विद्यालय

व्यवस्था के रूप में आयी तथा इसका विस्तार व क्षेत्र शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का विस्तार लगभग समाप्त सा हो गया था।

अंग्रेजी शासन व्यवस्था में शिक्षा पूर्णरूप से चौपट हो चुकी थी, लेकिन आजादी की लड़ाई के साथ धीरे–धीरे शिक्षा के लिए सामाजिक बंधनों से मुक्ति के लिए गुरु–शिष्य परम्परा का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रहा।

गुरु द्वारा कहे गये शब्दों को जीवन का लक्ष्य मानकर शिष्य उसे प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व जीवन अर्पण कर देता था। वह सामाजिक तथा धार्मिक रूप से तथा अन्तर्मन व अन्तरात्मा से गुरु से बंधा होता था। लेकिन समाज में धीरे–धीरे होने वाले बदलावों तथा गुलामी की जंजीरों ने गुरु–शिष्य परम्परा के मापदण्डों को बदलकर रख दिया। अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से भारतीय गरिमा व गौरवमय परम्पराओं का ह्रास होता चला गया। धीरे–धीरे पाश्चात्य सभ्यता के काल्पनिक युग का प्रभाव भारतीय शिक्षा पर भी पड़ने लगा। गुरु–शिष्य परम्परा के स्थान पर अब अध्यापक–विधार्थी संबंध अपने नवीन रूप में उजागर होने लगे। इस संबंध में वह मिठास या भावात्मक लगाव नहीं था जो गुरु–शिष्य में था।

गुरु–शिष्य में जो भारतीय दर्शन, सभ्यता व संस्कृति के अनूठे समागम की भावना, मानसिक शांति का अहसास व अनुभूति प्रतीत होती थी। वह अध्यापक–विद्यार्थी संबंध में नहीं होती। अध्यापक–विद्यार्थी संबंध केवल बनावटीपन को लिए हुए हैं तथा विद्यार्थी का संबंध केवल शिक्षा से ही रह गया है। गुरु ज्ञान से संबंधित था जबकि अध्यापक या शिक्षक केवल मात्र पाठ्यक्रम से सम्बन्धित प्रतीत होता हैं।

अध्यापक का क्षेत्र सीमित होकर केवल विद्यालय तक ही रह गया है जबकि गुरु का संबंध शिष्य के सम्पूर्ण जीवन, उसके मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं, संस्कृति से भी था। गुरु की पहचान शिष्य के कर्मों से जानी जाती थी।

लेकिन वर्तमान समय में अध्यापक केवल मार्गदर्शक की भांति कार्य करता है व पथ–प्रदर्शक तो है, परंतु विद्यार्थी उसकी कही हुई बातों या प्राप्त ज्ञान को मानने के लिए पूर्ण स्वतंत्र है।

अध्यापक सामाजिक बंधनों, कर्त्तव्यों, दायित्वों से विमुख दिखाई देता है। इसी प्रकार से शिष्य या विद्यार्थी भी सामाजिक दायित्वों, कर्त्तव्यों, मूल्यों को विसरित करने लगा है तथा पाश्चात्य सभ्यता के काल्पनिक भविष्य में गोते खाता दिखाई देता है। विद्यार्थी अलगाव, द्वेष, क्रोध, भड़काव मानसिकता आदि की ओर अधिक अग्रसर होता जा रहा है। सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, परम्पराओं का विद्यार्थी ह्रास करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है तथा अध्यापक मूक बधिर होकर समाज के सामने नियमों में बंधा हुआ प्रतीत होता है।

अतः इक्कीसवीं सदी में जहाँ ज्ञान–विज्ञान का विस्तार हुआ है, वही अध्यापक–विद्यार्थी संबंधों में विछिन्नता दिखाई देती हैं।

अन्य सम्बन्ध

भारतीय समाज मूल्यों व आदर्शों तथा धर्म व परम्पराओं पर आधारित रहा है। हमारे मूल्य ही हमारी आधारशिला है, जो भारतीय परम्परा को आज भी जीवित रखे हुए हैं।

पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीय समाज में जो भ्रामक तथ्य उत्पन्न कर दिये हैं, वह भारतीय समाज के लिए द्योतक है तथा यह चकाचौंध व महत्वाकांक्षी जीवन जीने की लालसा, घर–वैभव की आशा, मानव जीवन को अपराध की ओर अग्रसर कर रही है। सामाजिक जीवन में बदलाव तेजी से हो रहा है तथा मनुष्य मानवीय जीवन, मूल्यों व आर्दशों को भूलता जा रहा है।

पाश्चात्य संस्कृति ने संबंधों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। संबंधों में जहाँ विस्तार हुआ है, वहीं संबंध समाज में प्राप्त पद, सम्मान, धन–वैभव पर आधारित होते जा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी में मानव संबंध वास्तविक स्थितियों पर आधारित न होकर केवल लालच व फायदे पर आधारित होते जा रहे हैं।

अधिकांश संबंध सामाजिक तथा आर्थिक सम्पन्नता पर आधारित होते जा रहे हैं तथा मानव दिखावटी या मुखौटा लगाकर व्यवहार करता हुआ प्रतीत होता है। माता–पिता, पुत्र–पुत्री आदि सभी संबंध बनावटी प्रतीत होते जा रहे हैं। सभी एक–दूसरे पर निर्भरता के कारण संबंधों को ढो रहे हैं। 'अन्या से अनन्या' आत्मकथा में प्रभा खेतान ने नफीसा के बारे में उद्‌गार से भाई द्वारा बहन के आर्थिक शोषण का उदाहरण बड़ा ही मार्मिक है। जो एक और अन्य सामाजिक संबंध की परत उघाड़ता है–

''गली में शोर हुआ

कि नफीसा बीबी ने भूख और गरीबी से दम तोड़ दिया।

लेकिन यह हुआ कैसे?

किसी को पता नहीं था नफीसा भूखी रहती थी!

मगर ऐसा क्यों हुआ?

नफीसा का शौहर तो शेंखों के महल बनाने रियाद गया हुआ था।

क्या वह पैसे नहीं भेजता था?

खूब पैसे भेजता था।

पर नफीसा का भाई आलमगीर,

वही एक नम्बर का शैतान था।

नफीसा के सारे पैसे दारू की भट्‌टी में झोंक आता।''[37]

सामाजिक संबंधों की दुखांतिका यही नहीं रूकती। अब बारी है पारिवारिक संबंधों की चिंतन और प्रश्नवाचक चिह्नों की बौछार सोचने को मजबूर कर देती है। आगे के उदाहरण उसका भी चीरहरण करते दिखाई देते हैं–

''बेचारी नफीसा क्या करती?
शौहर के घर वालों से कैसे शिकायत करती?
घर वाले उसे मारेंगे नहीं?
इधर भाई तो उधर सास
एक ही घर में रहते हुए बेचारी नफीसा बीबी
पैसे–पैसे के लिए मोहताज रही!
घुटती रही, बीमार रही,
तपेदिक तो होना था, फेफेड़े गल गये!
औरत के लिए अजीबो–गरीब है दुनिया!
बस दम तोड़ दिया नफीसा ने।''[38]

हालांकि हम कहते हैं कि दुनिया उम्मीद तथा विश्वास पर कायम है, लेकिन यह विश्वास अब पूर्ण विश्वास से नीचे की ओर आ गया है। परिवार द्वारा अविश्वास, संबंधों में नकारात्मकता, प्रताड़ना, तिरस्कार, मातृत्व सुख से वंचित स्त्री, बालिका के जन्म पर होने वाली माता को पीड़ा, आदर–सम्मान में कमी, दूसरों के प्रति श्रद्धा भाव, परोपकार, सहनशीलता, धैर्य, परिवार में पैसे की अहमियत, स्त्री इच्छा, आशा को महत्व नहीं, निर्णयों में नारी की भूमिका नगण्य, नारी महत्वाकांक्षाओं का कोई औचित्य न होना आदि कई कारण है जो स्त्री को अपनी पहचान बनाने को प्रेरित करते हैं। यही कारण है कि एक ''स्त्री अपने मन की भावनाओं, इच्छा, तिरस्कार, घृणा, प्रताड़ना को समाज के सामने व्यक्त नहीं कर पाती, तो उसने कलम का सहारा लिया तथा अपनी बात उसने समाज के सामने रखी।''[39] शुरूआत में स्त्री की महत्ता व लेखन पर समाज द्वारा ध्यान नहीं दिया गया लेकिन धीरे–धीरे इसमें परिवर्तन हुए तथा सरकार, संविधान द्वारा एवं समाज सुधारकों, समितियों, संगठनों के सहयोग पूर्ण रवैये से स्त्रियां अपने हक, अधिकारों के प्रति जागृत हुई तथा अपनी जीवनियों को लेखन के

माध्यम से समाज के दृष्टिपटल पर अंकित करने लगी। जिससे समाज में उनके प्रति अत्याचारों जैसे– घृणा, तिरस्कार आदि से उसे छुटकारा मिल सके। वह भी सम्मानपूर्वक जीवन जी सके। उसे भी अर्द्धांगिनी का अधिकार, सम्मान प्राप्त हो, वह भी परिवार की मुखिया हो, निर्णयों में उसकी भी सहमति प्राप्त हो। स्त्री बेटी होते हुए भी बेटे की भूमिका में अपनी छवि को उभारने लगी है तथा समाज के सामने उदाहरण प्रस्तुत करने लगी है। अपने जीवन के अनुभवों को वह लेखन के द्वारा बांटने लगी, जिससे अन्यों को प्रेरणा मिले। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के संबंधों द्वारा प्राप्त अनुभवों को अपनी जीवनी द्वारा प्रस्तुत करने लगी है।

2.2 अन्य संबंध

(1) पुरुष–प्रेमिका संबंध

(2) मित्रता संबंध

(3) सहानुभूति संबंध

(4) पारिवारिक संबंध

(5) अनुभव व आत्मीयता का संबंध

(6) पुत्रमोह संबंध

(7) अनैतिक संबंध

पुरुष प्रेमिका संबंध

किसी कवि की कविता हो या लेखक की लेखनी कहा जाता है कि सृजनात्मकता या कल्पनात्मकता के पीछे कहीं ना कहीं एक नारी का प्रतिबिम्ब होता है। अक्सर इस प्रकार के लेखन में प्यार या प्रेम कहीं ना कहीं छुपा हुआ होता है। जिसका ही प्रभाव होता है कि शब्दों में दर्द है या प्यार है या प्यार प्रेम का दर्द है। जब प्रेम मिल जाता है तो लेखनी में खुशी, उत्साह, उल्लास प्रकट होने लगता है जबकि यदि प्रेम में धोखा प्राप्त हो या ना मिल पाये तो

जिंदगी में एक नीरसता आ जाती है तो लेखनी में भी दुःख–दर्द, करुणा दिखाई देती है। इसी प्रकार से आत्मकथाओं में भी कहीं ना कहीं प्रेम में धोखा देखा गया है या एक पुरुष द्वारा नारी की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया गया है। आत्मकथाओं में एक बात और दिखाई देती है वह है प्रेमिका संबंध। अधिकांश आत्मकथाओं में इस बात का जिक्र कहीं ना कहीं अवश्य आता है कि पतियों का संबंध अन्य स्त्रियों के साथ भी रहे हैं जिसके कारण पुरुष तो जीवन का आनंद प्रेमिका के साथ प्राप्त करता रहता है परन्तु जिससे पारिवारिक स्थिति बिगड़ जाती है। पारिवारिक रिश्तों में तनाव परेशानियां बढ़ जाती है। पुरुष परिवार में ज्यादा ध्यान नहीं देता है तथा धीरे–धीरे समस्याएं बढ़ने लगती है जिसका प्रभाव अक्सर तलाक देखा गया है। किसी भी स्त्री द्वारा अपने पति द्वारा अन्य स्त्री के साथ संबंध को कभी भी स्वीकार नहीं किया जाता है क्योंकि एक स्त्री कभी भी नहीं चाहती है कि उसके पति का प्रेम किसी अन्य को प्राप्त हो और खासतौर पर उस स्थिति में जब उनकी संतान भी हो। संतान होने के पश्चात् यदि किसी पुरुष का संबंध अन्य के साथ होने पर, संतान के साथ भी संबंध मधुर, प्रेम, सहानुभूति वाले नहीं हो पाते। इस प्रकार के संबंधों में अनैतिकता का भाव भी होता है। अतः पुरुष द्वारा पत्नी के साथ संबंधों में हमेशा कटुता व कड़वाहट बनी रहती है तथा पारिवारिक आवश्यकताएं भी इससे प्रभावित होती हैं। पुरुष पत्नी की किसी भी आवश्यकता की पूर्ति या तो नहीं करता या फिर अनमने तरीके से अपूर्ण रूप से करने की कोशिश करता है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भण्डारी स्वयं इस बात को मानती है और स्वीकार भी करती है कि पता नहीं क्यूं उन्होंने अपने पति के अन्य स्त्री के साथ संबंध को स्वीकार कर लिया। शायद ऐसा इसलिए रहा कि जब कोई स्त्री किसी पुरुष से पूर्ण प्रेम करती है तो वह उसकी गलतियों आदि को अन्तर्मन से माफ भी कर देती है क्योंकि उसका मन प्रेम से भरा हुआ रहता है जिसे वह भूल नहीं पाती। हाँ यह अवश्य है कि इस प्रकार की स्थिति को संभाल पाने में उसे समय अवश्य लगता है। वह स्वयं इस बात को स्वीकार करती है कि

''राजेन्द्र के साथ उनका लगाव इतना गहरा हो गया था कि उसे नकार देना अपने आपको नकार देने जैसा था।''[40]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान द्वारा विवाहित पुरुष के साथ निःस्वार्थ प्रेम करने के बावजूद यह पता होते भी डॉ. सर्राफ के अन्य स्त्रियों के साथ भी संबंध है तथा वह उन्हें केवल शारीरिक तौर पर उपभोग करते हैं। उसके लिए उसका कोई महत्व नहीं है फिर भी वह उनका साथ हमेशा निभाती है। परन्तु जिंदगी भर साथ रहकर भी डॉ. सर्राफ उन्हें वह सम्मान व प्रेम नहीं देते हैं जो उन्हें प्राप्त होना चाहिए। बल्कि ''समाज द्वारा उन्हें हमेशा उलाहना व अपमानित ही होना पड़ा। अपमानित होते हुए देखने पर भी कभी डॉ. सर्राफ ने कुछ नहीं कहा। बल्कि उनके प्रेम व विश्वास को हमेशा नकारते रहे।''[41] बल्कि कई बार तो शंका व संदेह भी करते थे।

'लगता नहीं है दिल मेरा' में कृष्णा अग्निहोत्री द्वारा कहे गये ये शब्द स्वयं ही उनकी आत्मकथा को बयां कर देते हैं–

कानून एवं व्यवस्था की बात तो एक तरफ रही,

इस देश और समाज में नारी कहीं भी सुरक्षित नहीं है।

पुरुष किसी गिद्ध की तरह उस पर झपट्टा मार कर

उसे खाना और चबाना चाहता है

भले ही वह शिक्षित, सुसंस्कृत एवं आत्मनिर्भर हो।

इस सत्य को रेखांकित करते हुए वे लिखती हैं कि–

''मैंने तो जिंदगी में यह अहसास किया

या कहें कि मुझे अहसास कराया गया है

कि अकेली रहने वाली महिला पर प्रत्येक पुरुष

अपना अधिकार जमाना चाहता है।

किसी की दृष्टि उसके रुपये,

जायदाद

या किसी की नजर उसके शरीर पर रहती है।''[42]

इस आत्मकथा में कृष्णा जी बताती है कि उनके जीवन में अधिकांश पुरुष विवाहित होते हुए भी उनसे शारीरिक संबंध बनाने को आतुर रहे अर्थात् हर पुरुष उन्हें प्रेमिका के तौर पर पाना चाहता है।

मित्रता संबंध

आत्मकथाओं में सभी प्रकार के पात्र तथा पुरुषों के साथ संबंधों को बताया गया है अधिकांश संबंध अनैतिक रहे हैं परन्तु इनमें से भी कई पुरुष ऐसे रहे हैं जिनके व्यक्तित्व के कारण लेखिकाएं अपना मार्ग प्रदर्शन कर सकी हैं या जिन्होंने अपनी सीमाओं का ध्यान रखते हुए नारी सम्मान को आगे बढ़ाया।

''लगता नहीं है दिल मेरा'' में कृष्णा अग्निहोत्री, डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना को वे एक सहृदय मित्र के रूप में याद करते हुए अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है। डॉ. वीरेन्द्र सक्सेना मेरे ऐसे मित्र रहे हैं जिन्होंने अपनी सीमाओं के साथ हमेशा मेरा साथ दिया है। मेरी पुस्तकों की समीक्षा लिखी मुझे सम्पादकों व प्रकाशकों के पास ले गये। मानव संसाधन विभाग से हैदराबाद व कई जगह दो बार विजिटिंग प्रोफेसर के रूप में भिजवाया। लेखन व जीवन में जो समस्याएं रही वे सुनते व सुझाव भी देते रहे। उन्होंने जो भी सहयोग दिया वह निःस्वार्थ रहा। उनके सहयोग का पलड़ा भारी है। मैं तो केवल छोटा मोटा स्नेही व्यवहार ही उन्हें दे सकी।''[43]

सहानुभूति संबंध

कई बार समाज में एक स्त्री और पुरुष के मध्य सहानुभूति का संबंध भी स्थापित हो जाता है जो परिस्थितियों से लड़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। जब एक पुरुष के व्यक्तित्व व स्वभाव तथा व्यवहार में नारी के प्रति आत्मसमर्पण व सम्मान का भाव होता है तो नारी स्वभावपूर्वक अपनी समस्याओं और परेशानियों

को बाँट लेना चाहती है। जिससे उसे सही सलाह प्राप्त हो सके। एक ही स्थान या विभाग में कार्यरत सभी सदस्यों में इस प्रकार के व्यवहार बन जाते हैं जब वह एक–दूसरे पर विश्वास करने लगते हैं, सुख–दुःख को कुछ बाँटने लगते हैं। इन आत्मकथाओं में कई ऐसे पात्र हैं जो कहीं ना कहीं लेखिकाओं के आत्मसम्मान को बढ़ाते हुए प्रतीत होते हैं तथा लेखिकाओं के जीवन को कुछ बेहतर बनाने का प्रयास किया या सहयोग प्रदान किया।

पारिवारिक संबंध

आत्मकथाओं में लेखिकाओं के जीवन के प्रथम पड़ाव या बचपन की स्मृतियों का विवेचन या विश्लेषण करते हैं तो यह ज्ञात होता है अधिकांश रिश्ते खोखली बुनियाद पर टिके होते हैं। एक अबोध बालिका के मन या उसके अस्तित्व की परवाह किसी को भी नहीं होती है। एक बालिका किसी निर्णय से सहमत है या नहीं, किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता है। खासतौर पर बालिका के जीवन को नियम कायदे कानून में बांधना चाहते हैं। उसके अरमान, चाहत का जैसे कोई वजूद ही नहीं है। वह केवल त्याग, समर्पण के लिए ही बनी है तथा उसे हर हाल में अपने को समायोजित करना ही पड़ेगा अन्यथा वह ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध का शिकार होगी। उसे पारिवारिक निर्णयों को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। शादी के बाद की स्थिति अधिक विकट नजर आती है यदि एक बेटी शादी के पश्चात् पति से अलग होकर अपने पीहर आ जाती है तो वह बेटी नहीं रह जाती है तथा स्वयं माता–पिता उसे बोझ समझते हैं। समाज उसे अपमानित व घृणित नजरों से देखता है। सगे–संबंधी ऐसे समय आग में घी डालने का कार्य और करते हैं परन्तु कोई भी उस नारी की व्यथा को सुनने को तैयार नहीं है। सभी को उस नारी में ही अवगुण नजर आते हैं। वह समाज में जीवन के इस चक्रव्यूह में फंसकर रह जाती है। तड़पती है, छटपटाती है परन्तु उसके मन को समझने वाला कोई नहीं होता। पारिवारिक संबंध अक्सर एक नारी को हमेशा पीछे की ओर धकेलने को आतुर होते हैं। यदि एक नारी अपने पति से अलग हो जाती है तो समाज उसे जीने की भी

इज्जत नहीं देता है। हर जगह उसका अपमान किया जाता है। यहाँ तक कि स्वयं उसके परिवार के सदस्य ऐसे समय में उसका साथ देने की जगह उसे धिक्कारते हैं, उसका अपमान व तिरस्कार करते हैं। वह स्वयं अधोपोश की स्थिति में रहती है कि जिन्होंने उसे जन्म दिया वही उसका साथ नहीं दे रहे हैं, उन्हीं के जीवन में उसका कोई अस्तित्व या महत्व नहीं है तो वह कहाँ जायेगी। उसका स्वयं का वजूद क्या है? इस स्थिति में यदि कोई पुरुष उसके साथ सहानुभूति रखता है या किसी प्रकार का सहयोग प्रदान कर दे तो उसे शंका की दृष्टि से देखा जाता है। समाज को लगता है कि ऐसी स्त्रियों का पुरुष के साथ केवल शारीरिक संबंध ही हो सकता है जबकि ऐसा नहीं है। एक पुरुष स्त्री में व्यावहारिक, मित्रता, सहानुभूति का संबंध भी हो सकता है।

'कस्तूरी कुंडल बसै' में लेखिका तथा उनकी माँ के मध्य का संवाद विवादास्पद तथा द्वन्द्व की स्थितियों को बताता है। कस्तूरी द्वारा घर की भुखमरी की स्थिति को देखते हुए ब्याह न करने की केवल कहना ही उनका मर्यादा तोड़ना माना गया। परिवार के सभी सदस्यों द्वारा तीव्र आक्रोश व क्रोध उन्होंने देखा। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि घर की ऐसी स्थिति में भी कोई ब्याह करने की कैसे सोच भी सकता है कस्तूरी के पिता माँ को छोड़कर भाग गये तथा भाई भी भाग जाने की स्थिति में है। माँ उन्हें सतमासी मानती है तथा बेटी होने के दुःख को हमेशा जताती है।

कस्तूरी के पति द्वारा छोड़कर जाने तथा उसके विधवा हो जाने पर समाज की परवाह न करते हुए वह रेशमी वस्त्र व गहने पहनती है। अपनी जमीन की रक्षा के लिए स्वयं अपने को तैयार करती है।

कस्तूरी रोज–रोज का झोला लेकर मीरांबाई बनकर फिरती है। माँ उसका विरोध करती है। वह माँ को सबसे बड़ा दुश्मन मानती है। मायके का रिश्ता काट देती है। वह अपनी परम्परा से दूर जाती है। मैत्रेयी द्वारा संगीत की ओर रूझान का वह विरोध करती है। मैत्रेयी के कुछ बड़ी होने पर वह उसकी चोटी काट देती है इस समय मैत्रेयी माँ को दुश्मन समझती है। मैत्रेयी द्वारा बी.

ए. में पढ़ते हुए सोलह साल की उम्र में ब्याह करने की कहना माँ के सपनों पर चोट करने जैसा था परन्तु कस्तूरी उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपहास में बदल देना चाहती है। माँ को उसकी साधारण गृहस्थी से चिढ़ हो रही है। माँ मैत्रेयी से कहती है ''स्त्रीत्व माने स्त्री शक्ति तू उस स्त्री शक्ति को गंवाने पर तुली है, मुसीबत तो यही है''। कस्तूरी मैत्रेयी को नौकरी लगाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती है परन्तु मैत्रेयी ब्याह करना चाहती है। गाँव का मुखिया भी मैत्रेयी के विवाह की बात करता है परन्तु कस्तूरी उसका विरोध करती है। एक दिन दर्जी का बेटा मैत्रेयी को प्रेमपत्र लिखता है और माँ उसकी औकात बताकर उसका विरोध प्रकट करती है।

कस्तूरी दहेज न देने की कसम से बंधी होने पर समाज व परिवार का विरोध करती है तथा किसी की भी बात नहीं सुनती। शादी के ऐसे समय पर मैत्रेयी को उसकी माँ कस्तूरी को थप्पड़ तक मार देती है ऐसे समय पर मैत्रेयी को माँ सबसे बड़ी दुश्मन लगती है। शादी के पश्चात् पति द्वारा उसका निरादर व तिरस्कार करने पर एक दिन वह उसका विरोध प्रदर्शन भी करती है क्योंकि जिस विवाह सुख की उसने कल्पना की थी, पति उसे उससे वंचित कर रहा था जिसके कारण पति–पत्नी के रिश्ते में प्रतिरोध की स्थिति बन गयी थी।

अनुभव व आत्मीयता का संबंध

आत्मकथाओं में लेखिकाओं ने कई ऐसे व्यक्तित्व व पुरुषों का जिक्र किया है जिन्होंने उन्हें सम्मान प्रदान किया तथा उनके दुःख व परेशानियों को कम करने के लिए सहयोग प्रदान किया। लेखिकाएं मानती हैं कि कई बार इस प्रकार के मौके आते हैं जब एक मंच या स्थान पर लेखक, लेखिकाएं मिलते हैं जहाँ कई बार लेखन से संबंधित होने के नाते आत्मीयता के संबंध स्थापित हो जाते हैं। ऐसा भी होता है कि जिनकी पुस्तकें, लेख आप पढ़ते हैं और उन्हीं से आपकी मुलाकात हो जाती है तो एक आत्मीयता का रिश्ता बन जाता है। लेखकों के व्यवहार, व्यक्तित्व तथा उनके अनुभव से अनुभव प्राप्त करने के लिए

भी ऐसे संबंध बन जाते है, जो निःस्वार्थ होते हैं तथा हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी करते हैं।

पुत्र मोह संबंध

अधिकांश लेखिकाएं इस बात को स्वीकार करती हैं कि उन्होंने उनके बचपन में जो दंश एक नारी होने का भुगता है वह किसी को भी प्राप्त न हो। माता–पिता हमेशा अपने पुत्र के मोह में अन्धे बने रहते हैं तथा उसके गलत व अनैतिक कृत्यों पर भी पर्दा डालते हैं जबकि एक बालिका का उनके लिए खास अस्तित्व नहीं रहता। यहाँ तक कि जिस माँ ने उसे जन्म दिया है वह भी उसे धिक्कारती है, उलाहना देती है तथा उसे घर की नौकरानी से कम नहीं समझा जाता है। माँ कहती है कि भगवान क्यों जन्म देता लड़कियों को? लड़कियाँ पाप का फल होती है। ये फल विषफल होते हैं। जमींदार भी इसी तरह अन्याय, अत्याचार करते रहते हैं। भाभी कहती है कि जवानी में औरत को रोटी–कपड़ा वहीं देता है जो उसके संग सोए।

मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूंद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाये? क्यों? किसलिए? रोना और केवल रोना, आँसुओं का समन्दर, आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम। अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ क्या सभी रोने के लिए पैदा हुई। यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ जिनकी और कभी मैंने कभी बड़ी ललक से देखा था। जो मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समन्दर को भरे चली जा रही थी। स्कूल की हैडमिस्ट्रेस पुष्पमयी बसु को मैंने प्रायः उदास और दुःखी पाया। वे अकेली थी लेकिन मन्नू भण्डारी, जिन्होंने मुझे चौथी से ग्याहरवी तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थी? राजेन्द्र यादव को उन्होंने जीवन साथी के रूप में स्वीकारा था, लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नूजी ने रोते–रोते अपने पति परमेश्वर के कारनामें सुनाये। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने

पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उसी दिन समझा था।''[44] ''मुझे लगता–स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है, जो बिना मालिक के जी नहीं पायेगा।''[45]

मुझे आज भी याद है। अम्मा की पानी पीने की एक काँच की केटली थी, बड़ी नफीस सी ... जो मेरे हाथों गिरकर टूट गई। उनका चिल्लाकर पूछना, "अरे क्या तोड़ा?" और तब तक मैं भागकर पीछे वाले बरामदे में, एकदम रेलिंग के ऊपर चढ़ गई। रेलिंग के इस ओर एक पैर तथा दूसरा पैर उठने की तैयारी में। मैंने नीचे झांककर देखा। पथरीली जमीन थी। "मैं मर जाऊँगी। अच्छा होगा...लेकिन मेरे मरने पर कौन रोयेगा? केवल दाई माँ और शायद गीता और पुष्पा...नहीं किशन भी। बाबूजी रहे नहीं और अम्मा, वे तो मेरे मरने पर बेहद खुश होगी। बरामदे की रेलिंग पर बैठी एक पैर बाहर की ओर झुलाए हुए सोचे चली जा रही थी। अच्छा मैं जाऊँगी कहाँ? किस लोक में, क्या बाबूजी के पास? बाबूजी तो स्वर्ग में है, और दाई माँ कहती है कि जो आत्महत्या करके मरते है, वे ही प्रेत हो जाते है...आज सोचती हूँ कि कैसा अनाथ और असहाय बचपन था।''[46]

अनैतिक संबंध

'कस्तूरी कुंडल बसे' में मैत्रेयी पुष्पा बताती है कि जब वह पढ़ने के लिए अलग–अलग जगह रही तथा माँ ने उसे इज्जतदार घरों में रखा था। वे ही उसकी आबरू उतारने लगे थे। मैत्रेयी यौवनावस्था में कदम रख चुकी थी तथा वह अपना दैहिक तथा मानसिक हक प्राप्त करना चाहती थी। माँ से तो उसकी बनती नहीं थी इसलिए भी वह माँ को सबक देकर आनंद पाना चाहती थी। दर्जी का बेटा राघव उसे प्रेम पत्र लिखता है, इसी प्रकार प्रिंसिपल भी उस पर अपनी बुरी नजर रखता है इसी तरह से ड्राइवर मैत्रेयी के साथ जबरदस्ती करता है– ''माँ कहती है कि भगवान क्यों जन्म देता लड़कियों को? लड़कियाँ पाप का फल होती है। ये फल विषफल होते हैं। जमींदार भी इसी तरह अन्याय

व अत्याचार करते रहते हैं। भाभी कहती है कि जवानी में औरत को रोटी–कपड़ा वहीं देता है जो उसके संग सोए।

लड़की खरीदी हुई घोड़ी से ज्यादा नहीं है। लड़की बेची हुई गाय होती है। ब्याह गौने के नाम पर खरीदने बेचने का धन्धा है। खेती नहीं हुई, तो बेटी काम आ जाती है। कस्तूरी को उसके पति ने आठ सौ रुपये में लिया था। यह रूपया जमींदार और साहूकार से लिए थे, जिनके डर से वह दिल्ली भाग गया था।

जाट के लड़के एदलसिंह पर चमार होने के कारण अन्याय, अत्याचार करते हैं। मैत्रेयी बताती है कि स्कूल के लिए जो लड़का जगदीश उसे साइकिल पर बैठाकर ले जाता है वे दोनों एक दिन पेड़ की छाया में आराम करने के लिए रुकते हैं। मैत्रेयी अचानक चौकती है ''अरे! लड़के का हाथ उसकी फ्रॉक को पार करता हुआ जाघों तक आ गया।''

अलीगढ़ में मैत्रेयी का पढ़ने के लिए जिस संयोजिका के घर पर रखा जाता है उनका छोटा बेटा जिसका ब्याह भी हो चुका है। वह मैत्रेयी को रात भर सोने नहीं देता। रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छाती नोंचते बनोटते हैं।

एक बार घर पर भैया–भाभी के घर उनके न होने पर तन्दुरूस्त बूढ़ा आदमी–उनके साथ अश्लील हरकतें करता है जिससे मैत्रेयी डर जाती है। इतना होने पर भी भाभी बूढ़े को माफ कर देती है।

''लड़की होने की सजा वह जगह–जगह भोगती है। डी.बी. इन्टर कॉलेज के प्रिंसिपल ने एक दिन मैत्रेयी को बाँहों में कस लिया था। चुम्बन और मनुहार से मैत्रेयी सिटपिटा जाती है। प्रिंसिपल को हटाने के लिए आंदोलन भी होता है तथा मैत्रेयी को रेस्टीकेशन करने की बात आते ही माँ प्रिसिपल से माफी मांगने के लिए कहती है।

एक दिन ड्राइवर मैत्रेयी के साथ जबरदस्ती करता है परन्तु बाज बहादुर उसे बचा लेता है।

मैत्रेयी में शहरी सभ्यता व औपचारिकताओं का अभाव होने से शादी के पश्चात् ही पति उससे अछूतों जैसा व्यवहार करने लगता है। शारीरिक संबंध को उपदेखा करने लगता है उसे चिड़ियाघर का जानवर कहता है।

कस्तूरी कहती है कि पुरुष के कारण ही नारी की जिन्दगी नरक बनी हुई है। यह समाज की वास्तविक सच्चाई को बयां करती है कि नारी की किसी भी स्थिति के लिए पुरुष ही उत्तरदायी होता है जो उससे हर कीमत पर अनैतिक संबंध बनाना चाहता है।

पुरुष की वासनांध दृष्टि से नारी योनि ही खतरे में है। कृष्णा अग्निहोत्री इसकी ओर ध्यान आकर्षित करती हुई कहती है–लड़की का कोमल भोला बचपना भी क्या पुरुष से सहन नहीं होता। वह उसे भी अपने गन्दे सुख हेतु चीर देने को आतुर रहता है।''[47] लालकुंवर नाम के पुलिस कांस्टेबल पर कृष्णा के घर वाले भरोसा करते हैं। बच्चे भी उसे लालू मामा कहकर उसे कहानियाँ सुनाने का अनुरोध करते है। वह छोटी लड़कियों के साथ गन्दी हरकते करता है। कृष्णा अग्निहोत्री बचपन की यादे सुनाती हुई कहती है– ''लालकुंवर की नीयत ठीक नहीं थी। वह दूध पिलाकर हमें सुला देता और हमारे हाथों में अपने गुप्तांग को पकड़ा देता। एक बार अर्द्ध निद्रा में मैंने उसे झटक दिया। जब उसने शकुन्तला को दूसरे कमरे में ले जाकर कुछ करना चाहा... वह चिल्लाई। मैंने लालकुंवर को उस पर झुका देखा तो लालकुंवर के बाल पकड़कर खींचना शुरु कर दिया और चिल्लाई।''[48]

'भ' नामक उनका एक रिश्तेदार कृष्णा को तंग कर उसके साथ नाजायज रिश्ता बनाने की कोशिश करता है। वह ''एकान्त पाते ही कृष्णा को आलिंगनबद्ध करता है।'' घर–परिवार और समाज में नारी की जवानी, शरीर भोगने की कोशिश की जाती है। कृष्णा जी ने अपनी आत्मकथा में रिश्तेदारों, परिचितों, नौकरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को चित्रित करते हुए स्पष्ट किया है कि नारी की इज्जत हमेशा खतरे में होती है। ''पिता के मित्र, बेटी समान लड़की को खसोटने की मुद्रा में! कितने विश्वास से मेरे पिता मुझे उन्हें

सौप आए थे।'' कृष्णा ने बचपन से पुरुष से असुरक्षितता अनुभव की है। उसके रिश्ते के चाचा उनके साथ घिनौना कर्म करने की ताक में रहते थे।''[49]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान ऐसे पुरुष से प्रेम करने लगती है जो उम्र में उससे दुगुना है विवाहित है तथा पाँच संतानों का पिता भी है परन्तु प्रभा तन मन से उनके प्रति समर्पित हो जाती है। लेखिका का सम्पूर्ण जीवन ही शोषित रहा। कम उम्र होते हुए विवाहित पुरुष के साथ लव इन रिलेशन में सारी उम्र साथ निभाया वह भी स्वयं द्वारा आत्मनिर्भर होकर समाज में उच्च पद प्राप्त कर, फिर भी डॉ. सर्राफ इन्हें प्रेम न दे पाये। हमेशा ताने देते तथा औरों द्वारा किये गये तानों या कटाक्ष या व्यंग्य पर भी टिप्पणी नहीं करते थे। वह केवल शारीरिक संबंध को ही मानते थे।

भारतीय समाज व्यवस्था में नारी को गौण व हीन स्थान दिया जाता है। उसके श्रम, धन, शरीर, जान का स्वामी बनकर पुरुष उसका शोषण करता है। पुरुष उसे केवल भोग दासी मानकर उसे भोगने का षड़यन्त्र रचता है। पुरुष की वासना से घर, परिवार, समाज में नारी सुरक्षित नहीं है। पुरुष के अत्याचार भोगवादी मानसिकता, अत्याचारमूलक विचार का साथ देने का काम परिवार के सदस्य करते हैं।

समाज में पुरुष की वासनांध दृष्टि से नारी की अस्मत हमेशा खतरे में होती है। कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) ने इसका उदाहरण देते हुए एक प्रसंग का चित्रण किया है। उनकी बस्ती में सखाराम नाम का मजदूर रहता था। उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। वह दिहाड़ी पर मजदूरी करती थी। वह इमारत बनवाने के काम पर मजदूरी करती थी। उसका काम था सीमेन्ट ईंटे ढोकर मिस्तरी को देना। वहाँ काम करने वाला मिस्तरी बड़ा बदमाश था। वह आते–जाते सखाराम की पत्नी को छेड़ता था। एक दिन मिस्तरी ने सीमेन्ट का गोला बनाकर सखाराम की पत्नी की छाती पर मारा। सखाराम की पत्नी मिस्तरी को गालियाँ देने लगी। तब मिस्तरी और बाकी मजदूर उसकी खिल्ली उड़ाते हुए हँसने लगे। तब उसका पति सखाराम मिस्तरी का विरोध करने के

बजाय उसकी पत्नी को ही दोष देने लगा– "बाकी औरतें भी यहाँ काम करती हैं। उन्हें वह कुछ नहीं कहता है। तुम्हें ही वो क्यों छेड़ता है। तुम ही बदचलन हो।" इतना ही नहीं पत्नी की रक्षा करने में असमर्थ पति ने पत्नी को बदचलन सिद्ध कर रात भर घर के बाहर रखा। वह रात भर डर के कारण सो नहीं सकी। सवेरे उसे छोटा कपड़ा और चोली पहनने को दी। उसके माथे पर सफेद रंग की बिंदिया लगाकर और गले में चप्पलों की माला डालकर उसे गधे पर बैठाकर पूरी बस्ती में घुमाया। पति के अत्याचार और समाज से तिरस्कृत होने पर उस औरत ने कुएं में कूदकर अपनी जान दे दी। उसके माँ–बाप ने मरने के बाद भी उसका साथ न देकर कहा– "इसने हमारी नाक कटवाई है। अच्छा हुआ यह कुलटा मर गई।" उस औरत का कुछ दोष न होते हुए भी उसे पुरुष की वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ा।

कौशल्या बैसंत्री को सामाजिक अन्याय–अत्याचार का शिकार होना पड़ा है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनके अपने समाज के लोगों ने ही निर्माण की थी। उनके बिरादरी के लोगों ने ही उन्हें पढ़ने से रोका था। इतना ही बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा से काम करने वाले सहयोगियों ने जबरन यौनाचार करना चाहा था। बस्ती के लोगों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया था।

2.3 शिक्षा का बढ़ता स्तर व बढ़ता आत्मकथा लेखन

इक्कीसवीं शताब्दी इलेक्ट्रोनिक्स की सदी है। इसी इलेक्ट्रोनिक्स ने इन्टरनेट प्रदान कर एक नवीन युग की शुरूआत की तथा आज इन्टरनेट ने दुनियाँ को समेट कर एक पटल पर लाकर खड़ा कर दिया है। जिस पत्र को वांछित जगह पहुँचने में कई दिन लग जाते थे, वही पत्र आज कुछ सेकण्ड में एक देश से दूसरे देश तक पहुँच जाता है।

इन्टरनेट जागरुकता की एक सीढ़ी

इन्टरनेट के माध्यम से दूरियों में निकटता आ गई है। ज्ञान तथा खोज में नवीनता तथा सृजनता आने लगी है। शिक्षा के प्रति जागरुकता बढ़ने लगी तथा कम्प्यूटर के द्वारा शिक्षा में नये आयाम व नवाचार के प्रयोग अधिक से अधिक होने लगे हैं, जिसके कारण एक व्यक्ति के संपर्क व संबंध अन्य से होने लगे हैं। व्यक्ति दूर रहते हुए तथा अनजान होते हुए भी इन्टरनेट के माध्यम से समीप आने लगे हैं। रिश्तों में एक नवीन युग की शुरुआत हुई है। जो बात तथा भावनाएँ एक स्त्री व्यक्त नहीं कर पाती थी, उसे कम्प्यूटर द्वारा एक आधार प्राप्त हुआ। वह अपनी भावनाओं, जिज्ञासाओं आदि को व्यक्त करने लगी तथा इन्टरनेट, मीडिया की भूमिका के द्वारा उसकी भावनाएँ अन्यों तक आसानी से पहुँचने लगी तो उसे उसका सकारात्मक पहलू भी प्राप्त होने लगा। समाज द्वारा कहीं न कहीं उसे भी संबल प्राप्त हुआ।

शिक्षा के प्रचार–प्रसार से बालिकाएं उच्च पदों के क्षेत्र में अपना मुकाम हासिल करने लगी तथा उच्च पदों पर आसीन होकर उसे सुशोभित करने लगी। समाज में एक गौरवशाली परम्पराओं का निर्वाह स्त्री द्वारा किया जाना मील का पत्थर साबित हुआ। सर्वप्रथम जो स्त्रियां उच्च पदों पर पहुँची, उनका जीवन अन्यों के लिए एक आदर्श बना तथा उनके द्वारा लिखे गये लेख, संवाद, पत्र, पुस्तकें, आत्मकथाएं जीवन को एक आशा, एक नवीनता प्रदान करने लगे।

नारी अपनी भावनाओं को चित्रों के माध्यम से उकेरने लगी। कविताओं के माध्यम से गुनगुनाने लगी। कहानियों के माध्यम से जीवन में अमिट छाप छोड़ने लगी। लेखिका अन्य के जीवन में रोशनी की किरण बनकर उजाला करने लगी। अपनी आत्मकथा के अनसुलझे रहस्यों तथा जीवन के उतार–चढ़ाव को समाज के समक्ष लेखन के माध्यम से प्रस्तुत किया जाने लगा। अपने आत्मविश्वास की डोर को मजबूत कर अपने लक्ष्यों की ओर पुरुष के कदमों के साथ वह आगे बढ़ने लगी। उसके कदमों की रफ्तार तेज और तेज होने लगी तथा अधिकारों की रक्षा, स्वाभिमान को प्राप्त करने की कोशिश आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत की जाने लगी।

समाज में बदलाव की लहर पैदा होने लगी कि नारी के बिना यह संसार अधूरा है तथा एक परिवार तथा एक पुरुष नारी के सानिध्य के द्वारा ही पूर्णता प्राप्त करता है। उसे संविधान तथा समाज द्वारा अधिकार भी प्रदान किये जाने लगे, लेकिन अभी भी समाज में जो संकीर्ण सोच, विचारधारा तथा मानसिकता बनी हुई है, उसे निकालने व परिवर्तन करने में समय की आवश्यकता महसूस होती है, क्योंकि पुरुष प्रधान समाज की जड़ें गहरी तथा समानता के अधिकार व नारी का मान–सम्मान व प्रतिष्ठा प्रदान करना वास्तविक रूप में कठिन कार्य है।

समाज द्वारा यह स्वीकार्य नहीं कि नारी अपने आप में पूर्ण है तथा पुरुष के समान सभी कार्य करने में सक्षम है। पुरुष अपने गुरूर तथा पुरुषत्व पर इतना अभिमान करता है कि उसे स्त्री एक तुच्छ वस्तु के समान प्रतीत होती है। जब तक समाज की मानसिकता में बदलाव नहीं आयेगा, नारी को उसका सम्मान व पद प्राप्त नहीं हो सकता।

वर्तमान समय में शिक्षा तथा समाज में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों से बदलाव तो आ रहा है तथा मानसिकता में परिवर्तन भी दिखाई दे रहा है, लेकिन यह परिवर्तन एक बेटी तथा बहू में बहुत ज्यादा हैं। जिस दिन बहू, बेटी बन जायेगी। समाज में एक नवीन युग की शुरूआत हो जायेगी।

नारी हौसले में बुलंदी

वर्तमान में नारी द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के कारण तथा कम्प्यूटर व इन्टरनेट के माध्यम से वह अपने अन्तर्मन की भावनाओं को उजागर करने लगी है। मीडिया व प्रिंट मीडिया ने जानकारी के क्षेत्र का विस्तार कर दिया है तथा समाचारों द्वारा किसी भी प्रकार का लेख या अन्य कोई जानकारी एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत ही आसानी से तथा कुछ ही समय में पहुँच जाती है। अतः इस प्रकार के इलेक्ट्रोनिक्स ने भावनाओं व रुचियों तथा महत्वाकांक्षाओं को नयी उड़ान के लिए नये आकाश का चुनाव किया हैं। जहाँ स्वतंत्रता है अपने

विचारों को अभिव्यक्त करने की। लोगों से सीधा सम्पर्क कर उनसे समीक्षा प्राप्त करने की। इससे एक संबल की प्राप्ति होती है, जिससे व्यक्ति नवीन ऊँचाईयों को छूने की कोशिश करने लगता है और धीरे–धीरे उन्हें प्राप्त भी करता जाता है।

अक्सर यह देखा जाता है कि नारी जब अपने यौवन पर होती है, तो उसे विवाह के बंधन में बांध दिया जाता है, उसके पश्चात् परिवार व पति तथा बच्चों के मध्य ही उसकी जिन्दगी सिमटकर रह जाती है। उसे अपनी इच्छाओं व भावनाओं का दमन करना पड़ता है। परन्तु कुछ नारियों द्वारा इसे भी तोड़ा गया तथा जीवन के एक काल के पश्चात् उन्होंने अपने समय को एक नयी दिशा की ओर मोड़ कर अपनी भावनाओं को पुनः जागृत कर अपने सपनों को पूर्ण कर दिखाया तथा आत्मकथाओं में भी इस बात का जिक्र आता है कि एक स्त्री ने जीवन के एक पड़ाव के पश्चात् एक नवीन शुरूआत की और वह सफलता की सीढ़ियों पर चढ़ती चली गई।

नारी का यह गुण है कि उसे अपनत्व, प्यार, स्नेह की आवश्यकता होती है। प्रेमवश अभिभूत होकर एक स्त्री कुछ भी करने को तैयार हो जाती है। उसमें वह ताकत व श्रद्धा है, जो पुरुष में कभी भी नहीं हो सकती। उसके हौसले जब एक बार बुलंद हो जाते हैं, तो लक्ष्य की प्राप्ति के पश्चात् ही रुकते हैं।

जीवन के क्षणों को रसायुक्त कर, सौदर्यंपूर्वक उनका वर्णन करना, मार्मिक चित्रण करना नारी का स्वभाव है अतः उसकी आत्मकथाओं में वास्तविकता का अंश अधिक होता है। नारी का यह भी स्वभाव है कि उसे जो भी अच्छा मिलता है उसे हमेशा बाँटती है, चाहे दुःख हो या सुख, दुःख को तो वह स्वयं सहन भी कर जाती है, परंतु सुख को वह हमेशा फैलाती हैं।

जीवन में प्राप्त संघर्षों को आत्मकथा के माध्यम से समाज के समक्ष लाने लगती है तथा समाज भी अब स्त्री को स्वीकार करने लगा है कि एक नारी या

स्त्री समाज का अभिन्न अंग है तथा उसके बिना समाज का उत्थान व विकास संभव नहीं है।

एक नारी की भावनाएं जब अन्य नारियों द्वारा दृष्टिगोचर होती हैं, तो उनमें भी आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की लहर दौड़ती है, जो उन्हें भी प्रेरित करती है कि समाज द्वारा किये गये अत्याचारों, तिरस्कार आदि को समाज के सामने लाना होगा। जिससे अन्य स्त्रियों व नारी के आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा की रक्षा की जा सके। उनके अधिकार उन्हें प्राप्त हो सकें। ''कस्तूरी कुण्डल बसै'' में कस्तूरी का कम उम्र में ही दुःख, दर्द सहना तथा जीवन की परिस्थितियों से उसने लड़ना सीख लिया। कस्तूरी ससुर, दादाजी से कहती है कि मैं अपनी बेटी को पढ़ा–लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों से बदला ले सके। कस्तूरी को शिक्षा से होने वाले परिवर्तन समझ में आ गये थे अतः वह सभी को शिक्षित होने की सलाह देती।

कस्तूरी यह मानती है कि एक नारी का केवल यह दायित्व या कर्तव्य नहीं है कि शादी करके बच्चे पैदा कर परिवार को संभाले इससे आगे भी समाज के प्रति उन्नति व स्वयं के विकास, आत्मनिर्भरता के लिए उसे आगे बढ़ना चाहिए।

उनके अनुसार एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित तथा आत्मनिर्भर हो। पुरुष उसे तभी महत्व देता है जब नारी स्वयं के पैरों पर खड़ी हो तथा पुरुष लाठी का सहारे न बनी हो। मैत्रेयी की शादी के पश्चात् अंतरंग जिन्दगी की नीरसता उन्हें अखरने लगी।

लेखिका मानती है कि एक नारी को पढ़ा–लिखा होने के साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी आना चाहिए तथा उसमें आत्मनिर्भरता भी होनी चाहिए जिससे जीवन के निर्णय वह स्वयं ले सके। लेखिका मानती है कि पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए विकास करना जीवन की सफलता है, मनमानी करना नहीं।

'एक कहानी यह भी' में जब मन्नू जी बिना किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन के कहानी लिखती है और वह छप जाती है तो लेखिका को अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनता हुआ वजूद नजर आता है। यही साहित्य व लेखन से प्रेम और कार्यक्षेत्र की शुरूआत ही उन्हें अन्त तक एक आत्मनिर्भर लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करती है। साहित्य व लेखन का जो स्वरूप उनका नजर आता है वह स्वयं केवल उनका और उनका ही है। उस पर पति के लेखन व साहित्य का प्रभाव जरूर पड़ा। उनकी सफलता उनकी स्वयं की ही थी। जीवन के वास्तविक अनुभवों तथा किरदारों को ही उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया। लेखिका के अनुसार एक नारी को जीवन में कुछ पाने का आत्मविश्वास, स्वयं के लिए विशिष्ट पहचान व आत्मनिर्भर होने के लिए केवल शिक्षा ही एक मार्ग है।

2.4 सामाजिक विद्रोह और महिला आत्मकथा लेखन

इक्कीसवीं सदी महिलाओं के लिए उत्थान की नींव कही जा सकती है क्योंकि इसी सदी में इन्टरनेट तथा कम्प्यूटर के कारण होने वाली घटनाओं को सार्वजनिक करना आसान हो गया तथा उनकी पहुँच आम जनता तक हो गई। वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा बालिका शिक्षा के प्रति सोच व जागरुकता ने नारी की शक्ति में एक नवीन संचार किया है। वह होने वाले अत्याचारों को अब आसानी से सहन नहीं करना चाहती, अब वह स्वयं को सक्षम महसूस करने लगी है। नारी के साथ होने वाली घटनाओं ने परिवारों में भी एक नया संचार स्थापित किया है एवं इन होने वाली घटनाओं के प्रति जनता में आक्रोश तथा जागरुकता दोनों उत्पन्न होने लगे हैं। लड़कियों के साथ होने वाली छेड़छाड़, हरकतें, अत्याचार, बलात्कार जैसी घटनाओं ने समाज में क्रांति का सूत्रपात किया तथा लड़कियाँ व नारी जाति इनके प्रति सजग व सतर्क होने लगी। अपने ऊपर होने वाली घटनाओं चाहे वह कार्यस्थल हो या सार्वजनिक, नारी उनका विरोध करने लगी तथा उसके परिणामस्वरूप पुरुष वर्ग में एक प्रकार डर सा पैदा हुआ है। आज एक पुरुष स्त्री के साथ होने वाले

अत्याचार व प्रताड़ना के दण्ड के प्रति जागृत है तथा उसे आभास होता है कि उसे भविष्य में दण्ड का भागी होना पड़ सकता है। अतः नारी के प्रति होने वाले अत्याचारों में इस प्रकार कमी आई है, लेकिन स्वछंद विचारधारा तथा पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में जब नारी अपनी गरिमा का उल्लंधन करने लगी है तथा पहनावे से या अन्य प्रकार से पुरुष को आकर्षित करना चाहती है या अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए पुरुष का सानिध्य प्राप्त करती है या अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुष का उपयोग करती है, तो कहीं ना कहीं उसे प्रताड़ना, तिरस्कार, अपमान आदि भी सहना पड़ता है।

आज की नारी स्वंतंत्र रहकर अपना जीवन जीना चाहती है। उसे बंधन में बंधना पसंद नहीं आ रहा हैं। उसके विचारों में एक अजीब सा उन्माद नजर आता है। पहनावे से प्रतीत होता है कि नारी अपने ही शरीर का प्रदर्शन करना चाह रही है। मीडिया ने तथा इन्टरनेट ने बालक–बालिकाओं की सोच का समय से पहले या उम्र से पहले ही जवान सा कर देती है। फिल्मों में दिखाये जाने वाले दृश्य को वास्तविकता में करने की उन्मादता उन्हें अपराध के गर्त की ओर ले जाती है। किशोरावस्था की इस अवस्था में जीवन की सच्चाई शारीरिक आकर्षण उन्हें अपराधबोध कराता है। परन्तु जब तक उन्हें जीवन की वास्तविकता का अहसास होता है, तब तक एक उम्र का पड़ाव वह पार कर चुके होते हैं। इस प्रकार से वर्तमान समाज में असामाजिक संबंध निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। जिसका परिणाम नारी को ही भुगतना पड़ता है।

समाज में स्थापित कई प्रकार की संस्थाएं बालिकाओं को विशेष सुविधाएं प्रदान करने लगी हैं, उनकी सुरक्षा की व्यवस्थाएं की जाने लगी हैं तथा उन्हें आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश तेजी से आगे बढ़ने लगी है। शारीरिक रूप से असक्षम समझी जाने वाली नारी कुश्ती तक में ओलम्पिक पदक प्राप्त करने लगी है तथा पुरुष के वर्चस्व को चुनौती प्रदान कर रही है।

समाज में जैसे–जैसे शिक्षा का विस्तार हुआ है तथा नारी को परिवार के द्वारा स्वतत्रंता प्रदान की जाने लगी है, उसने भी कहीं न कहीं उस स्वतंत्रता

का गलत उपयोग भी किया है। वह स्वछंद जीवन जीने के अधिकार का उपयोग निजी तौर पर करने लगी है तथा जीवन में कई प्रकार की घटनाएं भी उसके साथ घटित होने लगी है। जिसका विरोध करने में वह असक्षम रही है।

हमारे समाज में अभी भी पुरुष की मानसिकता विकसित नहीं हो पाई है, इसलिए वह नारी के साथ शारीरिक शोषण करने के लिए तत्पर रहता है। किशोरावस्था के बालक–बालिकाओं में आकर्षण के कारण शारीरिक शोषण की घटनाएं ज्यादा बढ़ रही हैं, जिसका विरोध तथा बचाव नारी के स्वयं के हाथ में ज्यादा है।

समाज में मान–प्रतिष्ठा व परिवार की सुरक्षा आदि कारणों से भी कई बार नारी अपने अस्तित्व को बचाने के लिए सर्वस्व अर्पण करती भी रही है। लाज–लज्जा व शर्म के कारण भी तथा पारिवारिक संबंधों के कारण भी वह अपराधग्रस्त रही हैं और हो रही है। इस प्रकार के कारणों से भी वह अत्याचार आदि को सहन व स्वीकार भी करती है तथा मूकबधिर की भांति जीवनपर्यन्त कष्टों का भार अपने ऊपर लादे रहती है।

परिवार की खुशी के लिए वह सब कुछ बड़ी ही आसानी से सहन कर जाती है। सहनशील, कष्टों को सहन करने वाली नारी अपने परिवार व बच्चों के भविष्य के लिए अपने तिरस्कार, आत्मसम्मान आदि को खोकर भी जीवन के दीप प्रज्वलित कर चलती रहती है। वह स्वयं अंधेरे को अपनाकर दूसरों के जीवन में रोशनी लाती है। स्त्री द्वारा समाज में कई प्रकार के कष्ट, प्रताड़नाएं सहन करने के बावजूद समाज उसे कई प्रकार से अस्वीकार कर देता है। उसके साथ बलात्कार होने के बावजूद उसे ही दोषी माना जाता है।

लेकिन शिक्षा के कारण अब जागरुकता होने लगी है तथा नारी को उसके अधिकार प्रदान किये जाने लगे हैं। वह एक बेटे की भांति परिवार का भरण–पोषण भी करती है तथा समाज में मान–प्रतिष्ठा भी बढ़ाती है।

समाज में ऐसे कई उदाहरण हमें देखने को मिल जाते हैं, जहाँ नारी के द्वारा परिवार को संबल प्रदान किया गया तथा परिवार के दायित्वों व कर्तव्यों को एक बेटे से भी ज्यादा अपनाया। आज कई बेटियाँ रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़ते हुए पिता का अंतिम संस्कार तक भी कर रही है तथा समाज भी बेटियों को मान दे रहा है। आज बेटी एक परिवार को ही नहीं बल्कि दो परिवारों के साथ समाज की मान–मर्यादा का भी निर्वाह करती है।

आज स्त्री सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान कार्य कर रही है तथा पुरुष के पुरुषत्व को चुनौती दे रही है। समाजसेवी संस्थाओं, न्यायालय तथा संस्थाओं द्वारा उन्हें जागृत किया जा रहा है तथा समाज द्वारा किये गये अत्याचारों को समाज के पटल पर लाकर उन्हें उजागर करने की प्रेरणा प्रदान की जा रही है। जिससे समाज में उन स्त्रियों को अच्छी शिक्षा प्राप्त हो सके, वह अपने दम पर अपना जीवन यापन कर सम्मान से जी सके। वह अपनी प्रतिभा को विभिन्न आयामों के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत करने लगी है। समाज द्वारा प्राप्त विद्रोह तथा परिस्थितिवश होने वाली घटनाओं को, भावनाओं को अपने मन की गहराइयों में होने वाला दर्द, पीड़ा, कष्ट को आपबीती के रूप में लेखन के द्वारा प्रस्तुत करने लगी है।

सामाजिक विद्रोह को कुचलने तथा समाज की संकीर्ण मानसिकता को परिवर्तित करने के लिए उसने आत्मकथा को एक हथियार का रूप प्रदान किया है। जो समाज के ऊपर एक मेघ के रूप में अवस्थित होकर समाज को झझोड़ता रहता है।

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं को समाज और परिवार में लेखिकाएं मनुष्य की श्रेणी में मानकर चल रही है। चेतना होने का अर्थ ही उत्तरदायी होना है। किसी बाहरी सत्ता के प्रति नहीं, बल्कि अपनी–अपनी अस्मिता के प्रति उत्तरदायी। अपनी चेतना के प्रति उत्तरदायी होना, समाज की विकास प्रक्रिया में अपनी भूमिका को रेखांकित करने का

प्रयास है। यही आज की नारी की मांग भी है और नारीवादी आंदोलनों का आधार भी।

किसी भी सामाजिक व्यवस्था की एक कसौटी यह भी होती है कि इसके अंतर्गत मनुष्य के बहुआयामी विकास को किस सीमा तक उचित वातावरण एवं सुविधाएं मिलती हैं, जो व्यवस्था मनुष्य के विकास को या उसकी विकास की संभावनाओं को किसी भी धरातल पर रोकती है, वह सर्वश्रेष्ठ स्तर है उसमें जीवन और चेतना की अद्यतन सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति हुई है तो यह तय है कि भविष्य में इसके गुणात्मक विकास की जवाबदेही भी मनुष्य मात्र की ही बनती है।

मनुष्य (नारी) के जैवविकास की प्रक्रिया का एक स्तर मात्र है, लेकिन इसके साथ यह अवश्य है कि अगला स्तर इसी स्तर का संशोधित संस्करण होगा या होता है। इसका अर्थ यही है कि वह एक विकासशील चेतना है, क्योंकि चेतना जीवन का ही गुणोत्कर्ष है या कहें कि समस्त बौद्धिक, मानसिक समझ का अलग नाम है। जीवन की विकास प्रक्रिया चेतना की विकास प्रक्रिया से संबद्ध है, खास तौर से मनुष्य मात्र के संबद्ध में। चित तत्व के बगैर ब्रह्मा भी पूर्ण नहीं। चेतना स्वयं को जानना भी है। अपने आपको जान लेने से ही बुद्धिवाद की शुरूआत हुई। अपने को जान लेना ही वेदांत में मोक्ष की अवस्था है, ब्रह्मा को जान लेना यह अविद्या के नाम से संभव है अविद्या के अभाव की स्थिति पूर्ण चैतन्य की स्थिति है। कहना न होगा कि आत्मकथा लेखिकाएं विश्व की आबादी का अर्द्धांश यानि नारी संसार अपने को जानने की दिशा में अग्रसर हुआ है। उसके अब तक के मोहपाश में बने रहने की अविद्या तकनीकी प्रगति, शैक्षिक वातावरण एवं अन्याय विकासोपक्रम द्वारा नष्ट हुई है। चेतना संपन्न होने पर नारी अपने विरूद्ध रचे गये मिथकों का विरोध करती है।

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाकारों को अब पुरुष की महानता का मिथ स्वीकार नहीं है। परमपूज्य और पवित्र जिन ग्रंथों ने नारी को आदर्श के साँचे में फिट कर दिया था, आज वह उनसे बाहर निकलने के लिए तीव्र

प्रयास कर रही है। आज उसके स्वरों में पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की कामना है। वर्तमान समय में नारी पुरुष वर्ग से प्रतिस्पर्धा न कर केवल उसके समकक्ष एक मनुष्य होने के नाते प्राप्त होने वाले अधिकारों की मांग कर रही हैं। वह पुरुष के अस्तित्व से कोई इंकार न कर एक सह नागरिक की तरह अपनी पहचान स्थापित करना चाह रही है। इसके लिए उसका सारा जोर अब तक प्रयुक्त मिथकों से अस्वीकार और स्वतंत्र इंसान के रूप में अपनी स्वीकृति का है। नारी चेतना आज विभिन्न आयामों में हमारे समक्ष है। सेक्स, प्रजनन में अपनी मर्जी, आर्थिक निर्भरता और सत्ता में हिस्सेदारी जागृत नारी चेतना के चंद उदाहरण है।

नारी को शक्तिस्वरूपा, आद्यशक्ति के रूप में स्थापित करने वाले मिथक विरोधाभास से भरे हैं। देवी दुर्गा की उत्पत्ति भी समस्त देवताओं के तेज से उनका हित साधने के लिए होती है यथा–

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेव नारीरजम्।
एकस्थं तद्–भून्नारी व्याप्त लोकत्रयं त्विशा।।

स्त्रियों को सीता–सावित्री के जिस मिथक को स्वीकार करने को कहा जाता है। वे मिथक भी भ्रांतिमान है। सीता ने परम्परा को तोड़ घर की चौखट लाँघी पुत्रों का अकेले पालन–पोषण किया। सावित्री ने एक पर पुरुष से जिरह करके, सारी नियमावलियों को पीछे छोड़ दिया। उन्हें मौन, मूक आज्ञाकारिता के साँचे में फिट करना कहाँ तक उचित है।

कभी यह नहीं कहा जाता कि गार्गी, ज्वाला, घोषा, मैत्रेयी आदि से घर भरे। कुछ आदर्श मिथकीय देवी चरित्रों की राह पर चलने की सलाह संहिताएं देती रहीं है जिन्हें भारत की हर स्त्री के लिए रोल मॉडल बनाया जाता रहा है। देवी सती और पतिव्रता गृहिणी का आदर्श धीरे–धीरे सामूहिक अवचेतन में बदल गया।

सामूहिक अवचेतन का सिद्धांत फ्रायड के शिष्य युंग द्वारा 1924 में दिया गया। फ्रायड ने अनुसार व्यक्ति और सेक्स ही सब कुछ हैं। इस पर ज्यादा ही जोर दिया था। जबकि युंग की स्थापना थी कि सेक्स ही सब कुछ नहीं होता और वैयक्तिक अचेतन के साथ सामूहिक अवचेतन भी होता है जैसे एथानिक समाजों में तो सबसे अधिक शक्तिशाली होता है। अभी कुछ वर्षों पहले 'एंथ्रोपालाजिकल सर्वे ऑफ इंडिया' ने 'भारत के लोग' शीर्षक से जो सर्वेक्षण किया है उससे भारतीय समाज की सामुदायिक जीवन में इस सामूहिक अवचेतन के प्रभावों को देखा जा सकता है। युंग और उनके बाद के मनोवैज्ञानिकों का यह विश्लेषण है कि गर्भाधान के समय जिन गुणसूत्रों से भ्रूण बनता है, उनमें माता–पिता की पिछली सात पीढ़ियों की मिली जुली विशेषताएँ होती है। उसी प्रकार मस्तिष्क में भी एक सामूहिक अवचेतन होती है जो पिछली कई पीढ़ियों के सामुदायिक जीवन की विशेषताओं से बनता है।

यही वह प्रस्थान बिन्दु है जहाँ से भारतीय स्त्रियों की पुरुष निर्भरता को समझा जा सकता है। कुछ परम्पराएं सामूहिक अवचेतन के रूप में इस तरह बस गई है कि स्त्री का उससे बाहर आना बहुत दुष्कर है ये परम्पराएँ है– प्रेम में स्त्री का पहल करना 'चरित्रहीनता' का प्रमाण है। सहनशीलता, लज्जा, कोमलता और निर्भरता औरत का स्वभाव है। मर्यादा पति की सेवा, घर और बच्चों का पालन–पोषण उसका दायित्व है। यदि भार्या अपवित्र है तो उसके लिए घोर नरक का द्वार है। संभवत, इसीलिए सीमोन ने कहा था– 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है।'

'सीमोन द बोउजर द सैकंड सेक्स' (1949) नारी केंद्रित सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का संतुलित जवाब देती है। सीमोन स्त्री–पुरुष को वर्गीकृत करके पहले जैविक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक राष्ट्रीय क्षेत्रों में दोनों के मध्य द्वंद्व और द्वंद्व की परिणति को विभिन्न संदर्भों में विश्लेषित करती है–

''स्त्री कहीं झुंड बनाकर नहीं रहती। वह पूरी मानवता का आधा हिस्सा होते हुए भी पूरी एक जाति नहीं। गुलाम अपनी गुलामी से परिचित है और

काला आदमी अपने रंग से, पर स्त्री घरों में अलग–अलग वर्गों एवं भिन्न–भिन्न जातियों में बिखरी हुई है। उसमें क्रांति की चेतना नहीं, क्योंकि अपनी स्थिति के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। वह पुरुष के साथ सहअपराधिनी है। अतः समाजवाद की स्थापना मात्र से स्त्री मुक्त नहीं हो जाएगी। समाजवाद भी पुरुष की सर्वोपरता की ही विजय बन जाएगा।''

स्त्री की स्थिति अधीनस्थता की है। यह बात सीमोन बड़े स्पष्ट शब्दों में स्वीकारती है। यही भाव भारतीय समाज की हर स्त्री में कूट–कूट कर भरा है। नारी का गृहस्थ जीवन व बाहरी जीवन में अपनी अहम भूमिका रही है जिसमें वह पूर्ण नारी की भूमिका से हटकर हैं जहाँ संस्कृति और सभ्यता को आज आधुनिकीकरण के दौर में बतौर पुरुष के साथ कदम से कदम बढ़ा रही है। वह भूमिका में अपना वर्चस्व कायम कर रही है। चाहे वो गीत–संगीत हो या शिक्षा व आर्थिक क्षेत्र में भी भारतीय नारी का कार्य उल्लेखनीय है। आज की स्थिति पूर्व की स्थिति से भिन्न है।

यह नारी चेतना ही है कि नारी की निंद्रा आज टूट रही है और वह इस दुश्चक्र से बाहर आ रही है आज स्त्री अपने विरूद्ध रचे गये मिथकों को तोड़ रही है।

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं के सामाजिक विद्रोह का सबसे बड़ा कारण दहेज है। इस सामाजिक कोढ़ से पनपी विसंगतियों पर आत्मकथा लेखिकाओं के उदगार इस प्रकार स्पष्ट हुए हैं–

दहेज प्रथा की समस्या

दहेज का अर्थ है जो सम्पत्ति, विवाह के समय वधू के परिवार की तरफ से वर को दी जाती है। दहेज को उर्दू में 'जहेज' कहते हैं। यूरोप, एशिया, अफ्रीका और दुनिया के अन्य भागों में दहेज प्रथा का लंबा इतिहास है। भारत में इसे दहेज, हुंड या वर दक्षिणा के नाम से भी जाना जाता है तथा वधू के परिवार द्वारा नकद या वस्तुओं के रूप में यह वर के परिवार को वधू के साथ

दिया जाता है। संभवतः इस प्रथा को उन समाजों में महत्त्व प्राप्त हुआ होगा, जहाँ छोटी उम्र में विवाह प्रचलित रहे होंगे।

दहेज का उद्देश्य

दहेज का उद्देश्य नवविवाहित पुरुष को गृहस्थी जमाने में मदद करना था, जो अन्य आर्थिक संसाधनों के अभाव में शायद वह स्वयं नहीं कर सकता था। कुछ समाजों में दहेज का एक अन्य उद्‍देश्य भी था, पति की अकस्मात् मृत्यु होने पर पत्नी को जीवन निभाई में सहायता देना। दहेज के पीछे एक अवधारणा यह भी रही होगी कि पति, विवाह के साथ आई जिम्मेदारी का निर्वाह ठीक तरह से कर सके। वर्तमान युग में भी दहेज नवविवाहितों के जीवन–निर्वाह में मदद के उद्देश्य से ही दिया जाता है।

वधू मूल्य

एक प्रतिरोधी प्रथा है 'वधू–मूल्य', वधू के परिवार द्वारा उसके बदले बहुमूल्य नकद या वस्तुओं की प्राप्ति। अतः वधू–मूल्य एक प्रकार का विनियम है। दहेज और वधू–मूल्य के बारे में एक विशिष्ट तथ्य यह है कि दहेज ऊँची जतियों में प्रचलित है, जबकि वधू–मूल्य प्रधानतः निम्न जातियों और जनजातियों (आदिवासियों) में प्रचलित है। वधू–मूल्य के बारे में यह तर्क है कि जाति व्यवस्था में निम्न जातियां (वैश्य और शूद्र) अधिकांश शारीरिक एवं तुच्छ समझे जाने वाले कार्य करती हैं। परिवार में आने वाली एक वधू का अर्थ है, आय एवं कार्य के लिए अतिरिक्त श्रम, जबकि दुल्हन के परिवार में एक कमाने वाले सदस्य की कमी हो जाती है। इसलिए वधू–मूल्य द्वारा इसकी क्षतिपूर्ति की जाती है।

दहेज के सामाजिक प्रभाव

दहेज प्रथा के अनेक सामाजिक–आर्थिक प्रभाव हैं तथा इसके कई सुनिश्चित विपरीत परिणाम हैं। यद्यपि दहेज प्रथा दुनिया के अनेक देशों में प्रचलित है, परंतु भारत में इसने संकटपूर्ण स्थितियाँ निर्मित कर दी है। ढिंढोरा

पीटा जाता है कि दहेज लेना या देना सामाजित अपराध है और कानून द्वारा इसे प्रतिबंधित भी किया गया हैं, लेकिन यह बुराई जारी है। समाज के पढ़े–लिखे वर्ग में भी विवाह तय करते समय इसे चर्चा का आवश्यक अंग बनाया जाता है। विवाह के समय दहेज की वस्तुओं को सामाजिक हैसियत के रूप में प्रदर्शित किया जाता है। वर–वधू के परिवारों के बीच कई बार दहेज को लेकर सहमति न होने पर रिश्ते टूट जाते हैं। कस्तूरी दहेज न देने की कसम से बंधी होने पर समाज व परिवार का विरोध करती है तथा किसी की भी बात नहीं सुनती। शादी के ऐसे समय पर मैत्रेयी को उसकी माँ उसको थप्पड़ तक मार देती है ऐसे समय पर मैत्रेयी को माँ सबसे बड़ी दुश्मन लगती है। शादी के पश्चात् पति के द्वारा उसका निरादर व तिरस्कार करने पर एक दिन वह उसका विरोध प्रदर्शन भी करती है क्योंकि जिस विवाह सुख की उसने कल्पना की थी। पति उसे उससे वंचित कर रहा था जिसके कारण पति–पत्नी के रिश्तों में टूटने की सी स्थिति बन गयी थी।

दहेज से हानि

दहेज प्रथा के वीभत्स प्रमाण हैं, प्रताड़नाओं की घटनाएँ, जो अंततः नवविवाहित वधुओं की 'दहेज हत्या' के रूप में परिणत होती हैं। लड़कियों के साथ बुरे बर्ताव, भेदभाव तथा कन्या भ्रूण और कन्या शिशुओं की हत्या जैसे जघन्य कृत्यों के रूप में सामने आने वाले इसके दुष्परिणाम दहेज प्रथा की उस क्रूरता को प्रदर्शित करते हैं, जिसका सामना अब भी करना पड़ रहा है।

संवैधानिक अधिकारों में भिन्न कानूनों के द्वारा नारियों को पुरुषों के समान अधिकार मिलने से उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ। नारियों के विवाह–विच्छेद होने पर परिवार की सम्पत्ति में पुरुषों के समान अधिकार दिये गये। दहेज का कानूनी प्रतिबंध लगा तथा उन व्यक्तियों के लिये कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई, जो दहेज की मांग को लेकर नारियों का उत्पीड़न करते हैं। अब सरकार लिविंग रिलेशन पर विचार कर रही हैं। संयुक्त परिवारों के विघटन होने से जैसे–जैसे एकाकी परिवार की संख्या बढ़ी इनमें न केवल

नारियों को सम्मानित स्थान मिलने लगा, बल्कि लड़कियों की शिक्षा को भी एक प्रमुख आवश्यकता के रूप में देखा जाने लगा।

आज हर समाज में दहेज प्रथा एक समस्या बन गई है। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बहुत से परिवारों जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है उनके लिए दहेज प्रथा एक समस्या है। आज भी ग्रामीण परिवार कृषि एवं मजदूरी पर निर्भर हैं जिस कारण से शादी करते समय उन्हें बहुत सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो उनके लिए एक प्रकार अभिशाप है। दहेज प्रथा वास्तव में हमारे समाज के लिए एक बीमारी है जिसने बहुत से परिवारों को नष्ट कर दिया है।

प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में लड़की जन्म का विरोध करने वालों के प्रति आक्रोश प्रकट करती है। वह सामाजिक और पारिवारिक बन्धनों को तोड़कर नारी को सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए अधिकार देना चाहती है। वह हिन्दी भाषिक प्रदेश की नारी की मुक्ति की आवश्यकता स्पष्ट करती हुई कहती है–

''मैं चाहती हूँ कि निचली पायदान की ये लड़कियाँ
रूढ़ सामाजिक बन्धनों को तोड़े
और उसी भाँति आगे बढ़े
जैसा कि बंगाल का स्त्री समाज
और दक्षिण भारत का स्त्री समाज आगे बढ़ रहा है।''[50]

आज समाज में स्त्री दहेज के प्रति जागरुकता, सुरक्षा को लेकर सजग है तथा होने वाले अत्याचारों का विरोध प्रकट करती है, जो आत्मकथा के रूप में परिदृष्टित होता है। समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त नारियों द्वारा इस क्षेत्र में अब ज्यादा बढ़ोतरी देखी जा रही है, जिससे इस क्षेत्र में आने वाली महिलाओं में जागरुकता प्राप्त हो सके तथा वह समाज के प्रति सजग बन सकें। अपने आत्मसम्मान की रक्षा कर सकें।''[51]

स्त्री की स्थिति अधीनस्थता की है। यह बात सीमोन बड़े स्पष्ट शब्दों में स्वीकारती है। यही भाव भारतीय समाज की हर स्त्री में कूट–कूट कर भरा है।

2.5 निष्कर्ष

आत्मकथाओं के कथ्य से प्रतीत होता है कि समाज में पुरुष अहम व अभिमान में ही जीवन जीता है। उसका अभिमान व अहम स्त्री के ऊपर अपना हक समझता है। वह स्त्री को मात्र खिलौना या उपभोग की वस्तु मानता है। वह यह नहीं मानता है कि एक नारी भी एक मानव है उसकी अपनी मान–मर्यादा, भावनाएं होती है तथा वह उसकी प्रेमिका, अर्द्धांगिनी, पत्नी अथवा अन्य रूपों में, हमेशा हर परिस्थिति में पुरुष का साथ निभाती है।

परन्तु मैंने यह महसूस किया है कि एक पुरुष अधिकांश नारी के प्रति मानसिक रूप से विकृति लिए हुए होता है तथा वह उसे हर प्रकार से प्रताड़ित या अत्याचार करते हुए सन्तुष्टि प्राप्त करने की कोशिश करता है। उसे हर नारी एक समान ही प्रतीत होती है, घर–परिवार बनाने तथा भरण–पोषण के उत्तरदायित्व से वह हमेशा उन्मुक्त रहना चाहता है। अपने शरीर व मन के कुंठित व घृणित विचारों को वह साकार करने की कोशिश करता है। स्वयं में कमियां होते हुए भी वह हमेशा नारी को दोषी मानता है, उसे ही उत्तरदायी ठहराता है। स्वयं दुश्चरित्र होते हुए स्त्री को दुश्चरित्र बनाने व दोषी ठहराने की पूर्ण कोशिश करता है। अतः पुरुष भावनाओं रहित, कठोर प्रतिमानों का पुतला मात्र है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 57
2. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 38
3. वही, पृ. 13
4. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 54
5. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 29
6. वही, पृ. 45
7. वही, पृ. 37
8. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20
9. वही, पृ. 20–21
10. एक अनपढ़ कहानी– सुशीला राय, पृ. 65
11. गुड़िया भीतर गुड़िया– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 14
12. वही, पृ. 14
13. वही, पृ. 15
14. वही
15. वही
16. कस्तूरी कुण्डल बसै– मेत्रैयी पुष्पा, पृ. 20
17. वही, पृ. 23
18. वही, पृ. 20
19. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 33
20. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 16
21. वही, पृ. 18–19
22. दोहरा अभिशाप–कौसल्या बैसंत्री पृ. 101–102
23. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 61
24. आदमी की निगाह में औरत– राजेन्द्र यादव, पृ. 13
25. वही, पृ. 15

26. वही, पृ. 16
27. वही, पृ. 19
28. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 6
29. वही, पृ. 73
30. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 18
31. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20–21
32. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 7
33. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 19
34. लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. 9
35. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20
36. एक अनपढ़ कहानी– सुशीला राय पृ. 20
37. वही
38. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 7
39. वही
40. वही, पृ. 70
41. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 29
42. लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. भूमिका से
43. अन्या से अनन्या'– प्रभा खेतान, पृ. 67
44. वही, पृ. 289
45. अन्या से अनन्या'– प्रभा खेतान, पृ. 45
46. वही, पृ. 37
47. वही, पृ. 38
48. लगता नहीं है दिल मेरा–कृष्णा अग्निहोत्री पृ. 32
49. वही, पृ. 61
50. वही, पृ. 52
51. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 33
52. उपेक्षिता नारी– प्रभा खेतान, पृ. 238

अध्याय – 3

अध्याय – 3

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन

3.1 इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप

3.2 महिलाओं की राजनीतिक स्थिति

3.3 पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियाँ

3.4 निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन

बीसवीं शताब्दी के अंत तक महिलाओं की राजनीतिक स्थिति तथा विकास की अवस्था अपनी प्रारम्भिक स्थिति में थी तथा वर्तमान में भी यह स्थिति बनी हुई है। अंतर केवल इतना आया है कि संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण महिलाओं की स्थितियां उजागर होने लगी तथा विश्व स्तर पर उनके राजनीति में प्रवेश, उत्थान, शिक्षा एवं विकास का एक प्रारम्भिक दौर प्रारंभ हो गया।

राजनीतिक स्तर तथा सामाजिक स्तर पर महिलाओं की भागीदारी शिक्षा तथा जागृति के कारण बढ़ती जा रही है। 'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी इसका उदाहरण है। महिलाएं केवल शिक्षा द्वारा शिक्षित ही नहीं हो रही हैं अपितु रोजगार प्राप्त तथा रोजगार सृजन भी कर रही हैं। वह व्यापार भी करने लगी हैं जिससे एक परिवार में उसका आत्मसम्मान व पद बढ़ा है।

शताब्दी के प्रारम्भ में राजनीति में पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है। शिक्षा के स्तर तथा एक पत्नी की गरिमा, आत्मसम्मान तथा मीडिया के प्रेम संबंधों की घनिष्ठता के कारण पुरुष मानसिकता में कुछ बदलाव आने लगा। पुरुष अपनी भावनाओं को भी व्यक्त करने लगा तथा सामाजिक बंधनों व दबाव से मुक्त होकर पत्नी की तरफ उनका झुकाव होने के कारण नारी की राजनीतिक गरिमा में कुछ उन्नति दिखाई देने लगी।

परिवारों में शिक्षा के स्तर तथा लड़का व लड़की के भेद से दूर होकर लड़की को लड़के के बराबर का दर्जा दिया जाना तथा उसे भी लड़कों के समान समानता प्रदान करना समाज में एक बहुत बड़े बदलाव की ओर इंगित कर रहे थे, जो समाज में सामाजिक आधार तथा समाज का प्रतिबिम्ब होते हैं।

इक्कीसवीं सदी की महिलाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप के पद चिह्न आजादी की लड़ाई में दिखाई देने लगे थे। यही राजनीतिक हस्तक्षेप आत्मकथाओं में भी मुखरित होने लगा।

3.1 इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप

बालिकाओं को शिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में दी जाने वाली स्वतंत्रता तथा आजादी के साथ अपने सपनों को साकार करने की कल्पना को साकार करने के लिए अभिभावकों द्वारा दी जाने वाली आजादी से बालिकाएं नये लोगों की ओर अग्रसर होने लगी तथा नये क्षेत्रों में नये आयाम स्थापित करने लगी।

बयालीस का आंदोलन

'एक कहानी यह भी' में अजमेर आने के बाद बयालीस के आंदोलन के समय 'मन्नू भंडारी' के पिता का आग्रह था कि उनकी पुत्री रसोईघर से दूर रहे। उनके घर का वातावरण राजनीतिक हो गया था। इसमें पिताजी का पूर्ण रूप से राजनीति में हस्तक्षेप दिखाई देता है तो अप्रत्यक्ष रूप से मन्नू जी का राजनीतिक हस्तक्षेप के प्रति आकर्षण भी दिखाई देने लगा था–

''घर में आए दिन विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के जमावड़े होते थे।

जिसमें कांग्रेस, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, आर. एस. एस. के लोग आते थे और जमकर बहसें होती थी। बहस करना पिताजी का प्रिय शगल था। चाय–पानी या नाश्ता देने जाती तो पिताजी मुझे भी वहीं बैठने को कहते। वे चाहते थे कि

मैं भी वहाँ बैठूँ,

सुनूँ,

और जानूँ

कि देश में चारों ओर क्या हो रहा है।''[1]

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी ने आत्मकथा में आगे बयालीस के आंदोलन को वर्णित किया है कि देश में हो भी तो कितना रहा था–

''बयालीस के आंदोलन के बाद से तो सारा देश जैसे खोल रहा था लेकिन विभिन्न राजनीतिक पार्टियों की नीतियाँ उनके आपसी विरोध या मतभेदों की तो मुझे दूर–दूर तक कोई समझ नहीं थी। हाँ क्रांतिकारियों और देशभक्त शहीदों के रोमानी आकर्षण, उनकी कुर्बानियों से मन आक्रांत रहता था।''[2] बयालीस के आंदोलन से ही उनकी रुचि राजनीति में आकृष्ट होने लगी।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी ने आत्मकथा में आगे बताया है कि दसवीं कक्षा तक आलम यह था कि वह बिना किसी खास समझ के घर में होने वाली बहसें सुनती थी और बिना चुनाव किए, बिना लेखक की अहमियत से परिचित हुए किताबें पढ़ती थी।

पैंतालीस का आंदोलन

लेकिन सन् पैंतालीस में जैसे ही मन्नू भंडारी दसवीं पास करके फ़र्स्ट इयर में सावित्री कॉलेज आई तो, हिंदी की प्राध्यापिका शीला अग्रवाल से उनका परिचय हुआ। गुरु शीला अग्रवाल के हस्तक्षेप से उन्हें सक्रिय राजनीति में भागीदार बना दिया–

''46–47 के वे दिन...वे स्थितियाँ

उनमें वैसे भी घर में बैठे रहना संभव था भला?

प्रभात फेरियाँ, हड़तालें, जुलूस, भाषण हर शहर का चरित्र था।

और पूरे दमखम और जोश–खरोश के साथ इन सबसे जुड़ना

हर युवा का उन्माद।

मैं भी युवा थी।

और शीला अग्रवाल की जोशीली बातों ने रगों में बहते हुए खून को लावे में बदल दिया।''[3]

इस प्रकार वह पूरे जोश के साथ राजनीति में सक्रिय हो चुकी थी। आगे मन्नू जी देश और घर की राजनीतिक स्थिति को इन शब्दों में बया करती हैं–

''स्थिति यह हुई कि एक बवंडर शहर में मचा हुआ था

और एक घर में''[4]

बवंडर मचने का कारण था मन्नू जी का सक्रिय राजनीति में हस्तक्षेप और पिता द्वारा घर के बाहर सक्रिय राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करने देना। घर में एक शीत युद्ध चल रहा था–

''पिताजी की आजादी की सीमा यहीं तक थी

कि उनकी उपस्थिति में घर में आए लोगों के

बीच में उठूँ–बैठूँ, जानूँ–समझूँ।

हाथ उठा–उठाकर नारे लगाती,

हड़तालें करवाती, लड़कों के साथ शहर की सड़कें नापती लड़की को अपनी सारी आधुनिकता के बावजूद बर्दास्त करना उनके लिए मुश्किल हो रहा था।

तो किसी की दी हुई आजादी के दायरे में चलना मेरे लिए।''[5]

मन्नू जी का पिताजी को चुनौती देने का यही साहस दिनों दिन बढ़ता चला गया क्योंकि प्रश्न देश की आजादी का था। उसमें अपने को रोक पाना बहुत ही मुश्किल था। वह अपने भीतर एक क्रांति महसूस कर रही थी। अपने मन के उद्‌गारों को आपने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

''जब रगों में लहू की जगह लावा बहता हो तो सारे निषेध,
सारी वर्जनाएं और सारा भय कैसे ध्वस्त हो जाता है,
यह तभी जाना और अपने क्रोध से सबको थरथरा देने वाले,
पिताजी से टक्कर लेने का जो सिलसिला तब शुरू हुआ था,
राजेन्द्र से शादी की, तब तक वह चलता ही रहा।''[6]

वह राजनीतिक हस्तक्षेप की एक घटना का और वर्णन कर रही हैं–

एक घटना और–

''आजाद हिन्द फौज के मुकदमे का सिलसिला था।

सभी कॉलेजों, स्कूलों, दुकानों के लिए हड़तालों का आह्वान था। जो–जो नहीं कर रहे थे।

छात्रों का एक बहुत बड़ा समूह जिसमें हम लोग भी थे, वहाँ जा–जा कर हड़ताल करवा रहे थे।

शाम को अजमेर का पूरा विद्यार्थी वर्ग चौपड़(मुख्य बाजार का चौराहा)पर इकट्ठा हुआ और फिर हुई भाषणबाजी। इस बीच पिताजी के एक निहायत दकियानूसी मित्र ने घर आकर अच्छी तरह पिताजी की लू उतारी–

''अरे उस मन्नू की तो मत मारी गई है भण्डारी जी,
पर आपको क्या हुआ?
ठीक है,
आपने लड़कियों को आजादी दी,
पर देखते आप,
जाने कैसे–कैसे उल्टे–सीधे लड़कों के साथ
हड़तालें करवाती, हुड़दंग मचाती फिर रही है वह।

हमारे–आपके घरों की लड़कियों को शोभा देता है यह सब।
कोई मान–मर्यादा, इज्जत आबरु का ख्याल भी रह गया है आपको
या नही?''[7]

वे तो आग लगाकर चले गये और पिताजी सारे दिन भभकते रहे। ''बस, अब यही रह गया है कि लोग घर आकर थू–थू करके चले जाएं। बन्द करो अब इस मन्नू का घर से बाहर निकलना।''[8]

मन्नू जी आपातकाल की घोषणा तथा विरोधी दंगों के समय धर्मवीर भारती की कविताओं तथा रघुवीर सहाय द्वारा ''आपातकाल का समर्थन करने पर लेखिका द्वारा उसका मुखर प्रतिरोध किया जाता है जो उनकी शीर्षस्थ लेखकों के राजनीतिक समर्थन के प्रति भी हस्तक्षेप को व्यक्त करता है।''[9]

परिवार में मिलने वाली आजादी तथा समानता का अधिकार प्राप्त होने के कारण बालिकाएं तथा नारियों में, समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा आडम्बरों से लड़ने का साहस भी आने लगा तथा अभिभावक तथा परिवार द्वारा मिलने वाले सहयोग, सहानुभूति के कारण नारी में चुनौतियों तथा समस्याओं को दूर करने के लिए स्वयं में नारी शक्ति तथा स्वयं का अनुभव कर वह स्वयं कोशिश करने लगी, उसके द्वारा की जाने वाली कोशिशों से उसे परिणाम भी सकारात्मक प्राप्त होने लगा। धीरे–धीरे समाज की मानसिकता में आने वाले परिवर्तनों से नारी विभिन्न पदों को प्राप्त करने लगी तथा अपने कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह राजनीति में बखूबी से निभाने लगी तथा उसकी प्रतिष्ठा में प्रगति नजर आने लगी।

नक्सलवाद का विरोध

'अन्या से अनन्या' में मारवाड़ियों पर कोई व्यंग्य कहे जाते या अपशब्द कहे जाते तो वह उसका विरोध करती। नक्सलवाद के घटनाचक्र पर लेखिका द्वारा निर्दोष लोगों को मारा जाना, परम्पराओं को तोड़े जाने का विरोध किया।

'उत्पीड़न व जेल भरो नीति' का विरोध उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है– ''रात–दिन कलकत्ता की सड़कों पर पिशाच लीला चलती रही और लोग घरों में दुबककर आँखों ही आँखों में रात बिताते। भय से कांपते रहते, न जाने कब क्या होगा।''[10]

एक नारी अपनी भावनाओं तथा अनुभवों को समाज के समक्ष प्रदर्शित करने लगी, समाज के द्वारा उसे सहयोग प्राप्त होने तक, एक मुकाम हासिल होने पर जीवन की उन सच्चाईयों को उजागर करने लगी। जिन सच्चाईयों के कारण उनके जीवन में संघर्ष व कठिनाइयों का सामना उसने किया था। वह दिल की गहराइयों में छिपी हुई पीड़ा व दर्द को लेखनी के माध्यम से आत्मकथाओं में उजागर करने लगी।

नारी अपने अस्तित्व के लिए समाज में कई प्रकार के क्षेत्रों का चयन करने लगी। वह अध्यापिका, कार्य, बैंक, सेना, खेलकूद, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में अपने पाँव पसारने लगी।

आजादी के पहले से ही बड़े घरानों की महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में तथा सामाजिक सुधारों में अपना योगदान देती आई थी, लेकिन आजादी के बाद इस क्षेत्र में अमीर तथा बड़े घरानों की महिलाओं के साथ–साथ उनकी पुत्रियों का योगदान भी बढ़ने लगा। परिवार की प्रतिष्ठा तथा राजनीतिक स्तर पर पहचान होने से उन्हें समाज में ज्यादा मान–सम्मान तथा प्रतिष्ठा आसानी से प्राप्त हो रही थी तथा वर्चस्व व पद की आसानी से प्राप्ति के कारण वह राजनीति के क्षेत्र में भी अपना कदम बढ़ाने लगी। सामाजिक मान प्रतिष्ठा तथा समाज सेवा करने तथा सम्मान व पद के कारण भी महिलाएं कविता लेखन, समाचार लेखन, पुस्तक लेखन आदि कई प्रकार के लेखनों में अपना वर्चस्व स्थापित करने लगी। नारी में समाहित नारीत्व, संवेदनाओं, कल्पना शक्ति आदि के कारण नारी लेखन में भावनाओं की

अभिव्यक्ति बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत करने लगी। दुःख, दर्द आदि को भी एक नारी बहुत ही सुंदर ढंग से प्रस्तुत कर सकती है।

समाज में ऐसी कई महिलाएं हुई जिनके जीवन में परिवार के सदस्यों को खोने तक, पति से जुदाई होने से जीवन स्वयं के बल पर जीने का संघर्ष सामने खड़ा था। जिसे उन्होंने बखूबी निभाया तथा अपने परिवार को संबल प्रदान किया। परिवार को संभाला। लेखन के क्षेत्र में अधिकांश उन महिलाओं का योगदान रहा जो शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी हुई थी तथा अपनी भावनाओं आदि को तथा प्राप्त ज्ञान को पुस्तकों के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रकार जीवन से प्राप्त अनुभवों तथा ज्ञान को जीवन के एक पड़ाव के पश्चात् उन्हें कोरे कागज पर उकेरा तथा जीवन के उन कड़े अनुभवों को दूसरों तक भी पहुँचाया। जिसे आत्मकथा तथा जीवन के अंश भी कह सकते हैं। नारी के अन्दर उपस्थित भावनाओं का उद्गार जब होता है तो उसकी शुरुआत कविता की कुछ पंक्तियों से होता है तथा धीरे–धीरे बढ़ता हुआ आत्मकथा तक पहुँचता है।

नारी के मान–सम्मान में हुई कमी तथा समाज से प्राप्त दुःख–दर्द व प्रताड़ना या अन्य कारणों के कारण कई महिलाएं अपने संघर्ष के द्वारा समाज में समाजसेवा भी प्रदान करने लगी तथा समाज में उनके जैसी महिलाओं तथा संघर्षों तथा समस्याओं से ग्रस्त महिलाओं की सहायता करने लगी। महिलाएं अपने अनुभवों तथा दुःख दर्दों को एक–दूसरे के साथ बाँटने लगी साथ ही अपने अनुभवों को समाज में बाँटने लगी जिससे नारी की उन समस्याओं व परेशानियों को दूर किया जा सके। इस प्रकार से समाज सुधारक, शिक्षक या अन्य पदों पर अपनी क्षमता के अनुसार पहुँचने तथा समाज के द्वारा सहयोग, सहानुभूति व परिवार तथा पुरुष के सहयोग तथा प्यार के सहारे कई महिलाओं ने समाज में स्थान व सम्मान प्राप्त किया। पति द्वारा पत्नी को, दी गयी प्रेरणा तथा प्रेरित करने के कारण भी कई महिलाओं ने राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया।

पति द्वारा पत्नी को दी गई प्रेरणा, पिता द्वारा पुत्री, ससुर द्वारा पुत्रवधू, भाई द्वारा बहिन तथा परिवार के कई प्रकार के संबंधों से प्रेरित होकर एक नारी अपना आत्मसम्मान बनाना चाहती है तो वह निश्चित रूप से उस मुकाम तक पहुँच जाती है।

इस प्रकार कई प्रेरणा स्रोतों द्वारा नारी ने राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना कदम रखा। नारी द्वारा रखा गया यह प्रथम कदम समाज सेवा के द्वारा प्रारम्भ किया गया तथा लोगों के स्नेह, प्यार तथा अपनेपन से धीरे–धीरे नारी वार्ड पार्षद के स्थान से प्रधानमंत्री जैसे सर्वोच्च पद पर आसीन हुई।

सैंतालीस में भारत की आजादी का संग्राम

अठारह सौ सैंतालीस में भारत में आजादी प्राप्त करने के लिए जो संग्राम शुरु हुआ उसी का परिणाम था कि अंग्रेज यह सोचने पर मजबूर हो गये कि इस देश पर राज करना है तो देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं को भी बनाये रखना होगा, जो संघर्ष व अस्थिरता का माहौल उत्पन्न हो गया था, उसे विधि सम्मत तथा अधिकारों को प्रदान कर ही व्यवस्थाओं में सुधार संभव है तथा भारतवासी तभी साथ देंगे जब व्यवस्थाओं में सुधार आयेगा।

अतः अंग्रेजों द्वारा भारतीय परिप्रेक्ष्य में शासकीय तथा कानून व्यवस्था एवं व्यवस्थापिका में कानून बनाने तथा भारतीयों को उसमें सम्मिलित कर भारत के तथा यहाँ की जनता के अनुसार कानून बनाने की कवायद शुरु हुई। आजादी की इस लड़ाई में पुरुषों के साथ–साथ महिलाओं तथा बच्चों और युवाओं ने भाग लिया। अतः सभी के लिए समान व्यवस्था से लागू की जाने की मांग उठने लगी।

सर्वप्रथम अंग्रेजों द्वारा कई प्रकार के न्यायिक निर्णय महिलाओं के लिए लागू किये गये। सर्वप्रथम महिलाओं को वोट देने का अधिकार प्रदान किया। अंग्रेजी सभ्यता पाश्चात्य सभ्यता में आती थी तथा उनकी सभ्यता व संस्कृति अधिक

विकसित थी। महिलाओं आदि को उनकी सभ्यता में अधिकार प्राप्त थे। अतः अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव भारतीय सभ्यता, संस्कृति तथा परम्पराओं पर भी पड़ना स्वाभाविक था।

पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव जैसे बाल विवाह पर रोक, सती प्रथा पर रोक, विधवा पुनः विवाह को प्रोत्साहन, कृषि को व्यावसायिकता प्रदान करना, विदेशों की उन्नत तकनीकों आदि को भारतीय अर्थव्यवस्था में भी लागू करना आदि। कई प्रकार के बदलावों आदि का अभाव भारतीय शिक्षा आदि पर भी स्पष्ट दिखाई देता है।

स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका

स्वतंत्रता संग्राम में कस्तूरबा गांधी की महिलाओं के लिए खास भूमिका, सरोजनी नायडू जैसी महिलाओं द्वारा राजनीतिक तथा महिलाओं के प्रति सामाजिक चेतना, जागृति उत्पन्न करने के कारण समाज में महिलाओं के प्रति भी चेतना उत्पन्न हुई।

स्वतंत्रता के पश्चात् भावनाओं का सामाजिक संप्रेषण करना आसान हो गया तथा प्रेस को मिली स्वतंत्रता से विचारों के नये भारत में नवीन आधार प्राप्त हुए। सामाजिक अर्थव्यवस्था, शिक्षा के सामाजिक ढाँचे का पुनःनिर्माण कर आधारभूत ढाँचे को तैयार कर महिलाओं की भागीदारी को सुनिश्चित करने के लिए बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन देना जैसे महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये। स्वतंत्रता के पश्चात् भी राजाओं को प्राप्त क्षेत्रों में उनकी राजनीतिक स्थिति, सामंती प्रथा, जमींदारी प्रथा का पूर्णरूप से अंत नहीं हो पाया था। आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी, जिसमें महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय थी। महिलाओं को अभी भी केवल शोषण तथा उपभोग की वस्तु ही माना जाता रहा है।

स्वतंत्रता ने समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों को स्वछन्दता प्रदान कर दी तथा किसी भी प्रकार का दबाव न होने से क्षेत्र रूप से कुछ व्यक्ति अपना प्रमुख स्थापित करने के लिए शोषण की सीमाओं को भी पार करने लगे थे। आर्थिक रूप से कमजोर लोगों तथा श्रमिक व कृषक वर्ग पुनःशोषण की ओर अग्रसर हो रहा था, जो क्षेत्र स्तर के अनुसार उच्च था। सरकार द्वारा व्यवस्थाएं सुधारने के लिए कई प्रकार के कानून आदि बनाये गये लेकिन न्यायिक व्यवस्थाओं में कमी तथा पुलिस प्रशासन की नाकामियों के कारण कानून बनाने से सुधारात्मक प्रक्रिया की गति बहुत धीमी थी। लोगों को न्याय की प्राप्ति नहीं हो पा रही थी। दबंग लोग राजनीतिक दबाव से लोगों की जमीनों पर कब्जे तथा सूदखोरों आदि के कारण सामाजिक ढाँचे में बदलाव बहुत कम हो रहे थे। कुछ सामाजिक संस्थानों तथा सेवा समितियों द्वारा इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये। भ्रूण हत्या, विधवा पुनर्विवाह आदि को अधिक प्रोत्साहन प्रदान किया जाने लगा।

इस समय महिलाओं में आत्मविश्वास व जागरुकता की बहुत कमी थी। समाज की कुछ महिलाओं द्वारा गीत, गज़ल, लेखों, कविताओं आदि के माध्यम से सामाजिक चेतना प्रदान की गई। कुछ महिलाओं द्वारा कहानियों के रूप में सामाजिक चेतना प्रदान की गई। इसी प्रकार चित्रों के माध्यम से शिक्षा में पाठों के माध्यम से सामाजिक चेतना का संचार किया गया।

इसी प्रकार समाज से प्राप्त दुःख–दर्द व पीड़ा को महिलाओं ने कविताओं के माध्यम से अधिक प्रस्तुत किया तथा कुछ के द्वारा कहानी के रूप में अपने अस्तित्व को बनाये रखने तथा अस्तित्व की रक्षा और परिवार के उत्थान के लिए कहानी, व्यंग्य के रूप में पात्रों को काल्पनिकता प्रदान कर सामाजिक चेतना को विकसित किया जाने लगा।

मीडिया ने प्राप्त स्वतंत्रता को भी महिलाओं के उत्थान के लिए प्रयोग के तौर पर प्रयोग किया जाने लगा लेकिन पुरुष प्रधान समाज में मानसिकता को

बदलना या परिवर्तित करना बहुत ही कठिन कार्य है और आज भी पुरुष की मानसिकता स्त्री को अपने से कम ही मानती है।

एक नारी दो परिवारों का आधार होती है। यदि एक परिवार से उसे समानता प्राप्त हो जाये तो ससुराल में समानता प्राप्त नहीं होती। यदि ससुराल में भी समानता प्राप्त हो जाये तो समाज से उसे समानता प्राप्त नहीं होती।

आज भी कार्यस्थल पर पुरुष प्रधानता स्पष्ट नजर आती है तथा संकीर्ण मानसिकता दृष्टिगोचर होती है। आज भी नारी कार्यस्थल पर असुरक्षित महसूस करती है। समाज में आज भी होने वाली घटनाएं सामाजिक मानसिकता को प्रदर्शित करती है।

छोटी–छोटी कलियों जैसी मासूम बच्चियों के साथ होने वाली दरिंदगी इस बात को साफ तौर पर इंगित करती है कि हमारा समाज कितना विकसित है। इसी प्रकार कन्या भ्रूण हत्या कानून बनाने के पश्चात् भी रोज कन्या भ्रूण हत्याएं हो रही है। ये सामाजिक आधार की संकीर्णता को दर्शाते हैं।

समय–समय पर महिलाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं आत्मबोध कराती है कि महिलाएं अपने पारिवारिक संबंधों में कितनी असुरक्षित है। अधिकांश आत्मकथाओं में यह बात स्पष्ट होती है कि महिलाओं का अधिकांश शोषण उनके परिवार व विश्वास प्राप्त संबंधों द्वारा ही किया गया है तथा किया जा रहा है। एक नारी अपना विश्वास अपनों के द्वारा ही खो रही है। आज होने वाले मानसिक प्रदूषण तथा सामाजिक प्रदूषण का स्तर बहुत बढ़ गया है। आज जैसे संस्कृति व सभ्यताशील देश पर पाश्चात्य संस्कृति का इतना अधिक प्रभाव पड़ने लगा है कि व्यक्ति के साथ–साथ बालक–बालिका अपनी आयु से कम आयु में ही यौवन प्राप्त कर परिणामों से अनभिज्ञ वासना में लिप्त होने को आतुर हो रहे हैं।

पुरुष प्रधान समाज नारी को हमेशा उपभोग की वस्तु समझता आया है। कभी अमीर व्यक्ति द्वारा गरीब का शोषण, कभी बलवान द्वारा कमजोर का शोषण तथा कभी पद का दुरुपयोग, तो कभी मजबूरी का फायदा, शारीरिक शोषण द्वारा किया जा रहा है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा व मान सम्मान के दिखावटीपन के कारण नारी का अपमान होता आया है तथा उसे ही अपमान, तिरस्कार, पीड़ा सहनी पड़ती है। इस प्रकार सामाजिक, पारिवारिक कारणों से एक नारी अपने अस्तित्व को प्राप्त करने तथा अपने जीवन का आधार प्राप्त करने की कोशिश करती है।

कई बार इस प्रकार की कोशिश सामाजिक उत्तरदायित्व से शुरु होती है जो मानव कल्याण में बदल जाती है तथा क्षेत्र का विस्तार होने लगता है। एक नारी का आत्म–सम्मान, कर्तव्यनिष्ठा, कार्य के प्रति समर्पण, दुःख–दर्द, पीड़ा की समझ उसे सामाजिक पटल के मुखपृष्ठ पर लेकर आ जाती है।

धीरे–धीरे समाज ही उसे अपने नेता के रूप में देखने लगता है और धीरे–धीरे नारी का पदार्पण राजनीतिक क्षेत्र की ओर अग्रसर होने लगता है तथा नारी भी राजनीतिक क्षेत्र में एक मुकाम हासिल कर पाती है।

इक्कीसवीं शताब्दी में अधिकांश जो महिलाएं राजनीतिक के क्षेत्र में आयी तथा उनके द्वारा जो आत्मकथाएं लिखी गई। वह केवल राजनीतिक क्षेत्र में अपनी पहचान बनाये जाने से संबंधित नजर आती है। उनमें भावनाओं की कमी तथा जीवन में होने वाले उतार–चढ़ाव, दुःख–दर्द व पीड़ा आदि का समायोजन कम ही दृष्टिगत होता है। केवल अपने जीवन के अंशों को समाज के सामने प्रदर्शित करने के लिहाज से लिखी गई हैं।

उन्नीस सौ सत्तर की राजनीति

उन्नीस सौ सत्तर 'अन्या से अनन्या' में–''उन्नीस सौ सत्तर के बाद शुरुआती सालों में हमारी देशभक्ति का रूप यह था कि देश की प्रधानमन्त्री इन्दिरा गांधी के मुरीद हो गए। बांग्लादेश की भूमि पर आजादी की जो हवा बही, लगा कि हमारी साँसों से गुजरकर गई है, आखिर हम भी तो इन्दिरा गांधी के देश की स्त्रियां है। अब वह दिन दूर नहीं है, जब हमारे अस्तित्व के लिए ही नहीं, अस्मिता की बात पर हितों की चिन्ता की जाएगी।''[11] परिवार और समाज की वर्चस्ववादी व्यवस्था का आतंक भी अपने हरबे हथियारों के मुँह झुका देगा। स्त्री को नियन्त्रण में रखने के लिए जितने सांस्कृतिक और सामाजिक कानून बनाए है सेक्स के नाम पर उठापटक की जो तरकीबे लागू की जाती रही हैं। ''शीर्ष पर बैठी स्त्री के रूप में प्रधानमंत्री या प्रधानमंत्री के रूप में स्त्री–पुरुष व्यवस्था के घात–प्रतिघातों से भी जरूर वाकिफ होगी।''[12] हमारे शील का अर्थ, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर औरतों की आजादी पर भी सेंसर से कम नहीं। हम पढ़–लिखकर सभ्यता और आधुनिकता को अपनाकर प्रतिभा और क्षमता का सबूत देकर क्या सामाजिक सम्मान पाते हैं? ''इस बिसात पर कमजोर मोहरे की तरह पीटना और प्रताड़ित होना जैसे हमारी नियति हो। ''राजनीति की कुशल खिलाड़ी हमारी प्रधानमंत्री स्त्री जीवन की जटिलताओं को जरूर समझती होगी। वे नियम बनाएँगी, पुरानी नियमावली में संशोधन करके, घरेलू हिंसा व सम्पत्ति का अधिकार जैसे मुद्दों पर गंभीरता से विचार करके तथा हर पहलू में स्त्री की बराबरी और भागीदारी को ध्यान में रखते हुए पंचवर्षीय योजनाओं की रूपरेखा बनाकर...।''[13]

उन्नीस सौ पचहत्तर की राजनीतिक स्थिति

''सपने थे, सच होने के लिए आकुल–व्याकुल और आकांक्षाएं थी, आशाओं के साथ गठजोड़ किए हुए। हम थे आपस में बतियाते, हँसी के खील मखाने बिखेरते हुए, ''इन्दिरा गांधी पर बलि–बलि जाने का सुनहरा समय ओढ़े हुए।''[14]

''उन्नीस सौ पचहत्तर अचानक सुनहरे समय की ओढ़नी के तार खिंचे, चिर्र–चिर्र लोकतन्त्र फटा। हमारी मुक्ति से पहले पुरुषों की आजादी (नसबंदी से) चिन्दी–चिन्दी होने लगी। उनका न सामाजिक वर्चस्व रहा और न राजनीतिक सदस्यता बची और न नागरिकता का ईमान जायज माना गया।''[15]

प्रमुख अखबारों के मुख्य पृष्ठों पर जो सामने आया, वह हमने अपने जीवन में आजादी के बाद कभी नहीं देखा था। जब दादी–नानी गोरों द्वारा दी गई गुलामी की दास्तानें और हुकुम उदूली की सजाएँ सुनाती थी तो हम उन्हें किसी राक्षस और मासूम मनुष्य के किस्सों की तरह सुनते। गांधी जी को देखा नहीं, लेकिन शेर की दादागिरी के बरक्स कोमल खरगोश की कहानी याद आती है कि जिस तरह से खरगोश ने खुद को शेर की खुराक बनाने के लिए प्रस्तुत किया लेकिन अपनी सूझबूझ से शेर को मृत्यु का रास्ता दिखा दिया। जंगल के मासूम जानवर डर और आतंक से मुक्त हुए और जिन्दगी पा गए। ''अंग्रेजी सत्ता रूपी शेर गांधीजी ने पछाड़ दिया।''[16] हमने बचपन में बड़े मनोयोग से वह गाना कण्ठस्थ कर लिया था जो फिल्म जागृति का था :

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल।

साबरमती के संत तूने कर दिया कमाल।

लेकिन यह क्या हम तीस के होते–होते हम उसी आजादी का खात्मा होते–होते देख रहे है।''[17]

राजनीति में वंशपरम्परावाद का विरोध

आत्मकथा लेखिकाओं ने राजनीति में वंशपरम्परावाद का विरोध भी किया है–''क्या ऐसे–सन् उन्नीस सौ पचहत्तर के दौरान भारतीय लोकतंत्र में से ही साम्राज्यवाद का जन्म हुआ। तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्द्रिरा गांधी कट्टर शासक के रूप में दिखाई देने लगी। नियम–कानूनों का निर्माता नए सिरे से एक अट्टाईस

साल का युवक बना। जो संयोग से उसका बेटा था। बेटे ने राजनीति की सारी नीतियों को अपनी मुट्टी में ले लिया। जो कानून अब लागू हो रहे है। उनका कोई विरोध नहीं कर सकता है। जो विरोध करेगा, उसके लिए जेलें तैयार कर दी गई हैं। मीसा जैसे कानून सख्ती से लागू हैं। चार–छह लोग एक जगह खड़े नहीं हो सकते।''[18]

आपातकाल में राजनीतिक ह्रास

''आज सोचती हूँ तो लगता है कि बस इतना ही था कि इन्दिरा गांधी को हराकर जब जनता पार्टी सत्ता में आई थी, वह समय उन्नीस सौ सतहत्तर की शुरुआत का ही था... इमरजेन्सी टूटी, साथ में मेरे आकाश से एक सितारा टूटा।''[19]

उफ्! बांग्लादेश के मुक्ति संग्राम में इंदिरा गांधी का रूप अपूर्व साहसी वीरांगना का था। उनका वही आक्रामक रवैया जब अपने देश पर गुजरा तो वे क्रूर और बर्बर शासक के रूप में सामने थी।''[20]

जबकि जो महिलाएं शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी रही तथा कठिन परिस्थितियों में लड़ते हुए, समाज से तिरस्कार, दर्द, पीड़ा पारिवारिक समस्याओं से जूझते हुए एक मुकाम हासिल किया। उनके द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं वास्तव में जीवन का वास्तविक दर्पण प्रदर्शित करती हैं। ये आत्मकथाएं वह है जो वास्तविक जीवन तथा समाज के लोगों की वास्तविक मानसिकता को प्रदर्शित करती हैं कि केवल शिक्षा प्राप्त कर लेने या अमीर हो जाने से मनुष्य की नारी के प्रति मानसिकता परिवर्तित नहीं होती।

बचपन में होने वाली शारीरिक शोषण की घटना, पारिवारिक सदस्यों व रिश्तेदारी या मिलने जुलने वाले लोगों द्वारा ही शारीरिक यातनाएं, एक किशोरी के मानसिक पटल पर एक अमिट छाप छोड़ती है। जो जीवन के अंतिम क्षणों तक

उसे असहाय व निसहाय तथा एकाकी बना देती है तथा सभी के होते हुए भी वह हमेशा अकेली व असुरक्षित महसूस करती है।

एक नारी की भावनाओं से पुरुष हमेशा से खेलता आया है तथा उसकी भावनाओं को ठेस पहुँचाता आया है। एक पुरुष द्वारा परिवार की जिम्मेदारियों से मुख मोड़ लेने से या परिवार में समस्याएं, परेशानियां पैदा करने से भी परिवार के उत्तरदायित्व का बोझ एक नारी पर ही आता है जिसे उसे अकेले ही उठाना होता है। पिता द्वारा माँ को दी जाने वाली प्रताड़ना, तिरस्कार एक बेटी के मन में अपराध बोध उत्पन्न करता है जो पुरुष के प्रति असुरक्षा का कारण भी बनता है।

अधिकांश आत्मकथाओं में एक नारी द्वारा नारी का ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया कि एक नारी किस प्रकार से अपने ही परिवार के सदस्यों तथा समाज द्वारा शोषित की जाती है।

खेलों में राजनीतिक हस्तक्षेप

'मेरी कहानी' में मेरीकॉम ने बहुत ही सरलता से इस बात को रखा है कि मुक्केबाजी के दौरान जब वह राज्य स्तर के चयन तक पहुँचने लगी तो उसे महसूस होने लगा कि राज्य स्तर पर ''मुक्केबाजी संघ दो भागों में बँटा है तथा दोनों में हमेशा तनातनी रहती है। इसी प्रकार से खेल प्राधिकरण तथा दोनों मणिपुर मुक्केबाजी संघ के मध्य अर्थात् केन्द्र व राज्य सरकार के मध्य भी संबंध अच्छे नहीं है जिसका परिणाम खिलाड़ियों को ही भुगतना होता था। किसी भी संघ में किसी को नाराज कर दिया तो उसका भविष्य खतरे में पड़ जाता था। अतः न चाहते हुए भी मेरीकॉम को भारतीय खेल प्राधिकरण के स्थान पर राज्य मुक्केबाजी केन्द्र की ओर लौटना पड़ा।''[21]

पुरस्कारों में राजनीतिक हस्तक्षेप

इसी प्रकार अर्जुन पुरस्कार के लिए नाम सूची में नाम होते हुए भी मिल्खा सिंह द्वारा यह टिप्पणी करने के कारण की वे उक्त महिला के खेल को नहीं जानता, उनका नाम सूची से हटा दिया गया, यह मेरीकॉम के लिए मानसिक आघात था कि इतनी मेहनत करने के पश्चात् भी केवल किसी के द्वारा टिप्पणी करने मात्र से उसे पदक तालिका से हटा देना, न्यायोचित नहीं था।

इसी प्रकार से व्यवहार में उन्हें ''नेपाली या चीनी समझकर उनके अस्तित्व को नकारा जाना, मणिपुरी राज्य से होने के कारण केन्द्र स्तर पर व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर उनके नाकनक्श, बोली आदि के आधार पर चयन।''[22] को प्राथमिकता देना क्या न्यायोचित है, कईयों के पति और पिता भी इसमें साथ देते हैं। वे इस शोषण को ऊपर उठने की सीढ़ी मानते हैं।

दलित स्त्रियां अपनी लड़ाई स्वयं लड़े

कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) जागरण के कारण राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थिति से परिचित हो गई है। वह जान गई है कि ''दलित स्त्रियों'' की लड़ाई दूसरा कोई नहीं लड़ेगा। इसके लिए खुद उन्हें ही आगे आना होगा। उसकी पहली मुठभेंट सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं तो दलित पुरुष सत्ता से है। कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) जागरण के कारण पुरुष गुलामी को तोड़ती है। वह पति को छोड़कर बेटे के साथ रहती है। शिक्षा और जागरण के कारण वह बच्चों के जन्म को भगवान की मर्जी मानकर स्वीकारने का विरोध करती है। वह जान चुकी है कि ऐसी मानसिकता का कारण अशिक्षा और अज्ञान है।''[23]

माफिया से मुकाबला

रमणिका गुप्ता (हादसे) राजनीति से जुड़ी हुई है। उसने अनेक सत्ता पदों के चुनाव में सफलता प्राप्त की है। वह अपने अनुभव को व्यक्त करती है–''विधान

परिषद और विधानसभा में भी कई बार ऐसी स्थितियां आई कि स्त्री होने के नाते मुझे दबाने या डराने की चेष्टा की गई। यह अलग बात है कि मैं तो न डरी और न ही झुकी। मैं तो ऐसा मानती हूँ कि स्त्री होने के कारण ही मैं माफिया का मुकाबला इतनी मुस्तैदी और सफलता से कर पाई। पुरुष होने पर इतना शायद सम्भव नहीं होता।''[24]

महिला आत्मकथाओं की रचयिता महिलाएं समाज में हो रही परिस्थितियों से निकलकर सामने आयी है। एक महिला आत्मकथाकार आर्थिक पक्ष से सुदृढ़ और सम्पन्न से परिवार हैं तथा शिक्षा प्राप्त कर जिनके द्वारा आत्मकथा की रचना की गई। इसी प्रकार की रचनाओं में जीवन के दुःखद अनुभव व अनुभूतियों का समावेश कम ही दिखाई देता है। इस प्रकार की कथाओं में आत्माभिव्यक्ति तथा समाज से प्राप्त प्रताड़ना आदि को समावेश की अनदेखी कही जा सकती है। इनमें जीवन के सुनहरे पलों तथा जीवन की सुखद घटनाओं का समावेश या जीवन के उन पलों का समावेश होता है जो जीवन को एक दिशा या आधार प्रदान करते हैं या जीवन के अनमोल क्षणों को व्यक्त करते हैं। इस प्रकार की कथाओं में मार्मिक चित्रण का अभाव होता है तथा आलोचनात्मक या समीक्षात्ममक विवेचन का अभाव दिखाई देता है। ये आत्मकथाएं केवल स्वयं की सुखद अनुभूति को व्यक्त करने का एक मात्र माध्यम होता है।

जबकि दूसरी महिला आत्मकथाकार वह है जो समाज से प्राप्त वास्तविक जीवन की अनुभूतियों को व्यक्त करती है तथा जीवन के उन क्षणों को वैसे ही व्यक्त करती है जिसे उन्हें समाज व लोगों द्वारा प्राप्त हुई है। अपनी आत्माभिव्यक्ति को उतनी ही सच्चाई के साथ व्यक्त करना जितनी आपकी आत्मा जानती है। बहुत ही कठिन कार्य होता है क्योंकि इसमें समाज के समक्ष एक दर्पण रखा जाता है जिसमें समाज तथा लोगों की वास्तविक छवि तथा उनके द्वारा किये

गये कृत्यों की सच्चाई वास्तविक रूप में प्रकट की जाती है। जो अक्सर लोगों व समाज द्वारा स्वीकार नहीं की जाती।

समाज वास्तविक सच्चाई को स्वीकार नहीं करना चाहता तथा पुरुष प्रधान समाज एक पुरुष द्वारा की जाने वाली ज्यादतियों, अत्याचार, प्रताड़ना आदि को स्वीकार नहीं करना चाहता। वास्तविकता को समाज हमेशा से नजर अंदाज करता आया है। अतः इस प्रकार की कथाओं में महिलाओं की आलोचना तथा दोषपूर्ण समीक्षा पुरुषों द्वारा की जाती है।

पुरुष वर्ग हमेशा महिला को सहानुभूति तो प्रकट करता है लेकिन उसे समानता का अधिकार या अन्य अधिकार बड़ी कठिनता से प्रदान करता है।

कई बार तो परिस्थितियां इतनी विकट हो जाती है कि एक महिला या नारी अधिकार तो प्राप्त कर लेती है लेकिन अपने घर–परिवार, बच्चे, पति से उसका नाता टूट जाता है या उसे छोड़ तक दिया जाता है। समाज उसे अधिकार प्रदान कर उसे निःसहाय जीवन जीने के लिए छोड़ दिया जाता है।

एक विधवा महिला या नारी को विधवा होने के पश्चात् ससुराल पक्ष उसे पति की मृत्यु का दोषारोपण कर समाज में अकेला छोड़ देते हैं। नरकीय जीवन जीने के लिए या बच्ची की माँ बनने पर दूसरी शादी करा दी जाती है या उसे घर से निकाल दिया जाता है।

इस प्रकार की प्रताड़ना, दुःख, दर्द, पीड़ा, तिरस्कार, शारीरिक शोषण का शिकार नारी द्वारा लिखी गई कथाओं में व्यंग्यात्मक, तीखे तेवर तथा क्रोध की तीव्रता, आक्रोश शब्दों द्वारा स्पष्ट रूप से नजर आता है जो सीधे तौर पर पुरुष वर्ग पर भारी पड़ता है जो पुरुष वर्ग के लिए असहनीय होता है जिसका विरोध भी किया जाता है तथा आलोचना भी।

प्रथम परिस्थितियों में महिला कथाकारों की आर्थिक सम्पन्नता तथा शिक्षा परिवेश के उचित वातावरण की उपयुक्तता के आधार पर ही अधिकांश आत्मकथाकार राजनीतिक रूप में भी सक्रिय भूमिका में दिखाई देती है। आर्थिक सम्पन्नता उसे समाज में सम्मान तथा पद–प्राप्ति का आधार प्रदान कर देती है जिसके कारण राजनीतिक स्थिति का आधार बन जाता है।

परन्तु इस प्रकार की महिलाओं द्वारा लिखी गई आत्मकथा केवल एक कहानी के रूप में ही नजर आती है। इसमें सच्चाई का अभाव सा प्रतीत होता है तथा यह उपन्यास पर आधारित कहानी मात्र होते हैं। इसमें संवेदनाओं का अभाव सा रहता है। इसमें सृजनात्मक दृष्टिकोण नजर आता है परन्तु वास्तविक सच का दृष्टिकोण तथा आत्माभिव्यक्ति का क्षेत्र सीमित होता है।

द्वितीय परिस्थितियों की महिला आत्मकथाकारों में आर्थिक विनम्रता, परिवार की माली हालत, शारीरिक परेशानियां, गरीबी, अज्ञानता, सामाजिक कारणों तथा धोखा, द्वेष, घृणा के कारण शिकार हुई महिलाएं जब समाज में शिक्षा द्वारा या अन्य कारणों से अपना सम्मान व पद प्राप्त करती है तो उनके द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में सच का अंश अधिक से अधिक होता है तथा अपने अंतःकरण में छिपी हुई शोषण व दुःख–दर्द का पूर्ण सच्चाई के साथ उजागर कर समाज के दृष्टिकोण के समक्ष लाना साहसिक कार्य होता है।

इस प्रकार समाज तथा व्यक्तियों से प्राप्त धोखा, दुःख–दर्द, शारीरिक–शोषण, अत्याचार का विरोध स्पष्ट दिखाई देता है। जो समाज पर एक कलंक या दोषारोपण होता है। जिसे समाज के ठेकेदार बर्दास्त नहीं कर पाते या अपने पुरुषत्व पर घमंड व अभिमान से ग्रस्त राजनीतिज्ञ अपनी राजनीति की रोटियां सेकने से बाज नहीं आते।

समाज के ऐसे व्यक्ति इस प्रकार की घटना को बर्दास्त नहीं कर पाते। ऐसे लोग समाज में यह दिखाते हैं कि पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हैं। सदा सत्य

बोलते हैं। धर्म के पालनकर्ता हैं। ऐसे व्यक्ति समाज की वास्तविकता का परिचय देते हैं, ऐसे व्यक्तियों की मानसिकता वास्तविकता से परे होती है। ऐसे पुरुष समाज के समक्ष नारी की महानता का बखान करते थकते नहीं है लेकिन वास्तविकता में यही नारी की दुर्दशा तथा घृणित मानसिकता के लिए उत्तरदायी होते हैं।

समाज में नारी द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में परिवार के व्यक्तियों की वास्तविक मानसिकता का परिचय मिलता हैं तथा समाज के समक्ष साफ सुथरी छवि प्रदर्शित करने वाले व्यक्तियों की वास्तविक मानसिकता तथा घटिया सोच, संकीर्ण मानसिकता, रूढ़िवादी सोच की वास्तविकता का परिचय मिलता है। ऐसे व्यक्ति वास्तविकता में नारी को एक तुच्छ व उपभोग की वस्तु मात्र मानते हैं तथा अपने पुरुषत्व की सीमा को पार कर शारीरिक शोषण कर अपने अभिमान वश बलवान होने का ढोंग करते हैं।

इस प्रकार की आपबीती में समाज में विभिन्न वर्ग तथा समुदायों में होने वाली भिन्नता की दृष्टि व अंतर होने के कारण होने वाला शोषण, अत्याचार, प्रताड़ना, मानहानि साफ तौर पर नजर आती है।

निम्न कुल या जाति का होने के कारण शिक्षाप्राप्त करने में आने वाली परेशानियां व कठिनाइयां, सवर्णों के साथ उठना–बैठना मना होना, बालिकाओं की शिक्षापर पाबंदी, निम्न वर्ग का होने पर अपमान जनक शब्दों का प्रयोग करना, मानहानि करना, जमीन जायजाद पर जबरदस्ती कब्जा करना, आर्थिक व सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों, धर्म का सहारा लेकर मानसिक, शारीरिक व आर्थिक शोषण करना आत्मकथाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है।

एक नारी की मानसिकता, परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति तथा नारी के एकाकीपन का फायदा उठाना भी आत्मकथाओं में नजर आता है।

कठिन परिश्रम करने व मेहनत करने पर भी मेहनताना खा जाना, श्रम व मेहनत का सही मुआवजा न मिलना, चोरी आदि का इल्जाम लगाकर शोषण करना आत्मकथाओं की एक सामान्य बात नजर आती है।

नारी के दृष्टिकोण से जो बात स्पष्ट होती है वह यह है कि नारी मन तथा हृदय का उपयोग करती है तथा भावनाओं से बंधी हुई होती है। वह मन के छल कपट को समझ नहीं पाती है। प्यार व स्नेह के दो मीठे बोल उसके हृदय की गहराइयों में हलचल पैदाकर देते हैं। कई पुरुष इस प्रकार धोखे से नारी की भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं तथा दोषी होने पर उसे ही दोषी बनाकर समाज में दोषी साबित कर अपमानित होने तथा कठिन जीवन जीने के लिए विवश कर छोड़ देते हैं।

कुछ नारियां तो इसी कारण अपना जीवन समाप्त कर इस पीड़ा, दुःख—दर्द से छुटकारा प्राप्त कर लेती है जबकि कुछ नारियां उस पीड़ा को जीवन भर भोगती है। केवल कुछ महिलाओं में से भी कुछ ही ऐसी होती है जो जीवनभर उसका विरोध प्रदर्शित करती है तथा जीवन के साथ संघर्ष करती है। अपने अधिकारों व मान—सम्मान, मर्यादा, आत्म संतुष्टि की प्राप्ति के लिए संघर्षमय रहती हैं।

''पुरुष प्रधान समाज महिला आत्मकथा में उदित लेखों तथा कटाक्षों को राजनीतिक मुद्दा बनाकर राजनीतिक तथा समाज विरोधी विचार व धारणा बताकर उसे अमर्यादित साबित करने पर आमादा हो जाते हैं। राजनीति का सहारा लेकर किसी न किसी रूप में उसके मान सम्मान को ठेस पहुँचाते हैं या उसके परिवार को किसी न किसी रूप में प्रताड़ित करते हैं।''[25]

महिला आत्मकथाओं की जीवनियों में वर्णित सामाजिक धारणाओं की आलोचना तथा प्रदर्शित आत्म ममत्व को गलत धारणा से प्रचारित करते हैं। इसका खामियाजा केवल नारी स्वयं ही नहीं भुगतती कई बार उसके परिवार तथा परिवार के सदस्यों को भी भुगतना पड़ता है।

परन्तु एक नारी द्वारा लिखा गया संस्मरण जो जीवन से संबंधित सत्यता के समीप होते हैं तथा सत्यता को जग जाहिर कर देते हैं, नारी के मान सम्मान तथा प्रतिष्ठा को भी बढ़ा देते हैं तथा समाज में उसे उच्च पद एवं समाज द्वारा सेवा प्रदान करने के लिहाज से राजनीतिक पहचान भी प्राप्त होने लगती है तथा धीरे–धीरे उसकी प्रसिद्धि उसे उच्च मुकाम हासिल करने में प्रेरणा स्रोत के रूप में पहचान दिलाती है।

उसे आदर्श व्यक्तित्व तथा संघर्षमय जीवन से मान–सम्मान व अधिकार प्राप्त करने वाली नारी के रूप में अन्य महिलाओं व नारियों के आदर्श प्रतीक का रूप परिलक्षित होता है। उसकी गरिमा व दायरा धीरे–धीरे बढ़ता जाता है।

3.2 महिलाओं की राजनीतिक स्थिति

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में महिलाओं की स्थिति समाज में कुछ सुधारने जैसी दिखाई देने लगी थी। अभिभावकों में जब संतान के प्रति भेदभाव की स्थिति उत्पन्न नहीं होती कि वह लड़का है या लड़की तो इससे समाज की सोच में एक बदलाव की स्थिति बनने लगती है। ऐसी ही स्थिति कुछ परिवारों में बनने लगी जो मध्यमवर्गीय परिवारों की श्रेणी में आते हैं। जब समाज या परिवार की सोच में इस प्रकार का बदलाव या परिवर्तन आता है तो यह दूरगामी परिणाम को प्रदर्शित करता है। जो विकास की लम्बी यात्रा का द्योतक माना जा सकता है। जब एक बालिका को बालकों के समान कुछ अधिकार भी प्राप्त हो जाते हैं तो इससे उसके आत्मसम्मान तथा आत्मबल को अन्तः प्रेरणा मिलती है कि वह भी एक परिवार, एक पिता, एक माँ की बेटी है तथा उसे यह साबित करना होता है कि वह भी किसी बेटे से कम नहीं है।

राजनीति में महिलाओं का दबदबा

जब एक बेटी अधिकार की प्राप्ति कर लेती है तथा शिक्षा के द्वारा पंख फैलाये उसके लिए उड़ान भरने के द्वार खोल देते हैं तो वह अपनी सीमित सीमाओं को लांघकर उँचाइयों को छूने के लिए स्वछंद होकर मुकाम हासिल करके ही दिखाती है।

इस सदी के आरंभ का जो मंजर समान सोच व दृष्टिकोण में दिखाई देता है जो एक सकारात्मक सोच की अभिव्यक्ति था। समाज में नारी का एक गरिमापूर्ण जीवन, स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जीने, विचारों की अभिव्यक्ति प्रदान करने तथा अपने निर्णय स्वयं लेने की स्वतंत्रता, प्रदान करने का पहला कदम था।

इसी के साथ जब संविधान द्वारा नारी को वोट देने तथा समाज में नारी की भूमिका को बढ़ाये जाने के लिए तथा उनके उत्तरदायित्व को निभाने के लिए आरक्षण की मांग उठने लगी तो इससे नारियों को एक शक्ति का आभास होने लगा कि हम नारियां किसी से कम नहीं हैं।

इस समय देश के कई उच्च पदों पर नारी की पहुँच ने यह सिद्ध कर दिया कि नारी घर परिवार के साथ संबंधों को निभाते हुए किसी भी पद को सुशोभित कर पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त करने की अधिकारिणी है।

महिलाओं को वोट देने का अधिकार

संविधान द्वारा वोट देने के अधिकार ने समाज में नारी को एक स्वतंत्र व पूर्ण वर्ग में लाकर खड़ा कर दिया जो पूर्णतः नारी के अस्तित्व, उसकी भागीदारी का प्रतिनिधित्व कर रहा था तथा समाज में एक बड़ा वर्ग बनाने, समाज में अपनी भागीदारी बढ़ाने, विकास तथा उन्नति के मार्ग में अपना सहयोग प्रदान करने के लिए कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए तत्पर दिखाई दे रहा था।

इस समय समाज में बालिकाओं को शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी थी तथा समाज में जो नारी अपनी स्वतंत्र पहचान बना रही थी, वह समाज तथा परिवार के आडम्बरों, गलत रीति–रिवाजों आदि का विरोध भी प्रकट करने लगी थी, अपने निर्णय स्वयं लेने लगी।

राजनीतिक स्तर पर, निम्न स्तर पर, पुरुषों से ज्यादा महिलाओं का वर्चस्व बढ़ने लगा था क्योंकि पुरुष के मुकाबले महिला उम्मीदवार काम के प्रति अधिक समर्पित दिखाई देती हैं तथा अपने कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह पुरुष के मुकाबले अधिक करती है। अधिकांश महिला अपने कार्य के प्रति समर्पित रहती है जो उन्नति व सबके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। नारी हमेशा समाज में सभी को साथ लेकर चलने तथा महिलाओं की परेशानियों व समस्याओं को प्राथमिकता के साथ हल करने की कोशिश करती है।

राजनीतिक पार्टियां भी इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के बाद तथा दो हजार एक के चुनाव से पहले अपने घोषणा पत्रों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने तथा उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न योजनाओं, वादे का उपयोग करने लगी। इसी के परिणामस्वरूप राजनीतिक स्थिति में बहुत बदलाव व परिवर्तन देखने को मिला।

संविधान द्वारा विभिन्न वर्गों व जातियों को समानता

''महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए तथा आधारभूत स्तर पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए सरकार द्वारा समय–समय पर कई प्रकार के कानून बनाये जो स्त्रियों तथा नारी को अधिकार प्रदान करने तथा समाज में उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए मील का पत्थर साबित हुए।''[26]

संविधान द्वारा विभिन्न वर्गों व जातियों को समानता के आधार पर बाँटा गया तथा आरक्षण की सीमा तय कर उनकी भागीदारी बढ़ाने के लिए विभिन्न

प्रकार की योजनाओं को बनाने तथा उन्हें उन्नति व विकास के लिए विशेष प्रकार के प्रावधान करने की न्यायालय द्वारा घोषणा की गई।

इसी प्रकार से जाति के आधार पर भेदभाव करने या लिंग के आधार पर भेदभाव करने पर सजा व दंड के प्रावधान किये गये। नारी जाति को सम्मान व अधिकार प्रदान करने के लिए विशेष उपबंधों का, संविधान में संशोधन किये।

विभिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा अपने–अपने क्षेत्रों के लिए विभिन्न प्रकार की विभिन्न योजनाएं जातिगत धर्म के आधार पर चलाने की घोषणाएं की जाने लगी तथा नारी की भागीदारी को समाज में बढ़ाये जाने पर अधिक से अधिक बल दिया जाने लगा। इसी के साथ जातिगत वर्ग के आधार पर छात्रवृत्तियां बढ़ाई गई तथा विभिन्न प्रकार की छात्रवृत्तियों की घोषणा राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार द्वारा की जाने लगी। जिससे समाज का पिछड़ा हुआ वर्ग शिक्षा प्राप्त कर पदानुसार समाज में अपनी सक्रिय भूमिका का निर्वाह कर देश की प्रगति में अपना योगदान दे सके।

पिछड़े वर्गों को जीवन की मुख्य धारा से जोड़ने की पहल

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा विभिन्न विश्वविद्यालयों में एस.सी./एस. टी. प्रकोष्ठ स्थापित करने को प्राथमिकता देकर पिछड़े वर्गों को जीवन की मुख्य धारा में जोड़ने की पहल की जाने लगी जिससे समाज का मध्यम व निम्न वर्ग शिक्षा प्राप्त कर समाज की सोच में बदलाव व परिवर्तन कर सके तथा इससे देश को सामाजिक व आर्थिक लाभ हो सके ।

केन्द्र सरकार द्वारा उच्च शिक्षा में एस.सी./एस.टी. वर्ग के लिए 22.5 प्रतिशत सीटों को आरक्षित किया गया। इसी प्रकार सरकारी नौकरियों आदि में भी आरक्षण प्रदान किये जाने से मध्यम, निम्न तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं को अपनी भागीदारी बढ़ाने का मौका मिलने लगा।

इस आरक्षण को बढ़ाकर 49.5 प्रतिशत कर दिया गया जब ओ.बी.सी. को 27 प्रतिशत आरक्षण देने की घोषणा की गई। यह घोषणा दो हजार छब्बीस तक बढ़ा दी गई।

इसी प्रकार से तमिलनाडू में उस राज्य की परिस्थितियों व स्थिति के अनुसार अठारह प्रतिशत एस.सी. को तथा एक प्रतिशत एस.टी. को आरक्षण प्रदान किया गया है।

इसी प्रकार से पूर्वोत्तर राज्यों में अस्सी प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

आन्ध्रप्रदेश में पच्चीस प्रतिशत शैक्षिक संस्थानों व सरकारी नौकरियों में आरक्षण प्रदान किया गया है जिसमें पन्द्रह प्रतिशत एस. सी., छः प्रतिशत एस. टी. तथा चार प्रतिशत मुस्लिमों को आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई है।

महिला आरक्षण बिल

दो हजार दस में नौ मार्च को महिला आरक्षण बिल पेश किया गया जिसमें पचास प्रतिशत महिला आरक्षण के लिए सुरक्षित रखने की बात की गई। गुजरात में सभी सरकारी नौकरियों में तैंतीस प्रतिशत महिला आरक्षण की व्यवस्था की गई है। तमिलनाडू में 3.5 प्रतिशत आरक्षण मुस्लिम व ईसाईयों के लिए की गई है।

इसी प्रकार से सरकार द्वारा व राज्य सरकार द्वारा एकल कन्या प्रोत्साहन के लिए कई प्रकार की योजनाएं तथा अभिभावकों को भी प्रोत्साहन दिया गया जिससे समाज में नारी की भागीदारी तथा मान सम्मान को बढ़ाया जा सके। इसी प्रकार आजादी व स्वतंत्रता की लड़ाई में भाग लेने वाले परिवार के बच्चों आदि के लिए विशेष प्रावधान किये गये। विकलांग व्यक्तियों व महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान किये गये।

खेलों में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न प्रोत्साहन योजनाएं लागू की गई। सैनिक परिवार तथा उनके बच्चों की पढ़ाई, अध्ययन आदि के लिए विशेष व्यवस्थाएं की जाने लगी।

विभिन्न प्रकार के विशेष विद्यालयों की स्थापना के साथ ही विशेष प्रकार के संस्थाओं की स्थापना की जाने लगी। इसी प्रकार बालिकाओं के लिए भी विशेष आवासीय विद्यालयों आदि की व्यवस्थाओं के प्रावधान किये जाने लगे।

सार्वजनिक क्षेत्र की नौकरियों को चार वर्गों में बाँटा गया। वर्ग ए, वर्ग बी, वर्ग सी तथा वर्ग डी तथा इन वर्गों के लिए भी प्रतिशतता के आधार पर निर्धारण किया गया।

1995 के आधार पर वर्ग ए का प्रतिशत 10.12, वर्ग बी का प्रतिशत 12.67, वर्ग सी का प्रतिशत 16.15 तथा वर्ग डी का प्रतिशत 21.26 था।

भारत में महिला शिक्षा का प्रतिशत पुरुषों के मुकाबले कम था। अतः इसे बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा बालिका व नारी शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाने लगा तथा अधिक से अधिक बल व समाज में जागरुकता के लिए कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाने लगा।

नारी द्वारा शिक्षा प्राप्त कर या अपना स्वतंत्र कारोबार व कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण कर लागू किया गया जिससे नारी अपने पैरों पर खड़ी होकर अपनी भागीदारी बढ़ा सके।

नारी को सबल प्रदान करने में महिला सशक्तिकरण ने समाज व देश में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। जिससे समाज में महिलाओं के साथ होने वाले अत्याचारों, प्रताड़ना, शारीरिक शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए एक दिशा प्रदान की जिससे महिलाओं में जागरुकता आई तथा वह स्वयं अपनी लड़ाई लड़ने

के लिए तैयार होने लगी। परिवार की जिम्मेदारियों को घर से बाहर रहकर भी संभालने लगी।

महिला सशक्तिकरण ने एक परिवार में महिला की प्राथमिकता तथा निर्णयों में भागीदारी को बढ़ाया।

इसी प्रकार से सरकारी स्तर पर नौकरियों में तथा निजी क्षेत्र में महिलाओं को अधिक से अधिक नौकरियों को प्रोत्साहन दिया जाने लगा क्योंकि महिलाएं कार्य करने के प्रति समर्पित रहती हैं।

राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन के द्वारा महिलाओं के लिए विभिन्न कौशलों को विकसित करने के लिए विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों का निर्माण किया गया जिससे महिलाएं आत्मनिर्भर बन सके।

यदि 2014 के तथ्यों पर एक नजर डालते हैं तो भारत का संसार में मूल्य 0.563 तथा स्थान 188 में से 130 हैं। इसी प्रकार से संसद में महिलाओं की भागीदारी 12.2 प्रतिशत है। 25 वर्ष से अधिक आयु की केवल 27 प्रतिशत महिलाएं ही उच्च शिक्षा की ओर जा रही है। जबकि 29 प्रतिशत महिलाएं अभी भी श्रमिक वर्ग के अन्तर्गत ही आती है।

2001 के वर्ष को भारत सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण वर्ग घोषित किया गया अर्थात् स्वशक्ति 2007 में राष्ट्रपति पद के लिए महिला प्रत्याशी प्रतिभा पाटिल का नाम घोषित किया गया जो प्रथम महिला राष्ट्रपति बनी तथा सर्वोच्च पद प्राप्त किया।

इसी प्रकार 4 जून 2009 को मीरा नायर को प्रथम महिला लोकसभा अध्यक्ष का पद प्रदान किया गया। इसी प्रकार विभिन्न चुनावों के नतीजों पर नजर डालते हैं तो कई आश्चर्यजनक तथ्य नजर आते हैं जिससे यह प्रदर्शित होता है जैसे

कोडासेरी पंचायत (केरल) में सभी महिलाएं हैं। इसी प्रकार वर्तमान में पाँच महिला मुख्यमंत्री हैं।

समाज में महिलाओं की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुआ है। यह प्रदर्शित करता है कि कहाँ तो महिलाएं घूंघट में रहती थी। फिर सलवार सूट पहनने लगी तथा वर्तमान में तो जीन्स टी–शर्ट तक पहनने लगी हैं। जिससे समाज की मानसिकता में बदलाव का शुभ संकेत माना जा सकता है।

लेकिन फिर भी भारत जैसे देश में ग्रामीण क्षेत्र अधिक हैं तथा शिक्षा व जागरुकता की बहुत कमी है। अंधविश्वास व रूढ़िगत सोच अभी भी कायम है जिसे बदलना संभव नहीं है। विशेष तौर पर महिलाओं को लेकर।

1992 में महिलाओं को भी भारतीय सेना में शामिल किया गया तथा 2015 में भारतीय वायुसेना में भी स्थान प्राप्त कर लिया। 2001 से 2011 के मध्य महिला साक्षरता मे 9.2 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई।

श्री महिला गृह उद्योग लिज्जत पापड़ सबसे ज्यादा प्रसिद्ध उद्योग बना। इसी प्रकार 2006 में किरण मजूमदार की 'बायोकॉन कम्पनी' पहली बायोटेक कम्पनी तथा सबसे अमीर महिला बनी। ललिता डी गुप्ते तथा कल्पना मारेपेनिया ऐसी भारतीय महिला थी जिन्होंने प्रसिद्ध फोर्ब्स पत्रिका तक में अपना नाम दर्ज कराया।

इसी प्रकार से सरकार द्वारा 'हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम' से 2005 में संशोधन कर महिला को भी संपति में बराबर का अधिकार प्रदान किया गया।

नारी सुरक्षा के लिए 2005 में 'घरेलू हिंसा सुरक्षा कानून', 2013 में कार्य स्थल पर शारीरिक शोषण के विरुद्ध कानून बनाया गया। 8 मार्च 2010 को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर महिला आरक्षण अधिनियम राज्य सभा द्वारा पारित

किया गया जिसके अनुसार संसद तथा संवैधानिक निकायों में महिलाओं की 33 प्रतिशत भागीदारी सुनिश्चित कर दी गई।

इस अधिनियम से समाज में महिलाओं की भागीदारी को बढ़ा दिया। अतः राजनीतिक स्तर पर पार्टियॉ महिलाओं सम्बंधी समस्याओं व उनके निराकरण के मुद्दों को अपने ऐजेण्डे में शामिल करने लगी। साथ ही पंचायतराज अधिनियम में एक तिहाई आरक्षण महिलाओं के लिए सुनिश्चित कर दिये जाने के कारण भी स्थानीय स्तर पर महिलाओं की भूमिका बढ़ाई जाने लगी तथा उन्हें जागरुक व प्रोत्साहित किया जाने लगा।

विभिन्न राजनीतिक दल चुनाव आयोग के द्वारा दिये जाने वाले दिशा निर्देशों के अनुसार महिलाओं को निश्चित सीट प्रदान की जाने लगी। जिससे पार्टियों के मध्य भी महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ होने लगी तथा स्वयं महिलाएं भी चुनाव क्षेत्रों में प्रचार–प्रसार के साथ–साथ क्षेत्र की समस्याओं को सुलझाने में रुचि दिखाने लगी।

इंदिरा गाँधी : एक प्रेरणा स्रोत

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति व सोच में बदलाव का अहम मोड़ तथा आदर के साथ जिसे बोला जाता है वह प्रथम भारतीय महिला प्रधानमंत्री ''इन्दिरा गांधी'' जो एक सशक्त महिला के रूप अपनी छवि दर्शाती है। इंदिरा गांधी महिलाओं के लिए आज भी एक प्रेरणा स्रोत है जो एक सशक्त राजनीतिक की भूमिका का निर्वाह कर रही थी तथा पुरुष के समान ही उनकी कार्यशैली थी। उसके पश्चात् कई भारतीय महिलाओं ने समाज के उच्च व वरिष्ठ पदों को सुशोभित किया।

जैसे दो हजार छः में किरण देसाई को ''बुकर पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया तथा जुम्पा लाहेड़ी को ''पुलत्जर पुरस्कार'' से सम्मानित किया गया।

विद्या मोहन छाबरियां जम्बो ग्रुप की चेयरपर्सन बनी। नीना लाल किदवई संयुक्त निदेशक बनी एच.एस. बी. सी की।

अरुणा राय द्वारा आर.टी. आई. कैम्पेन तथा मेधा पाटेकर द्वारा नर्मदा बचाव आंदोलन द्वारा महिलाओं को जागृत करने के साथ–साथ उन्हें नेतृत्व करने की क्षमता व दिशा भी प्रदान की।

'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' ने "बालिकाओं को समय से पहले शिक्षा अधूरी छोड़ने पर कुछ रोक लगाई जिससे साक्षरता का स्तर भी स्थानीय स्तर पर बढ़ने लगा। निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, बालिका शिक्षा को प्रोत्साहन तथा बालिकाओं, नारियों के लिए कई प्रकार की योजनाओं न्यायालय द्वारा कई ऐतिहासिक व महत्त्वपूर्ण निर्णयों से महिलाओं में सशक्तिकरण की अलख जगी तथा मीडिया द्वारा जब महिलाओं का साथ दिया गया तो इससे एक नयी क्रांति का आगाज हुआ तथा महिलाएं खुलकर समाज के सामने आने लगी।"[27]

जब एक महिला अपने परिवार को नियोजित तरीके से चला सकती है। कामकाजी महिला होने के साथ–साथ परिवार की देखभाल कर सकती है तो महिला किसी भी क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के द्वारा यह हासिल कर सकती है।

परन्तु महिलाओं के पिछड़ेपन का एक महत्त्वपूर्ण कारण उनकी असाक्षरता तथा जागरुकता की कमी और परिवार व समाज के प्रति उनका भावात्मक व संवेगात्मक लगाव होता है जो उन्हें उचित कदम उठाने से रोकता है। जिसके कारण वह खुलकर अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं कर पाती है।

एक नेतृत्वशील महिला तथा उच्च पद पर आसीन महिला एक परिवार में एक माँ, एक पत्नी के कर्तव्यों व दायित्वों से घिरी होने के कारण तथा अपने भावनात्मक पक्ष के कारण स्वयं को पुरुष से कम आँकती है। जिसके कारण ही पुरुष में अहंकार, घमण्ड आदि जागृत रहता है। परन्तु इसका कारण है– अपने

परिवार को न तोड़ना तथा संबंधों को जोड़े रखना होता है। वह अपने जीवन को अन्य के जीवन के साथ जोड़ते हुए जीना चाहती है यही उसकी कमजोरी बन जाती है।

वह अपने निर्णयों को स्वयं के दृष्टिकोण से न देखते हुए, परिवार, पति तथा बच्चों के दृष्टिकोण से देखती है। जो उसे कमजोर बना देते हैं। लेकिन परिवार व संबंधों की धुरी हमेशा एक नारी ही होती है तथा नारी ही रहेगी क्योंकि वही है जो एक नवीन जीवन को प्रदान करती है तथा उसे जीवन देती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में वर्तमान में कई अधिनियम, नियम आदि महिलाओं के पक्ष में बने हैं परन्तु भारतीय समाज में महिलाओं में कानून तथा अधिकारों के प्रति जागरुकता कम है साथ ही महिलाएं भावात्मक व संवेगात्मक पक्ष से अधिक सोचती हैं। इसी कारण वह पुरुषों से पूर्णरूप से मुकाबला नहीं कर पाती है या जीवन जैसा भी हो वह उसे स्वीकार कर लेती हैं।

यदि भारतीय परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक स्थिति में महिलाओं के स्थान व स्थिति पर विवेचना की जाये तो वर्तमान में महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में अपनी पहचान बना चुकी है। जैसे– सुषमा स्वराज, मायावती, जयललिता, वसुंधरा राजे, ये सभी राजनीतिक क्षेत्र में अपनी एक विशेष पहचान बना चुकी है। इसी प्रकार से कई कलाकार भी राजनीतिक क्षेत्र में अपनी पहचान बना चुकी है जैसे जयप्रदा, हेमामालिनी, शबाना आजमी आदि। ये सभी वे महिलाएं हैं जो किसी विशेष क्षेत्र में समाज व देश में अपनी एक पहचान बना चुकी थी तथा अपनी पहचान से ही राजनीतिक क्षेत्र में कदम रखा।

परन्तु हमें भारतीय क्षेत्र में महिलाओं की राजनीतिक क्षेत्र में भागीदारी व स्थिति देखना है तो हमें चुनावों की चर्चा करनी पड़ेगी। जिससे राजनीतिक स्थिति स्पष्ट होती है।

स्थानीय स्तर पर राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी निश्चित रूप से बढ़ी है। आज ग्रामीण क्षेत्र के साथ शहरी व अर्द्ध शहरी क्षेत्रों में महिला वार्ड पार्षद, सरपंच, जिला प्रमुख, महापौर जैसे पदों पर पहुँच चुकी हैं। परन्तु क्या उनकी यह स्थिति उनके स्वयं के आत्मसम्मान के लिए सही है? शायद यह कहना सम्भव नहीं है। पुरुषों से घिरे वातावरण में अपने आप को समायोजित करती हुई उनकी कुटिल व तीखे कटाक्ष शब्दों से स्वयं को कई बार अपमानित करती हुई, अपनी गरिमा व मर्यादा को अपने आँचल से ढकती हुई प्रतीत होती है। एक नारी द्वारा पद प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी पुरुषों के साथ कार्य करना तथा उनसे कार्य करवाना एक चुनौतीपूर्ण पथ होता है जिस पर चलना काँटो पर चलने के समान है।

अतः केवल पद प्राप्त कर लेने से पुरुष नारी के प्रति समर्पित या उसे सम्मान प्रदान करना अपना अपमान ही समझता है। एक नारी या महिला एक पुरुष को आदेश कैसे दे सकती है यह उसके लिए अपमान होता है। अतः राजनीति में नारी का पद पर बने रहना कठिन कार्य होता है।

वर्तमान समय में महिलाओं द्वारा वार्ड पार्षद, सरपंच जैसे पद तो प्राप्त कर लिये हैं लेकिन उनके सभी कार्यों में उनके परिवार के पुरुषों का ही हाथ रहता है। कई बार तो स्थिति इतनी विकट देखी गई है कि महिला सरपंच अपना घूंघट लेकर कार्य कर रही है तथा प्रशासनिक कार्य उनके पति द्वारा ही किये जा रहे हैं। वह केवल हस्ताक्षर करने के लिए ही सरपंच बनाई गई है। इसी प्रकार की स्थिति वार्ड पार्षद व अन्य पदों पर आसीन महिलाओं की है जहाँ उनके परिवार के पुरुष राजनीतिक स्थिति का पूरा लाभ उठाते हैं तथा महिला केवल मूक बधिर की भांति देखती रहती है। उसे स्वयं कुछ कार्य करने की इजाजत नहीं दी जाती है। वह मात्र एक कठपुतली की तरह पुरुष द्वारा प्राप्त आदेशों की पालना करती है।

अधिकांश राजनीतिक पार्टियाँ अपने फायदे के लिए उनका उपयोग कर रही हैं क्योंकि महिलाएं भावनाओं से जुड़ी हुई होती हैं तथा संबंधों में बंधी होने के कारण परिवार की मान मर्यादा, परिवार के सुख आदि कई कारणों से महिला पुरुष के आदेशों की पालना करने के लिए मजबूर कर दी जाती है तथा उसका फायदा हमेशा पुरुष उठाते हैं। शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार से पुरुष महिलाओं का फायदा लेना चाहता है।

विगत् कुछ वर्षों से भारतीय वातावरण टी.वी., मोबाइल तथा पाश्चात्य संस्कृति के कारण प्रदूषित होता जा रहा है। यह प्रदूषण धीरे–धीरे हमारी संस्कृति व सभ्यता को नष्ट कर रहा है। नारी को प्राप्त स्वछंदता उसे ही कलंकित कर रही है तथा मर्यादा खत्म होती जा रही है। पुरुष मानसिकता केवल शारीरिक शोषण तक सिमटती जा रही है। पुरुष केवल नारी का उपयोग किसी न किसी प्रकार से करना चाह रहा है। 2009 तक भी महिलाओं को प्राप्त सीटों का प्रतिशत केवल 10.9 प्रतिशत अर्थात् लगभग 11 प्रतिशत है।

सामान्य चुनावों में महिला प्रत्याशियों की जीत बहुत कम दिखाई देती है लेकिन 2009 के चुनावों में पुरुष प्रत्याशियों की अपेक्षा महिला प्रत्याशियों की जीत में 11 प्रतिशत की सफलता देखी गई जो पुरुषों से छः प्रतिशत के मुकाबले कहीं अधिक बेहतर परिणाम को प्रदर्शित करती है।

जिन राष्ट्रीय पार्टियों की कार्यकारिणी में महिला कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत हैं उन पार्टियों में महिला प्रत्याशियों की जीत का प्रतिशत बढ़ा है तथा आम नागरिक पुरुष की अपेक्षा महिला प्रत्याशी को प्रमुखता प्रदान कर रहा है।

इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि राष्ट्रीय स्तर के साथ–साथ स्थानीय स्तर पर भी महिला प्रत्याशियों को कुल सीटों की एक तिहाई सीटे प्रदान करने की कोशिश सफलता की ओर कदम बढ़ा रही है।

पुरुष की अपेक्षा महिला प्रत्याशियों की छवि कहीं अधिक साफ सुथरी तथा एक सफल कार्यकर्ता की वास्तविक परिस्थितियों में दिखाई दे रही है। महिला उम्मीदवार अपनी पार्टी के कार्यों तथा आम जनता द्वारा प्राप्त उत्तरदायित्वों को निभाने की कोशिश अवश्य करती है तथा सफल भी होती है।

मतदाताओं के रूप में महिलाओं की भागीदारी भी कम ही रहती है। 1999 के चुनावों में मतदाता रहित महिलाओं की भागीदारी कम थी परन्तु 2004 तक यह बढ़ गई। मतदाता के रूप में 1999 में महिलाओं की भागीदारी ज्यादा थी परन्तु 2004 में यह कम हो गई अर्थात् जब महिलाओं में जागृति आई तथा वह चुनाव के महत्त्व, उम्मीदवार के ब्योरे आदि के बारे में जानने लगी तो वह यह समझने लगी कि जो उम्मीदवार अच्छा तथा समाज के लिए उपयुक्त है उसे ही वोट दिया जाये जिसके कारण कई बार वह वोट देने से पीछे हटी क्योंकि उम्मीदवारों में कोई भी उम्मीदवार अच्छा व निष्पक्ष नहीं होता था।

सभी उम्मीदवार लगभग भ्रष्ट व राजनीतिक लोभ–लालच के कारण अपना फायदा देखते हैं।

यदि अन्यों पर नजर डालते हैं तो हम पाते हैं कि 1999 के चुनावों में स्थानीय स्तर के चुनावों के दौरान पार्टी के उद्देश्यों के प्रचार–प्रसार में महिलाएं अधिक उत्साही थी जबकि 2004 के चुनावों में यह प्रतिशत घट गया। इसका एक कारण पुरुषों के साथ कार्य करना तथा समय असमय घर से दूर कार्य करना है जिससे महिलाओं को परेशानियों का सामना करना पड़ता हैं इसी के कारण अन्य पार्टियों के सदस्यों द्वारा छींटाकशी करना, अपशब्द बोलना, अपमान करना आम बात है परन्तु एक महिला व स्त्री के तौर पर इस तरह की भाषा का उपयोग अशोभनीय है जो सामान्य तौर पर पुरुष करते हैं।

1999 के चुनावों के समय तक महिलाओं में जागरुकता व शिक्षा की कमी थी। अब परिवार की ओर से जिस सदस्य उम्मीदवार के लिए प्रचार–प्रसार किया

जाता था या वोट देने के लिए कहा जाता था, स्त्री उसे ही वोट दे देती थी परन्तु आगामी वर्षों में शिक्षा व जागरुकता के कारण महिलाएं राजनीतिक की ओर अग्रसर तो हुई परन्तु स्थानीय स्तर पर उनकी भागीदारी कम होने लगी।

महिलाएं इस बात को समझने लगी कि यह राजनीतिक एक दलदल है तथा इसमें अपने दामन पर कीचड़ भी सहना पड़ता है। साथ ही परिवार व अन्य लोगों का आक्रोश तथा अपमान भी सहना पड़ता है। अतः केवल वही महिलाएं राजनीतिक में अधिक सक्रिय रही जिनके परिवार की आर्थिक स्थिति समाज में अधिक सुदृढ़ थी या जो स्वयं राजनीतिक पृष्ठभूमि से संबंधित थी।

यदि उच्च स्तरीय संगठन में प्रचार–प्रसार व भागीदारी पर अपना दृष्टिकोण देखा जाये तो 1999 में महिलाओं की भागीदारी कम थी लेकिन 2004 तक यह भागीदारी सात प्रतिशत तक बढ़ी हुई देखी गई अर्थात् पार्टी संगठन में उच्च स्तर पर महिलाओं की भागीदारी बहुत अधिक बढ़ी। इसका कारण महिलाओं की उच्च शिक्षा, कानून की जानकारी, विभिन्न संस्थाओं, स्वयंसेवी संगठनों का सहयोग, समाज व परिवार द्वारा प्रोत्साहन तथा राजनीतिक स्थिति से परिवार व अन्यों को मिलने वाले लाभों को जानने तथा सरकार से अधिक से अधिक लाभ कमाने के कारण महिला उम्मीदवारों का योगदान बढ़ने लगा।

सम्पन्न घरानों की बेटियां व बहुएं राजनीतिक स्तर पर अपनी पहचान बनाने के लिए भागीदारी बढ़ाने लगी जिससे उन्हें अधिक से अधिक सामाजिक व राजनीतिक लाभों की प्राप्ति हो सके।

राजनीतिक पार्टियों को धन की आवश्यकता होती है। अतः बड़े घरानों व सम्पन्न परिवारों द्वारा उनकी धन की आवश्यकता की पूर्ति आसानी से कर दी जाती है तथा समाज में ऐसे परिवारों की पहचान सामान्य तौर पर होती है। जिसके कारण उन्हें वोट प्राप्त करने के लिए अधिक श्रम व धन की आवश्यकता नहीं होती साथ ही समाज में चिर परिचित व्यक्ति को यदि उम्मीदवार बनाया जाता है तो

जीत की उम्मीद कहीं अधिक हो जाती है साथ ही वह महिला प्रत्याशी हो तो पुरुष वर्ग सहानुभूतिवश उसका सहयोग देने को तत्पर हो जाता है।

राजनीतिक पृष्ठभूमि व बड़े घरानों की महिलाएं आम जनता व स्थानीय लोगों को आसानी से वोट देने के लिए मना लेती है। यही कारण है कि उच्च स्तर पर महिलाओं की भागीदारी निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसी का परिणाम है कि पश्चिमी बंगाल में ममता बनर्जी, कर्नाटक में जयललिता, राजस्थान में वसुन्धरा राजे, भारतीय स्तर पर सोनिया गाँधी, मेनका गाँधी, प्रतिभा पाटिल आदि कई महिलाएं राजनीति के शीर्ष पदों को धारण किये हुए सफलतापूर्वक दायित्वों व कर्तव्यों का निर्वाह कर रही हैं। स्थानीय चुनावों में महिला मतदाताओं की भागीदारी पुरुषों से हमेशा ही कम रही है।

यदि कोई भी उम्मीदवार प्रत्याशी या पार्टी महिला व स्त्रियों के सम्मान, अधिकारों, पुनस्थान, साझेदारी, समानता को महत्त्व प्रदान नहीं करेगी तो उसकी स्थिति विकट हो जायेगी अर्थात् भविष्य की कल्पना में महिलाओं का योगदान निरन्तर बढ़ता जा रहा है लेकिन पारिवारिक, सामाजिक कारणों व बंधनों से बंधी होने तथा संस्कार, परम्पराओं को अपनाये हुए वह मुक्त रूप से अपनी यात्रा करने में अभी भी असमर्थ है। भारत में अधिकांश महिलाएं वोट तो देना चाहती है परन्तु राजनीति की जानकारी उन्हें नहीं है। यदि कुछ जानकारी है तो उम्मीदवार या प्रत्याशी के बारे में उन्हें कोई जानकारी वास्तविक रूप से नहीं होती है केवल परिवार या अन्य सदस्यों के द्वारा प्राप्त ज्ञान या उनकी मनोवृत्ति के अनुसार ही वोट दे देती है।

इसी प्रकार से एक नारी की परिवार में स्थिति तथा उसका स्वयं के निर्णय लेने की क्षमता भी प्रभावित करती है। शहरी क्षेत्र में अस्सी प्रतिशत महिलाएं राजनीति में भाग लेना चाहती हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्र में महिलाएं सामाजिक व पारिवारिक बंधनों में बंधी हुई हैं लेकिन पारिवारिक व राजनीतिक कारणों से उन्हें

राजनीति में उतारा जाता है तथा उन्हें केवल कठपुतली के तौर पर उपयोग में लाया जाता है। उनका स्वयं का कोई महत्व या मत नहीं होता है उन्हें निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होती है।

इसी प्रकार अधिकांश महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में आना तो चाहती है परन्तु उच्च स्तरीय राजनीति से दूर ही रहना चाहती है क्योंकि उन्हें लगता है कि उसके लिए उनका परिवार तैयार नहीं होगा। उन्हें स्वतंत्र या कार्य करने की आजादी प्राप्त नहीं होगी तथा उनके राजनीतिक क्षेत्र के कार्यों से पारिवारिक कार्यों में बाधा उत्पन्न होगी जिसका भुगतान उसे ही चुकाना होगा।

इसी प्रकार से महिलाएं वोट देने के लिए तैयार रहती है परन्तु उन्हें स्वयं निर्णय लेकर वोट देने का अधिकार परिवार द्वारा कम ही प्राप्त होता है। उच्च शिक्षित या सम्पन्न परिवारों से संबंधित महिलाएं निर्णय लेने के लिए कुछ स्वतंत्र तो होती हैं पर उन्हें भी नियमों में बांधकर रखा जाता है तथा परिवार के कार्यों की जिम्मेदारी व उत्तरदायित्व उन्हें ही पूर्ण करना होता है चाहे वह राजनीतिक क्षेत्र में कार्य ही क्यों न कर रही होती है।

राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करने का कोई निश्चित समय नहीं होता है तथा राजनीतिक क्षेत्र के व्यक्ति का घर भी एक प्रकार से कार्य स्थल बन जाता है। लोग अपने कार्यों के लिए सीधे उनके घर की ओर प्रस्थान करने लगते हैं तथा समय–असमय उनके कार्य करवाने के लिए घर तक पहुँच बनाते हैं इससे उनके पारिवारिक कार्य प्रभावित होते हैं, परिवार के सदस्य व आम जनता के मध्य सामंजस्य व तालमेल बनाये रखना एक कठिन कार्य हो जाता है। एक महिला के लिए स्थिति अधिक विकट तक बन जाती है जब एक पुरुष या पुरुष वर्ग किसी तथ्य या कारण पर उसका विरोध प्रदर्शन करने लगते हैं तथा उसके कार्यों व चरित्र पर संदेह व्यक्त करने लगते हैं तब कई बार तो स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि लोग गाली गलोज, अभद्र व्यवहार तथा मारा–मारी तक कर जाते हैं जिससे

एक नारी की गरिमा धूमिल होती है तथा उसके मन का आघात पहुँचता है। इससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा भी धूमिल होती है।

उच्च शिक्षित या सम्पन्न परिवार की महिलाओं की स्थिति कुछ खास अच्छी नहीं है उन्हें राजनीतिक लाभ के लिए व्यवसाय या कारोबार में उन्नति या विकास तथा कई बार धन या सम्पदा के लालचवश राजनीति क्षेत्र में जाने की छूट दी जाती है। जिससे पारिवारिक कार्य सरकारी क्षेत्र में आसानी से करवाये जा सके। अतः यहाँ भी महिलाओं का शोषण किया जाता है।

उच्च स्तरीय क्षेत्र में महिलाएं परिवार की मान व प्रतिष्ठा से जुड़ी होती है अतः वह भी अपनी भावनाएं व पीड़ा को खुलकर उतना व्यक्त नहीं कर पाती है बल्कि आधुनिकता व दिखावेपन के कारण इनकी स्थिति हमेशा मानसिक द्वन्द्व की बनी रहती है तथा मानसिक तौर पर शोषण का शिकार रहती है।

हम कह सकते हैं कि दक्षिणी भारतीय क्षेत्र की महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र की ओर अधिक रुचि रखती है उसका कारण उनकी जागरुकता तथा उच्च शिक्षित या शिक्षित होना है जबकि पूर्वी तथा पश्चिमी क्षेत्र की महिलाओं की भागीदारी कुछ कम है तथा उत्तरी भारतीय क्षेत्र में महिलाओं का राजनीतिक क्षेत्र की ओर रुझान सबसे कम है। इसका कारण पर्वतीय क्षेत्र, आतंकवाद, शिक्षा की कमी, उच्च शिक्षा की कमी, विकास की कमी तथा पारिवारिक आर्थिक स्थिति है। जिसके कारण अधिकांश महिलाएं इस क्षेत्र से दूर रहना पसंद करती है। इस क्षेत्र में अधिकांश महिलाएं घरेलू कार्य के साथ–साथ व्यवसाय आदि का भी कार्य करती हैं इसका कारण पर्यावरणीय परिस्थितियां व विषमताएं है जिसके कारण अधिकांश महिलाओं की सोच परिवार तक ही सीमित रह जाती है।

जबकि पूर्वी क्षेत्र की स्थिति भी लगभग ऐसी है। अधिकांश महिलाएं साक्षर तो है परन्तु शिक्षित नहीं, यदि शिक्षित है तो सोच व जागरुकता की कमी हैं या आत्मविश्वास की कमी है।

कई बार उच्च शिक्षित महिलाओं के व्यक्तित्व में कुछ कमियां होती हैं जिसके कारण भी महिला संघर्ष करने से पीछे हट जाती है या अपनी बात सही प्रकार से नहीं रख पाती, कहने से या कुछ करने से डरती है। उनके अन्दर एक डर या भय समाया हुआ होता है जिसके कारण वह जीवन को खुलकर नहीं जी पाती।

समाज में जो महिलाएं शिक्षित तथा जागरुक हैं उनकी भागीदारी चुनाव अभियान के दौरान निम्न स्तर पर कम होती है तथा उच्च स्तर की ओर जाने के लिए वह अपनी अधिक भागीदारी करते हैं जैसे घर–घर जाकर चुनाव व पार्टी की जानकारी देना, आम जनता से अधिक से अधिक मिलना तथा उन्हें वोट देने, समाज की समस्याओं को सामाजिक पटल पर लाने के लिए प्रोत्साहित करना, सामाजिक कार्यों में अधिक से अधिक भागीदारी निभाना आदि।

जबकि कम शिक्षित महिलाएं अपने स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित रहना चाहती है। अतः उनकी इच्छा राजनीति के क्षेत्र में आगे जाने की न होकर केवल स्थानीय क्षेत्र के विकास व उन्नति की होती है। इस प्रकार की महिलाएं अपने घर–परिवार से जुड़ी हुई होती है तथा उनकी प्राथमिकता घर के साथ–साथ उन महिलाओं की सहायता करना भी होता है जो सामाजिक व आर्थिक तौर पर सक्षम नहीं होती है। इस प्रकार की महिलाएं अपने क्षेत्र की महिलाओं से संबंधित समस्याओं व परेशानियों को दूर करने के लिए तथा सामाजिक कार्यकर्ता के तौर पर अपने आप को प्रदर्शित करना चाहती है। इनकी सामाजिक व राजनीतिक तौर पर ज्यादा अपेक्षाएं नहीं होती हैं। इस प्रकार की महिलाएं नवासी प्रतिशत हैं जो स्थानीय क्षेत्र में ही कार्य करना चाहती है केवल ग्यारह प्रतिशत महिलाएं ही अपने क्षेत्र का विस्तार करने हेतु उच्च राजनीतिक क्षेत्र की ओर अग्रसर होना चाहती है।

सत्तर प्रतिशत महिलाएं राजनीतिक चुनाव अभियानों में मीडिया का जोखिम कम उठाने को तैयार होती है। उनकी स्वयं की मान मर्यादा आदि का उन्हें अधिक

मोह होता है जबकि तीस प्रतिशत महिलाएं इस प्रकार का जोखिम उठाने को तैयार होती है अर्थात् अखबार, पत्र–पत्रिकाओं में उनके बारे में क्या छापा जायेगा तथा उसका प्रभाव सामाजिक व पारिवारिक मामलों पर क्या पड़ेगा, उससे उनकी छवि पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसके बारे में वह ज्यादा विचार नहीं करती है।

पचासी प्रतिशत महिलाएं चुनाव अभियान के दौरान मीडिया से दूर ही रहना चाहती है अर्थात् उन्हें किसी भी प्रकार का प्रचार–प्रसार में अपने नाम व पद का उपयोग पसंद नहीं आता है या एक अजीब सा भय या डर से ग्रसित होने के कारण वह इन सब से दूर ही रहने की कोशिश करती है। केवल पन्द्रह प्रतिशत महिलाएं ही ग्रामीण क्षेत्र की ऐसी होती है जो मीडिया के द्वारा प्रचार–प्रसार में सहयोग करती है जिससे मान मर्यादा, प्रतिष्ठा व नाम प्रसिद्धि में विस्तार हो।

कम्प्यूटर व इन्टरनेट तथा विभिन्न माध्यमों के द्वारा संबंधों को बढ़ावा देने में केवल इक्कीस प्रतिशत महिलाएं होती हैं जो उच्च शिक्षित या पद प्राप्त होती हैं। ग्रामीण क्षेत्र की केवल तेरह प्रतिशत महिलाएं ही कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि के द्वारा विभिन्न संबंधों को जोड़ने में सहयोग प्रदान करती है।

ग्रामीण व शहरी क्षेत्र की महिलाओं की चुनाव अभियान के दौरान भागीदारी लगभग एक सी ही होती है। केवल अन्तर कुछ महिलाएं राजनीतिक क्षेत्र में आगे की ओर अग्रसर होना चाहती है। अतः वह विभिन्न माध्यमों व संबंधों का उपयोग करती है। जिससे उन्हें नाम प्रसिद्धि तथा समाज में एक छवि प्राप्त हो सके।

जो महिलाएं कामकाजी या नौकरीपेशा होती है उनमें अठत्तर प्रतिशत महिलाएं निम्न या स्थानीय स्तर पर ही चुनाव अभियान में अपना योगदान देती है जबकि बाईस प्रतिशत महिलाएं इससे उच्च स्तर तक अपना योगदान प्रदान करने के लिए तत्पर रहती हैं।

जो महिलाएं बेरोजगार या घरेलू होती है वह बयासी प्रतिशत अपनी भागीदारी चुनाव अभियान में स्थानीय क्षेत्र में रहकर ही प्रदान करना चाहती है जबकि अठारह प्रतिशत महिलाएं इनमें से ऐसी है जो घरेलू या बेरोजगार होते हुए भी उच्च स्तर की चुनाव अभियान में भागीदारी प्रदान करने की इच्छुक होती हैं।

यदि भारत के प्रमुख चार क्षेत्रों की स्थिति देखते हैं तो सबसे कम भागीदारी पूर्वी क्षेत्र की जबकि यहाँ की इकतीस प्रतिशत महिलाएं उच्च स्तर की ओर जाने की इच्छा ज्यादा रखती है।

पश्चिमी, उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्रों में निम्न स्तर चुनाव अभियान में भागीदारी लगभग समान ही है परन्तु पश्चिमी भारत की महिलाएं उच्च स्तर के चुनाव अभियान में कम भागीदारी की इच्छा रखती है। इसका प्रमुख कारण इस क्षेत्र में महिला शिक्षा की कमी, जागरुकता की कमी, आत्मविश्वास की कमी, सामाजिक व पारिवारिक बंधनों की अधिकता तथा परिवारों में पुरुष प्रधानता व पुरुष निर्णय क्षमता का अधिक होना है जिससे महिलाएं पूर्ण स्वतंत्रता के साथ सामाजिक कार्यों व चुनावों में भाग नहीं ले पाती हैं।

इस प्रकार यदि हम सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को देखते हैं तो स्थानीय स्तर पर तो हमें फिर भी महिलाओं की भागीदारी प्राप्त हो रही है। लेकिन राज्य स्तर व देश स्तर पर या उच्च स्तरीय पदों पर महिलाओं की भागीदारी केवल कुछ प्रतिशत ही है।

इसका प्रमुख कारण मानसिकता व सोच है जब तक पुरुष स्त्री को समानता या बराबर का अधिकार प्रदान नहीं करेगा तथा स्त्री सामाजिक बंधनों से उपर नहीं उठेगी तब तक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं होगा।

खेलों द्वारा राजनीति में पहचान

दो हजार एक में मैरीकोम को जब अन्तर्राष्ट्रीय गैर पेशेवर मुक्केबाजी संघ की प्रतियोगिता के लिए चुना गया तो वह भारत के पटल पर अपने आप को पाने लगी तथा इस प्रतियोगिता में रजत पदक जीतने पर भी जो सम्मान उन्हें मिला उससे उनका गौरव बना। दो हजार तीन में अर्जुन पुरस्कार के लिए चुना जाना तथा दो हजार पॉच में मणिपुर सरकार द्वारा सब इंस्पेक्टर के पद पर नियुक्ति ने उनकी सामाजिक स्थिति व राजनीतिक स्थिति को दर्शाता है। वर्ष दो हजार छः में 'पद्म श्री' और दो हजार नौ में उन्हें देश के सर्वोच्च खेल सम्मान 'राजीव गांधी खेल रत्न पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।

मणिपुर में एक रोड का नाम मैरीकोम

लन्दन ओलम्पिक में पदक जीतने पर उन्हें पुलिस सुपरिटेन्डेन्ट (खेल) के पद पर नियुक्ति देना तथा एम.सी. मैरीकोम मुक्केबाजी अकादमी स्थापित करने के लिए तीन एकड़ जमीन आवंटित की गई। इसके पश्चात् कई फिल्मी हस्तियों से मिलना उद्योगपतियों से मिलना तथा विज्ञापनों में आना। विभिन्न प्रकार के प्रस्तावों का आना राजनीतिक स्तर पर एक पहचान है।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी अपनी बीमारी से नहीं राज्य के मुख्यमंत्री के उस निर्णय से चिंतित है जो 'महिला मण्डल योजना' को खत्म करने के लिए उठाया गया कदम है। इस निर्णय के खिलाफ माँ ने अपने सहकर्मियों के साथ आंदोलन छेड़ रखा है। धीरे–धीरे सहकर्मी साथ छोड़ जाते हैं और माँ को गिरफ्तार कर लिया जाता है। माँ एक को अहिंसक और दूसरे को हिंसक कहती है। आत्मकथाओं से ज्ञात होता है कि पुरुष समाज स्त्री जाती की उन्नति या विकास को देख नहीं पाता तथा अनावश्यक तरीकों से उसे रोकने की कोशिश करता है। यह दृष्टान्त राजनैतिक स्तर पर महिलाओं की मनोदशा का चित्रण करता है।

साहित्य में राजनीति

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी दो लेखक समारोह का जिक्र करती है। दूसरा समारोह कलकत्ते का कथा–समारोह था जो सन् 1965 में आयोजित हुआ था। जिसमें कथाकारों के बीच वाली पीढ़ी ने योजनाबद्ध तरीके से पुरानी पीढ़ी को ध्वस्त करने का कार्य किया। इसे मन्नू जी ने ''साहित्य में राजनीति'' माना है।

सरकार का हास्यास्पद कदम : आपातकालीन राजनीति

आपातकाल की घोषणा तथा सिक्ख विरोधी दंगों के दौरान दिनमान के संपादक रघुवीर सहाय द्वारा आपातकाल का समर्थन करने पर उनकी छुरी हीनता और कायरता पर टिप्पणी करना राजनीतिक अस्थिरता को स्पष्ट करता है। धर्मवीर भारती की दो कविताओं पर भी स्पष्टरूप से टिप्पणी करती हुई लेखिका उन्हें भी भीरूता तथा छुरीहीनता के कटघरे में खड़ा कर देती है। इस प्रकार सिक्ख विरोधी दंगों के दौरान अपने दृष्टान्त को बिना किसी पूर्वाग्रह तथा पक्षपात के लेखिका ने कहा–''सरकार का काम तो होता है कि अमन और चैन के लिए सख्त से सख्त कदम उठाए पर यहाँ तो सरकार की ओर से ही मिट्टी के तेल के कनस्तर बॉटे जा रहे थे आग लगाने के लिए।''[28]

भारतीय दूतावास में राजनीति

इस प्रकार उन्होंने इस बात का भी जिक्र किया है कि भारतीय दूतावास सही जानकारी देने के अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं करता है। इसी प्रकार भारत से जाने वाली प्रख्यात लेखिका 'महाश्वेता देवी' भी भारतीय समाज की विकृतियां प्रस्तुत करती हैं। अच्छाइयों का बयान नहीं करती।

जातिगत राजनीति

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान ने कलकत्ता के छात्र जीवन का जो प्रस्तुतीकरण दिया है उसके अनुसार बंगाली मारवाड़ियों को शोषक मानते थे तथा उन्हें प्रायः यह सुनाया जाता था कि– ''तुम मारवाड़ियों के कारण हमारा बंगाल खाक हो गया। नक्सलवाद के तांडव भय को उन्होंने देखा व सहा चारों ओर बर्बरता, हत्या और पशु से पशुकर होने का सिलसिला जारी है। लेखिका कहती है सिद्धार्थ शंकर राम की सरकार ने (1972–77) तक दमन, उत्पीड़न और जेल भरो का चक्र चलाया।''[29]

3.3 पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियां

यदि हम सामाजिक या समाज की बात करते हैं तो पाते हैं कि एक समाज में हमेशा से ही पुरुष का वर्चस्व रहा है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण उसकी शारीरिक संरचना तथा कार्यक्षेत्र के अनुसार शारीरिक परिश्रम कर जीवन यापन की व्यवस्था करना रहा है तथा एक स्त्री द्वारा घर व परिवार की देखभाल अच्छी प्रकार से व व्यवस्थित रूप से करने के कारण ही उसे गृहलक्ष्मी का रूप दिया गया है।

प्राचीन काल से ही समाज में पुरुष का वर्चस्व रहने का एक कारण उसका पौरुषत्व है वह अपने पराक्रम व कौशल द्वारा हमेशा अपने वर्चस्व को प्रदर्शित करता आया है। जबकि एक स्त्री की छवि हमेशा से कोमल, भावुक, श्रृंगार युक्त, सौन्दर्यात्मक रही है। इसका कारण भी उसमें समाहित प्रेम, स्नेह, करुणा, वात्सल्य रहा है। जिसके द्वारा वह एक परिवार का सृजन कर उसे पीढ़ी प्रदान करती है।

इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि समय–समय पर कई स्त्रियों ने अपने पराक्रम व कौशल द्वारा पुरुष के अभिमान व गर्व को तोड़ते हुए पुरुषत्व जैसा मान सम्मान प्राप्त किया है और उसे पुरुष ने स्वीकार भी किया है परन्तु यह केवल कुछ अपवाद स्वरूप ही है।

पुरुष प्रधान समाज हमेशा से स्त्री को केवल स्त्री के रूप में देखता आया है तथा वह केवल उपभोग की वस्तु मात्र हैं तथा उसका कार्य केवल पति को खुश करना, बच्चों की देखभाल करना तथा घर के कार्य करने तक ही सीमित है।

स्त्रियां हमेशा से पर्दा प्रथा के प्रचलन में ही रही है परन्तु धीरे–धीरे इसमें बदलाव आया तथा इक्कीसवीं सदी की महिला तो पुरुष के समान पोशाक पहनने लगी है तथा राजनीति में भी कार्य करने लगी है। वह पुरुष के समान हर क्षेत्र में अपनी योग्यता सिद्ध कर रही है। परन्तु भारतीय समाज में जागरुकता की कमी तथा मानसिकता, सामाजिक पर्यावरण इस प्रकार का है कि हम केवल आदर्शों की बात करते हैं तथा कल्पना में ही रहते हैं जबकि ज़मीनी हकीकत कुछ ओर ही है।

कथनी–करनी में अंतर

''राजनीतिक क्षेत्र में भी नारी शोषण, अत्याचार में पीछे नहीं है। राजनीतिक नेतागण नारी उन्नति, नारी स्थिति सुधार,नारी समानता की बातें करती हैं। मगर उनका व्यवहार विपरीत होता है। उनकी कथनी–करनी में काफी अंतर होता है।

दलित समाज की उन्नति सुधार की बातें करने वाले अम्बेडकर जी विचारधारा के कार्यकर्त्ता सहयोगी महिला कार्यकत्री कौसल्या बैसंत्री को जबरन भोगना चाहते हैं। उनका पति विद्यार्थी आन्दोलन से सक्रिय रूप से जुड़ा हुआ होने पर भी पत्नी पर अत्याचार करता है। समाज को शोषण–अत्याचार से मुक्त करने के लिए संघर्ष करने वाला देवेन्द्र कुमार पत्नी के साथ न्याय नहीं करता।''[30]

औरत के प्रति सोची समझी राजनीतिक परम्परा

''राजनीति में आए नेताओं का औरत के प्रति अजीब सा रवैया होता है। अगर स्त्री उनकी पेशकश को ठुकरा दे और उन्हें टका–सा जवाब दे दे तो वे उसके विरूद्ध चरित्र हीनता का प्रचार करने लगते हैं। राजनीति में औरतों को जलील करने की सोची समझी परम्परा है कि जिसको इनकार करो वह यह कहते

हुए घूमने लगता है मेरे तो पीछे पड़ी थी, बड़ी मुश्किल से मैंने दूसरे को सौंपकर उससे पीछा छुड़ाया है।''[31]

राजनीति शारीरिक शोषण का कटघरा

राजनीति नारी शोषण का कटघरा है। राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाली नारी को भोगने की इच्छा नेतागण रखते हैं। उनकी वासनांध दृष्टि से अपने आप को बचाये रखना नारी के लिये कठिन सिद्ध होता है। अपने वश में न आने वाली नारी के सम्बन्ध में नेतागण उस नारी की बदनामी का गंदा खेल खेलते है। पुरुषों में औरतों को लेकर प्रायः यह भाव भी होता है कि वह उसके साथ जा सकती है, तो मेरे साथ क्यों नहीं आयेगी?''[32]

राजनीति में आने वाली औरत 'कलेवा'

''स्त्री राजनीतिज्ञों के प्रति पत्रकारों का भी एक अजीब सा रवैया होता है। वह भी बहती गंगा में हाथ धोने से नहीं चूकते... राजनीति में आने वाली औरत को हर कोई 'कलेवा' ही मानता है जिसे भूख लगने पर खाने का उन लोगों ने स्व–अर्जित अधिकार प्राप्त कर रखा है। अखबारों में छपने की नेताओं की इच्छा का वे खूब दोहन करते हैं। इसमें पुरुष और महिला दोनों का समान दोहन होता है– "पुरुषों का आर्थिक दोहन होता है तो स्त्रियों का दैहिक दोहन होता है।''[33]

राजनीति में दलालों का जाल

"नेताओं के यहाँ पर औरतों को फुसलाने और फसाने के लिए विधिवत दलाल होते हैं जो केवल औरतों को डिमॉरेलाइज और हस्तोत्साहित करने में माहिर होते हैं, ताकि राजनीति में आई स्त्रियां इनकी शर्तों पर विवश हो जाएं।''[34]

राजनीति में आने वाली स्त्रियां 'फार ग्रांटिड'

"बुर्जुआ पार्टियों की राजनीति में लोग स्त्रियों को 'फार ग्रांटिड' लेते हैं। वे सामने तो उनकी बहादुरी की तारीफे करेंगे, मुँह पर प्रशंसा के पुल बांधेंगे, स्वेच्छाचारिता को जायज ठहरा कर, स्वेच्छाचारी बनने के लिए उकसाएंगे, फिर पीठ फेरते ही उसे कुलटा कहकर उस पर अश्लील शब्दों की बौछार कर देंगे। अपने परिवार की महिलाओं को वे इस डर से उनके सम्पर्क में नहीं आने देते कि कहीं वे भी न बिगड़ जाये।"[35]

शारीरिक शोषण : ऊपर जाने की राजनीतिक सीढ़ी

रमणिका गुप्ता राजनीति में आने वाली औरतों की मानसिकता स्पष्ट करती हुई कहती है–"राजनीति में उन दिनों अधिकांश औरतें सामन्ती परिवार से आती थी। कुछ पिछड़े परिवारों की थीं। ये औरतें यौन शोषण का प्रतिरोध नहीं कर पाती थी। बड़े परिवारों की औरतों को अपने परिवार से सुरक्षा मिलने के कारण उन्हें केवल बड़े लोगों को खुश करना होता है। कई मामलों में अपने परिवार वालों या पति की देख रेख में वे ऐसा करती है। उनके परिवार की सीधी पहुँच उच्च नेताओं तक होती है। पिछड़े परिवारों की औरतें छुटभैयों के माध्यम से बड़े लोगों के सम्पर्क में आ पाती है। कईयों के पति और पिता भी इसमें साथ देते है। वे इन शोषण को ऊपर की सीढ़ी मानते हैं।"[36]

अखबार (मीडिया) की घटिया मानसिकता

"अखबार वाले फिल्मी सितारों की तरह हर स्त्री को भी किसी न किसी नेता से जोड़ते रहते है।"[37]

भारतीय समाज में कितना ही बदलाव आ जाये। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीक कितनी ही विकसित हो जाये। हम कितने ही पाश्चात्य संस्कृति को अपना ले, लेकिन पुरुष की मानसिकता एक स्त्री के प्रति सम्मान व आदर की नहीं होगी।

एक पति अपनी पत्नी को अर्द्धांगिनी मानकर तथा जब तक उसे समानता का दर्जा प्रदान नहीं करेगा हमारा समाज और मीडिया भी घटिया मानसिकता से मुक्त नहीं हो पायेगा।

वामपन्थी पार्टियों की पूर्वाग्रही सोच

''वामपन्थी पार्टियों में प्रायः औरतों के प्रति वर्जनाएँ, तर्जनाएँ और ग्रंथियाँ नहीं पाली जाती। एक स्वाभाविक सा वातावरण रहता है। वहाँ दोषारोपण या चरित्र हनन के बजाय मिलकर काम अधिक होता है। वैसे वहाँ पर भी औरतों के प्रति कुछ पूर्वाग्रह होते हैं, परन्तु पार्टी में नहीं।''[38]

नारी ही नारी की दुश्मन

''पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था और राजनीति के कारण नारी पुरुष के हाथ का खिलौना बन कर काम करती है। राजनीति में पहले से आई स्त्रियाँ नई आने वाली स्त्रियों पर कीचड़ उछालकर जाने–अनजाने पुरुषों का हथियार बन जाती है। वे भी कीचड़ उछालने में पुरुषों से कम नहीं रहती है। पढ़ी–लिखी औरतें भी कीचड़ उछालने से गुरेज नहीं करती है। किसी उभरती हुई स्त्री नेता पर कीचड़ उछाल दो, फिर वह काबू में आ ही जायेंगी। ब्लैक मेल के ऐसे हथकंडे अपनाने में पुरुषों को देर नहीं लगती है। ऐसे लोगों के विरुद्ध मुझे काफी मोर्चा लेना पड़ा।''[39]

नारी जागरण का समय

शिक्षा प्रसार, राजनीतिक आजादी, आर्थिक स्वावलम्बन समाज सुधारकों और नेताओं के प्रयास से युगों–युगों से परावलम्बन, दमन, शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्यायी रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं के कुचक्र में फँसी नारी में जागृति, चेतना निर्माण हो रही है। वह सार्वजनिक मंच पर सक्षमता से खड़ी होने का साहस दिखा रही है। वह राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने लगी है। कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) दलित नारी और समाज की उन्नति चाहती है।

वह उच्च वर्ण की नारी से विशेष उम्मीद नहीं रखती क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया था कि ''ऑल इण्डिया प्रोग्रेसिव विमेन्स एसोशिएशन'' और 'भारतीय महिला जागृति समिति' द्वारा ''दलित महिलाओं की समस्या'' विषय पर आयोजित सेमीनार में केवल एक–दो सवर्ण महिलाएं उपस्थित थी। वास्तव में दिल्ली की बहुत सारी महिला संस्थाओं को निमंत्रित किया गया था। राजनीतिक जागरण से परिचित कौसल्या बैसंत्री मानती है कि–''अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पाँवों पर खड़ा होकर, अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अन्दर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा।''[40]

दृढ़ आत्मविश्वास

''राजनीतिक आजादी, कानूनी प्रावधान, नारी उन्नति के लिए चलाए जाने वाले आन्दोलन, नारी मुक्ति आन्दोलन, उदारवादी नेताओं के प्रयास, शिक्षा प्रसार नारी स्वावलम्बन आदि के कारण आज की नारी आत्मविश्वास से राजनीति में कार्य कर रही है। वह पुरुष प्रधान विचारधारा और मानसिकता का डटकर मुकाबला करती हुई अपने अस्तित्व का परिचय दे रही है।''[41]

पुरुषों के गैरकानूनी कुकर्मों की पोल खोलना

आज राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाली नारी आत्मविश्वास से काम कर रही है। वह अनेक गैरकानूनी कुकर्मों की पोल खोलकर उनको रोकने की कोशिश कर रही है। रमणिका गुप्ता (हादसे) ''विधानपरिषद में लड़की चुराकर बेचने वाले ठेकेदार हरवंश सिंह खूनी और उनके मित्र विधायक विनोद सिंह के विरोध में डटकर खड़ी थी। उसका अनेक विधायकों ने साथ दिया था। लड़की तस्कर और विधायक विनोद सिंह ने उस पर जोर–दबाव डालने की कोशिश की लेकिन रमणिका पीछे नहीं हटी। वह आत्मविश्वास से विरोध का मुकाबला करती रही।

उन्होंने विधायक के रूप में निडर होकर आत्मविश्वास से कार्य किया है। उन्होंने विधानमण्डल में नारी की गरिमा को बनाये रखने की कोशिश की है।''[42]

पुरुष राजनीतिक मित्रों की भीतरघात

रमणिका गुप्ता (हादसे) ने अनुभव किया है कि राजनीतिक नेतागण नारी का चरित्र हनन करने में रूचि रखते है। वे अपने अनुभवों का उल्लेख करती हुई कहती है–"कष्ट तो तब होता है जब वे लोग, जिनके साथ मधुर सम्बन्ध होते हैं और जिनको हम मित्र मानते हैं, हमारे उन सम्बन्धों को भाजने में लगते हैं या महफिल का विषय बना देते हैं। ऐसे अनुभव मुझे भी हुए जो जीवन में काफी खटास छोड़ गए लेकिन मैं अपने कद को छोटा अनुभव करने से इन्कार करती रही।''[43]

कब्जाकरण का विरोध

राजनीतिक जागरण सुधारवादी आन्दोलन, शिक्षा प्रसार, स्वावलम्बन, नारी मुक्ति आन्दोलन के कारण नारी अपने हक और अधिकारों के प्रति जागरुक हो गई है। वह अन्याय, शोषण, दहेज, अत्याचार का विरोध करने का साहस कर रही है। नारी पर होने वाले अत्याचारों, अन्यायों के कारणों को स्पष्ट करती हुई रमणिका गुप्ता (हादसे) लिखती है– "इज्जत के डर से औरतों की मानसिकता, पुरुषों के गन्दे मजाकों या कुत्सित हरकतों को सहन करने की आदी हो जाती है। अबे जाने दो, कौन झगड़ा मोल ले इस लम्पट के साथ। अपने आप चुप हो जायेगा कहकर बात टाल देती है। इस रवैये से लम्पटों का मनोबल बढ़ता है।" इसलिए रमणिका गुप्ता इसका विरोध करती है। उन्होंने पुरुषों से डरना ही छोड़ दिया है। नारी के तन–मन पर अधिकार जमाने की पुरुष की मानसिकता और कृति का रमणिका गुप्ता विरोध करती रही हैं। वह नारी के 'कब्जाकरण' के विरोध में संघर्ष करती रही है। वह कहती है– "मैंने हमेशा इस कब्जाकरण का विरोध किया है। जबरदस्ती से

किसी के अधिकार को नहीं माना, उसके लिये बहुत बदनामी उठानी पड़ी। पर मैं अड़ी रही। क्या–क्या नहीं कहा लोगों ने पर मैं भी उनके मुँह पर तमाचे मारने से बाज नहीं आई। मेरी इच्छा के विपरीत कोई मुझ पर कैसे अधिकार जमायेगा, यह मेरी जिद रही।''[44]

रमणिका गुप्ता (हादसे) मजदूर आन्दोलन से जुड़ी हुई नेता है। वह हमेशा अपने मन की करती रही हैं। आर्य समाज, कांग्रेस, समाजवादी और कम्युनिस्ट विचारधारा की यात्रा करती हुई राजनीति से जुड़ी रमणिका गुप्ता कहती है–"मैं खुद को लिंग की किसी भी प्रकार की हीन ग्रंथी से मुक्त कर पाई थी। मैंने अपने स्त्री होने के यथार्थ को स्वीकार करते हुए संघर्ष किए–अपनी कमजोरियों को मैंने स्त्री की कमजोरी न मानकर मनुष्य मात्र की स्वाभाविक प्रवृत्तियों व कमजोरियों से जोड़ा। अपने गुण व दोष को स्त्री व पुरुष के खेमें में न बाँटकर मनुष्य मात्र के कटघरे में खड़ा किया।''[45]

रमणिका गुप्ता का मानना है कि–''पुरुष नारी को उसी हालत में बर्दाश्त करता है, जब उसे यह यकीन हो जाये कि वह पूरी तरह उसी पर आश्रित है और खुद कोई निर्णय नहीं ले सकती या फिर स्वयं वह उस औरत से डरने लगे, तो वह उसे सहता है।''[46]

रमणिका स्कूली जीवन से ही अपने निर्णय खुद लेती थी और उनका अच्छा–बुरा फल भोगने को तैयार रहती थी।

स्त्री के चिह्न कायरता के प्रतीक नहीं

राजनीति से जुड़ी औरतों ने नारी शक्ति और महत्व को जाना। साड़ी, चूड़ियाँ सरकार पक्ष को देकर सरकार की कमजोरी, कायरता दिखाने का आज की महिला नेता विरोध करती है। वे स्त्री के चिह्नों का, कायरता के प्रतीक के रूप में विरोध करती है। रमणिका गुप्ता (हादसे) ने सरकार की कमजोरी कायरता सिद्ध

करने के लिए विधान परिषद अध्यक्ष को साड़ी और चूड़ियाँ दी थी। जब उनके साथी ज्ञानेन्द्रपति ने उन्हें समझाया तब से उन्होंने "स्त्री के चिह्नों को कायरता के प्रतीक के रूप में इस्तेमाल करना बन्द कर दिया।"[47]

पुरुष सदस्यों को जुझारू औरत बर्दाश्त नहीं

रमणिका गुप्ता (हादसे) ने अनेक मौकों पर अपनी बात मनवाने के लिए सदन में नारेबाजी की। कई बार टेबल पर चढ़कर नारेबाजी की। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि "मुझसे पहले आम तौर पर कोई स्त्री सदस्य ऐसा नहीं करती थी पर मैंने विरोध जताने के लिए इस परम्परा की सदन में शुरुआत की अन्यथा हमारी बात कोई नहीं सुनता था। बहुत बार बेशर्म भी होना पड़ता है। स्त्री सदस्य को पुरुष सदस्य भीतर–भीतर जुझारू औरत को बर्दाश्त नहीं कर सकते।"[48]

लम्बी राजनीतिक पारी

राजनीति में देर तक टिक जाने वाली औरतों को उनकी सहनशक्ति के कारण स्वभावतः एक प्रतिष्ठा मिल जाती है। वे एक ऐसे स्तर तक पहुँच जाती हैं जहाँ औरत लिंग या व्यक्ति गौण हो जाता है। उनका सामाजिक रूतबा एक सामूहिक रूप लेता है। औरत का व्यक्तित्व अपने इर्द–गिर्द अपने एक करिश्मा बनाए रखता है। इन करिश्मों का प्रभा मण्डल, आतंक अथवा भय दूसरों पर छा जाता है, जो उसे सुरक्षित रखने में सहायक होता है।"[49]

स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना

"लोग स्त्री कार्यकर्ताओं को अपना कलेवा मानते थे जिसे भूख लगने पर खाने का एक स्वार्जित जन्मसिद्ध अधिकार उन्होंने प्राप्त कर रखा था। उनकी नज़र में बिना किसी पुरुष नेता–वृक्ष का सहारा लिए महिला नेता–लता पनप और बढ़ नहीं सकती थी और मैं लता बनने को तैयार नहीं थी।"[50]

आज की नारी राजनीति में अपनी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक कर रही है। वह अपनी इच्छानुसार राजनीतिक दलों की सदस्या बनती है। उसे किसी का जोर–दबाव पसन्द नहीं है। हादसे आत्मकथा की लेखिका रमणिका सक्रिय नेता है। वह कांग्रेसी नेता थी। जब उन्हें लगा कि कांग्रेस पार्टी अब उनके लिए अनुकूल नहीं रही है तब उन्होंने संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने का निर्णय लिया। उनके निर्णय से अनेक कांग्रेसी नेता क्रोधित हो गए परन्तु उन्होंने कभी परवाह ही नहीं की थी। उन्होंने अपने त्यागपत्र में लिखा था "मैं अपना रास्ता खुद बनाने में सक्षम हूँ इसलिए अपना रास्ता खोज लूँगी नहीं तो रास्ता ही मुझे खोज लेगा।"[51]

बिहार के मुख्यमंत्री के.बी. सहाय की सिफारिश पर पण्डित राजा मिश्र द्वारा रमणिका गुप्ता बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी की सदस्या मनोनीत कर दी गई थी। सन् 1967 में सोशलिस्ट पार्टी के नेतृत्व में रमणिका गुप्ता के जुझारू पन को देखते हुए संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में आने का आग्रह किया। कांग्रेस का त्याग पत्र देते समय रमणिका गुप्ता ने कांग्रेसी नीति की आलोचना की थी। उन्होंने अपने त्यागपत्र में लिखा था–"कांग्रेस पार्टी में केवल लताएं ही फुनगी तक पहुँच सकती है। जो महिला पेड़ बनने की क्षमता रखती हो उसे काट दिए जाने की मुहिम चलाई जाती है और मैं लता बनने के लिए तैयार नहीं चूंकि मैं खुद निर्णय लेने में सक्षम हूँ। पति, पिता, भाई, बेटा या प्रेमी का सहारा लेकर बढ़ना मेरी आदत नहीं इसलिए कांग्रेस की प्राथमिक सदस्यता से मेरा इस्तीफा स्वीकार करें। मैं अपना रास्ता खुद खोज लूँगी या रास्ता ही मुझे खोज लेगा।"[52]

यदि समाज के निम्न वर्ग पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि एक स्त्री व पुरुष दोनों मिलकर अपनी आर्थिक स्थिति तथा दिनचर्या तथा भरण पोषण के लिए कितनी मेहनत करते हैं परन्तु आर्थिक स्थिति खराब होने व परिस्थितियों में विषमता होने से वह पुरुष अधिकांश समय कर्ज में ही रहते हुए जीवन यापन करते हैं तथा "दिनभर की मजदूरी के बाद अपनी थकान व दुःख–दर्द को दूर करने के लिए नशे

का उपयोग करते हैं जिसके कारण पति–पत्नी संबंधों में हमेशा टकरार रहती हैं तथा झगड़े होते रहते हैं। पुरुष अपने को बलवान मानते हुए स्त्री पर अत्याचार तक करता है तथा निम्न वर्ग की महिलाओं की मानसिकता भी निम्न होती है।''[53]अतः वह कई बार अपने पति को छोड़कर अन्य के साथ संबंध स्थापित कर लेती है या अन्यत्र चली जाती है।

इस प्रकार के निम्न स्तर के समाजों में रीति–रिवाज भी पुरुष मानसिकता को प्रदर्शित करते हैं जो स्त्री को एक तुच्छ वस्तु समान समझते हैं तथा उसे खिलौने के रूप में प्रयोग लेते हैं। इस प्रकार के समाजों में स्त्रियों को हमेशा दोषी माना जाता हैं तथा उन्हें सामाजिक प्रताड़नाएं भी दी जाती हैं। इस प्रकार की स्त्रियां जीवन भर जुल्मों को सहती रहती हैं। यही उनका भाग्य होता है और वही जीवन।

मध्यमवर्गीय परिवारों में भी उच्च वर्ग की आकांक्षा व अभिलाषाएं व इच्छाएं अधिक होती हैं जिसके कारण पुरुष व स्त्री के संबंध अच्छे नहीं होते हैं। वर्तमान में सुख, वैभव, ऐश्वर्य प्राप्त करने के कारण स्त्रियां अपने उत्तरदायित्वों व कर्तव्यों से विमुख होने लगी हैं तथा पुरुष मानसिकता में भी परिवर्तन आया है। ''एक पुरुष एक स्त्री से संतुष्ट नहीं है जीवन में उसे संतोष की प्राप्ति नहीं है। पारिवारिक कारण तथा आर्थिक परेशानियां उसकी समस्याओं को हमेशा बढ़ाकर रखती हैं। जिससे पारिवारिक संबंध हमेशा बिगड़े हुए रहते हैं। एक पुरुष कभी भी स्त्री की बात सुनना पसंद नहीं करता है तथा केवल आदेश देना अपना कर्तव्य समझता है।''[54]

एक स्त्री का कार्य केवल पुरुष के आदेशों की पालना करना है। उसे कुछ कहने या करने का अधिकार पुरुष प्रदान नहीं करता। उसे स्वतंत्रता नहीं होती है कि वह अपने मन व विचारों को अभिव्यक्त कर कार्य कर सके।

एक पुरुष का यह स्वभाव रहा है कि वह नारी को हमेशा अपने अधीन करना चाहता है। चाहे उसे साम, दाम, दण्ड, भेद ही क्यों न करना पड़े। इसके लिए संसार में कई युद्ध हो चुके हैं, लड़ाई–झगड़े हो चुके हैं तथा आज भी हो रहे हैं। स्त्री को प्राप्त करना पुरुष अपना अधिकार समझता है तथा गर्व व घमंड करता है। इसके लिए पुरुष, पुरुष का दुश्मन भी बन जाता है तथा दोस्त भी दुश्मन बन जाते हैं। एक नारी भी हमेशा पुरुष को अपने अधीन बनाना चाहती है। अतः वह छल, बल, कपट, अदाओं तथा अपने शरीर का भी उपयोग भी करते हैं। जिससे वह पुरुष उसके अधीन होकर कार्य करे। यह मानसिकता बड़ी ही विचित्र है कि दोनों एक–दूसरे को अधीन करना चाहते हैं तथा एक–दूसरे को प्राप्त करने की कोशिश भी करते हैं। पुरुष क्योंकि शारीरिक रूप से अधिक सक्षम व क्षमतावान होता है। अतः वह नारी को दासी के रूप में रखना चाहता है। जिससे जब जैसा कहा जाये वह कार्य करती रहे। इसे हम दासता भी कह सकते हैं तथा बंधन भी। इस प्रकार की स्थिति केवल ऐसी दशाओं में ही नहीं होती है बल्कि प्रेम व प्यारवश भी विपरीत स्थितियां देखने को प्रायः मिल जाती हैं अर्थात् एक स्त्री या पुरुष प्रेमवश कुछ भी करने को तैयार हो जाता है। फिर चाहे उसके स्वयं को जान देने की बात हो या किसी अन्य की जान लेने की। वह प्रेमवश कुछ भी कर जाने को तैयार रहता है।

यह किस प्रकार के संबंध हैं जो हमें समाज में दिखाई देते हैं। हर संबंध की एक कहानी होती है तथा हर संबंध अपने आप में अलग है उनकी परिस्थितियां, स्थितियां तथा कारण भी अलग–अलग प्राप्त होते हैं।

परन्तु सभी से हमें यह ज्ञात होता है कि समाज व देश में एक पुरुष हमेशा सत्ता चाहता है। अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है तथा अपना पौरुषत्व दिखाने की लालसा व प्रदर्शन के कारणवश ही वह स्त्री को दासता युक्त दिखाना चाहता है कि वह कितना शक्तिशाली है। यह केवल पुरुष का अभिमान ही होता है जो उसे ऐसा करने के लिए विवश करता है। पुरुष की मानसिकता हमेशा से

परिस्थितियों व स्थितियों से लाभ उठाने की रही है वह भी यदि एक नारी से सम्बंधित होती है।

अतः बहुत ही कम पुरुष ऐसे होते हैं जो वास्तव में एक स्त्री की गरिमा व सम्मान बनाये रखते हैं तथा अपनी पत्नी को समानता का अधिकार प्रदान कर उसे स्नेह व प्रेम प्रदान करते हैं। साथ ही अन्य नारियों को भी सम्मान देते हैं।

3.4 निष्कर्ष

सभी रचनाओं में नारी के राजनीतिक अस्तित्व का जीवंत चित्रण परिदृष्टित होता है कि वास्तव में नारी का जीवन कितना कठिन है। इनमें नारी की संवेदनाओं का मार्मिक वर्णन दिखाई देता है। इन रचनाकारों ने अपने जीवन की उन कठोर राजनीतिक यातनाओं व अत्याचारों का वर्णन इनमें किया है जो जीवन में उन्होंने सहन किया है। अधिकांश में इस बात का राजनीतिक चित्रण हमें दिखाई देता है कि राजनीतिक परिस्थितियाँ एक नारी से सब कुछ करवा लेती हैं। दूसरों के लिए या परिवार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देती हैं, फिर भी समाज उन्हें सम्मान नहीं दे पाता तथा इन्हीं संबंधों से उन्हें तिरस्कार, दर्द प्राप्त होता है। इनमें पुरुष प्रधान समाज की कठोरता का आभास होता है। हम मनुष्य होकर भी नारी को मानवीय पद प्रदान करने से कतराते हैं। यह पुरुष के गौरव को कम नहीं करता परन्तु अहंकार व्यक्ति को वह करने नहीं देता अतः यह आवश्यक है कि अब समाज नारी के पद व गरिमा को बनाये रखे।

उसे राजनीति में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए समाज, परिवार द्वारा मन की स्वतंत्रता प्राप्त हो, जिससे वह अपने पंखों को खोलकर उड़ सके। अपनी प्रतिभा को उड़ान प्रदान कर सके अपने सपनों को वास्तविक धरातल पर उकेर सके। जीवन की कल्पनाओं को साकार कर सके। राजनीति में अपना परचम फहरा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 21
2. वही
3. वही
4. वही
5. वही
6. वही
7. वही, पृ. 24
8. वही
9. वही, पृ. 25
10. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 33
11. गुड़िया भीतर गुड़िया– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 90
12. वही– पृ. 91
13. वही
14. वही, पृ. 86
15. वही
16. वही
17. वही, पृ. 87
18. वही, पृ. 91
19. वही
20. वही
21. मेरी कहानी–मेरीकॉम, पृ. 24
22. वही
23. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, पृ. 124

24. हादसे– रमणिका गुप्ता, पृ. 245

25. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 48

26. वही, पृ. 89

27. भारतीय सामाजिक संस्थाएं– मोतीलाल गुप्ता, पृ. 335

28. एक कहानी यह भी– मन्नू भण्डारी, पृ. 162

29. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 43

30. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, पृ. 124

31. हादसे– रमणिका गुप्ता, पृ. 245

32. वही, पृ. 264

33. हादसे– रमणिका गुप्ता, पृ. 261

34. वही, पृ. 245

35. वही, पृ. 262

36. वही, पृ. 264

37. वही, पृ. 261

38. वही, पृ. 262

39. वही, पृ. 264

40. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, पृ. 124

41. महिला आत्मकथा लेखन में नारी– डॉ. रघुनाथ गणपति देसाई, पृ. 113

42. वही, पृ. 244

43. हादसे– रमणिका गुप्ता, पृ. 263

44. वही, पृ. 264

45. वही, पृ. 15

46. वही, पृ. 26

47. वही, पृ. 257

48. वही, पृ. 263

49. वही

50. वही, पृ. 27

51. वही, पृ. 263

52. वही

53. वही, पृ. 258

54. वही, पृ. 27

अध्याय – 4

अध्याय – 4

नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन

4.1 आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन

4.2 आर्थिक स्वातन्त्र्य और बनते बिगड़ते रिश्ते

4.3 रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़

4.4 कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन

4.5 आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान

4.6 निष्कर्ष

नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन

और

महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन

भारतीय दर्शन के अन्तर्गत पुरूषार्थ को ही जीवन मूल्य के रूप में मान्यता दी गई । पुरूषार्थ का मूल अर्थ उन प्रयत्नों से है, जिन्हें जीवन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु किया जाता है। हिन्दू जीवन दर्शन ने मानव जीवन के चार उद्देश्य अर्थात मूल्य स्वीकार किए हैं– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। मोक्ष को जीवन का साध्यात्मक मूल्य तथा धर्म, अर्थ एवं काम को साधनात्मक मूल्य के रूप में मान्यता दी है। भारतीय दर्शनानुसार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चार तत्वों का समन्वय ही मनुष्य है। शारीरिक विकास हेतु अर्थ, मानसिक विकास हेतु काम, बौद्धिक विकास के लिए धर्म तथा आध्यात्मिक विकासार्थ मोक्ष। इन चारों को ही पुरूषार्थ तथा लक्ष्य के रूप में स्वीकारा गया है। वस्तुतः ये भारतीय जीवन के चार प्राचीनतम मूल्य हैं। इस प्रकार भारत में प्राचीन काल से ही मूल्य सम्बन्धी धारणा इस रूप में विद्यमान रही हैं। नयी सदी की महिला आत्मकथा लेखन में साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपना कर अर्थ हथियाना चरम लक्ष्य है। समस्त जीवन मूल्य, मानवीयता और रिश्ते अर्थ पर बलि चढ़ा दिये गये हैं।

4.1 आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन :

महाकाव्यों का उद्देश्य शाश्वत जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा अर्थात् धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति स्वीकार करते हुए श्री देवीप्रसाद गुप्त लिखते हैं कि–''हमारे महाकाव्यों का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अर्थात् चतुवर्ग की प्राप्ति माना गया है। इसमें प्रतिपादित शाश्वत जीवन मूल्य भोग, योग और कर्म है।''[1] धर्म का अर्थ है जो धारण करे और पुरूषार्थ के सन्दर्भ में मानव द्वारा व्यष्टि और समष्टि के प्रति नैतिक कर्त्तव्यों को धारण करना ही धर्म है। इस दृष्टि से धर्म का सम्बन्ध

नैतिक मूल्यों से है। ''धर्म उन नैतिक नियमों को कहते हैं, जिनके पालन से व्यक्ति और समाज दोनों की ही उन्नति और कल्याण होता हो। जिन पर चलने से व्यक्ति को सुख, शान्ति समाज में सन्तुलन, सामंजस्य और शान्ति स्थापित हो।''[2] अर्थ से आशय गृहस्थी चलाने, परिवार के बसाने और धार्मिक कार्यों को पूर्ण करने हेतु आवश्यक भौतिक वस्तुओं से है। चतुवर्ग में मोक्ष की प्राप्ति धर्म के समान अर्थ को भी उपयोगी माना गया है। भारतीय दार्शनिकों ने आत्मज्ञान, आत्मविकास, आत्मानन्द, तेजस्वित सहजता, विवेक आदि साध्यात्मक या स्वलक्ष्य मूल्य माने हैं। ये मूल्य की प्राप्ति में उपयोगी होने के कारण इनकी महत्ता किसी भी रूप में कम नहीं होती है। दया, करूणा, त्याग, अहिंसा, उदारता, अपरिग्रह, लोकमंगल की कामना, सदाचरण तथा विनम्रता आदि को साधना या निमित्त मूल्य माना है। ये साधनात्मक मूल्य हैं। अधिकांश अवसरों पर साधनात्मक मूल्यों के साथ यश प्राप्ति या प्रतिष्ठित होने का अभिशाप अपनी संगति बनाये रखता है। इन मूल्यों के पालन में से किसी एक का ही वरण संभव हो सकता है। दान इसलिए भी दिया जा सकता है कि देने में आनन्द आता है और इसलिए भी कि मोक्ष, स्वर्ग या पुण्यप्राप्ति का मोह विवश करता है।

यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि साधन मूल्यों के साथ जब कि कोई आकांक्षा अपना सम्बंध बनाये रहती है, तब तक आत्मज्ञान या आत्मानन्द घटित हो ही नहीं सकता। भारतीय मत में काम को मात्र ऐन्द्रिक सुख और यौन तुष्टि के रूप में नहीं लिया गया, बल्कि मानसिक प्रक्रिया तथा रागात्मिका वृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। काम मनुष्य की एषणाओं को जगाता हुआ उनको भौतिक संकल्पों की ओर अभिमुख करता है। अर्थ के समान काम सम्बन्धी मूल्य भी धर्म से सम्बद्ध होकर ही साध्यात्मक मूल्य की ओर अग्रसर होते हैं। इसलिए काम, धर्म से संयुक्त होकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक बनता है।

अपनी सारी शक्तियों को अपने निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक स्थान पर केन्द्रीभूत करना ही पुरुषार्थ है। ''मोक्ष वह अवस्था है, जहाँ जीव एक ओर संसार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है और दूसरी और ईश्वर में लीन हो जाता है। वैयक्तिक जीवन के दृष्टिकोण को मोक्ष, धर्म, अर्थ और काम का स्वाभाविक परिणाम है।''[3] ''जीवन के चरम मूल्य के अर्थ में मोक्ष का अर्थ मानव जीवन की स्वतन्त्रता ही है।''[4] डॉ. राधाकृष्णन् पुरुषार्थ को जीवन के मूल्य स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि ''अपना अस्तित्व बनाये रखना आत्मा की निर्मलता को बनाये रखना ही जीवन का लक्ष्य है। मानव केवल भौतिक सम्पत्ति और ज्ञानार्जन से ही संतुष्ट नहीं रह सकता। उसका ध्येय है– आत्म साक्षात्कार करना।''[5] इस प्रकार स्पष्ट है कि जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में भारतीय चिन्तन ने सर्वांगीण मानव जीवन की व्यवस्था को लक्ष्य मानकर चार पुरुषार्थ अथवा मूल्यों की प्रतिष्ठा की है, उनमें अन्तर्वती तथा बाह्य साध्यात्मक और साधनात्मक, शाश्वत तथा सामयिक और वैयक्तिक एवं सामाजिक सभी तरह के मूल्यों की समाविष्टि हो जाती है, इसलिए आज की वैज्ञानिक और अन्तर्राष्ट्रीय आधुनिकता के संदर्भ में थोड़े बहुत स्वरूप भेद के साथ समस्त जीवन मूल्यों को इन्हीं के अन्तर्गत देखा जा सकता है। युगीन संदर्भ में इनकी वरीयता तो बदलती रही है, जैसे– आज अर्थ, और काम की प्रमुखता दिखाई देती है, किन्तु चारों में से किसी एक की भी पूर्णतः विलुप्तीकरण की स्थिति कभी नहीं आयी प्रकारान्तर से मानव जीवन सदैव इन्हीं चार दिशाओं में गतिशील रहा है और रहेगा। नयी सदी के महिला आत्मकथा लेखन की सभी लेखिकाएं आर्थिक स्वातंत्र्य की पक्षधर रही हैं।

सदियों से रूढ़िग्रस्त समाज

भारतीय समाज की हकीकतें इतनी आसानी से बदल जाये तो फिर कहना ही क्या? आखिरकार पुरुषवादी मानसिकता एक दिन में तो नहीं बनी, उसमें सदियों की रूढ़ियाँ और कूड़ा–करकट भरा हुआ है। इस बात का एहसास तो उन्हें

कदम–कदम पर अपने पति के साथ तो होता ही हैं। साहित्यिक जगत में भी कुछ सम्पादक, सहसम्पादकों ने उनका आर्थिक–मानसिक शोषण किया। पुरुषों का स्त्रियों के प्रति इसी रवैये का वास्तविक रूप दिखाते हुए मैत्रेयी व्यंग्य से कहती हैं–"भारतीय स्त्री को न आर्थिक निर्भरता सुखी कर सकती है, न चेतना और न सम्पन्नता उसकी सहायक हो सकती है। बस उसे पारम्परिक कर्मकांड की सुखी और सुरक्षित रहने की गारण्टी देते हैं।"[6]

नारी का रूप व सौन्दर्य स्वमेय ही ईश्वरीय सृजन है जिसे एक माँ की अनुभूति से सृजित किया गया है। इस संसार में जीवन का आरम्भ एक स्त्री या नारी द्वारा ही सम्भव है तथा उसमें व्याप्त गुणों के कारण मातृत्व, भातृत्व, समर्पण, त्याग आदि से ही उसका स्वभाव व व्यवहार शुद्ध बनता है। वह त्याग व करुणा की प्रतिमूर्ति होती है जिसके कारण ही वह एक परिवार की सुखद आधारशिला होती है जो परिवार की नींव को मजबूत तो बनाती ही है साथ ही परिवार को सम्बन्धों में बांधकर भी रखती है। उसका स्नेह व प्रेम ही उसमें बच्चों के लिए सृजनात्मकता उत्पन्न करता है।

पति पर आर्थिक निर्भरता

पति पर आर्थिक रूप से निर्भर पत्नी का जीवन दुःख का अध्याय होता है। पति के साथ उसकी खुशी जुड़ी हुई होती है। पति के बिना उसका जीवन दुःख यातना से भर जाता है। 'एक अनपढ़ कहानी' की चम्पा के पति की मृत्यु से उसका जीवन दुःख से भर जाता है। वह तीन बच्चों की परवरिश करने की कल्पना मात्र से दुःखी होती है। विधवा नारी का जीवन असुरक्षित बनता है। बच्चों की चिन्ता, और स्वयं की रक्षा के पाटों में उसकी जिन्दगी पिस जाती है।

पुरुष की वासनांध दृष्टि से नारी योनि ही खतरे में है। कृष्णा अग्निहोत्री इसकी ओर ध्यान आकर्षित करती हुई कहती है–''लड़की का कोमल भोला बचपना

भी क्या पुरुष से सहन नहीं होता। वह उसे भी अपने गन्दे सुख हेतु चीर देने को आतुर रहता है।''[7]

एक नारी द्वारा परिवार के सदस्यों के लिए विभिन्न कार्य करना, विभिन्न प्रकार के व्यंजन व भोजन तैयार करना, पर्व व त्योहारों पर सजना–संवरना, श्रृंगार करना, घर–परिवार की दिनचर्या को सही प्रकार से व्यवस्थित रखना, सृजनात्मकता का ही अंग है जो एक नारी में स्वतः ही होता है। उसकी कल्पनाशीलता, ह्रदय से आभास, आत्मानुभूति आदि के कारण ही उसकी विचारशीलता मन की गहराइयों से निकलती है।

एक नारी पूर्ण समर्पण से अपने कर्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करती है। अतः जब नारी के मन को ठेस पहुँचती है तो मन की भावनाएं स्वतः ही लेखन का रूप धारण कर लेती हैं। जो कविता, गीत, गजल, लेख आदि के रूप में परिणत होता है।

एक नारी के मन को आघात पहुँचता है या मन आहत होता है या उसके मन में ठेस पहुँचती है या उनकी भावनाओं के साथ खेला जाता है तो उसका मन विचलित हो उठता है तथा मन की गहराइयों में दबा हुआ अहसास प्रेरणा शक्ति व स्रोत के रूप में संचित होकर लेखन के रूप में आकार ग्रहण करने लगता है तथा दुःख–दर्द, पीड़ा, तिरस्कार, घृणा आदि की वास्तविक अभिवृत्ति होने लगती है।

इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में महिला आत्मकथा का प्रचलन केवल वास्तविक परिस्थितियों का सामना करते हुए तथा अपना खोया मान–सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा उन परिस्थितियों से उन महिलाओं को प्रोत्साहन व प्रेरणा प्रदान करना जिससे ऐसी महिला ऐसी परिस्थितियों व समस्याओं का सामना कर सके तथा जागरुक होकर अपना संघर्ष पूर्ण कर अपनी स्वतंत्रता व आत्मसम्मान प्राप्त कर सके। उन नारियों द्वारा लिखा गया जिन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया तथा

मान–सम्मान, प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते हुए समाज में एक पद व प्रतिष्ठा प्राप्त की।

जब एक नारी अपने जीवन में कुछ प्राप्त कर लेती है या अपने जीवन में जो स्वतंत्रता चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक हो या आर्थिक प्राप्त कर लेती है तो जो अनुभव, पीड़ा, दुःख वह सहन कर निकलती है। उसे वह बाँटना चाहती है जिससे उसके जीवन में उन दुःखद पलो का अहसास या अनुभव अन्यों को भी हो तथा समाज में कुछ बदलाव व परिवर्तन या सकारात्मक सोच का निर्माण हो। एक पुरुष उसे एक नारी होने का सुखद अहसास व सम्मान प्रदान करे जो अर्द्धांगिनी, एक माँ तथा एक पिता होने का उसके द्वारा प्रदान किया जाता है।

आर्थिक अधिकार की समस्या

यह निर्विवाद सत्य है कि नारी को अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीना है तो उसको आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत जरूरी है। अर्थ ही वह शक्ति है जिसके बल पर स्त्री अपना जीवन खुशहाल बना लेती है। नारीवादी लेखिका 'सीमोन द बोउवार' अर्थ की स्वतन्त्रता को ही सही स्वतन्त्रता मानती है। वे कहती है कि–''मतदार और अन्य तमाम अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री की स्वतन्त्रता अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है।''[8]

नारी अपने जीवन में कितना त्याग व बलिदान करती है इसका अहसास एक पुरुष को भी हो सके। नारी अपने जीवन में कई प्रकार की परिस्थितियों का सामना कर संघर्ष करती है तभी जाकर उसमें आत्मबोध होता है जिससे तो आत्मकथा की परिणति होती है।

एक–एक पैसे को तरसती नारी

कौसल्या बैसंत्री को आर्थिक स्वातंत्र्य बिल्कुल नहीं था। उन्होंने नौकरी नहीं की है। उन्हें एक–एक वस्तु के लिए अपने पति के सामने हाथ फैलाने पड़ते थे।

उनके पति देवेन्द्र कुमार दूध और सब्जी के पैसे भी गिनकर देते थे। पैसे अलमारी में ताले में बन्द रखते थे। बहुत बार छोटी–छोटी वस्तु के लिये उन्हें तरसना पड़ता था। उन्होंने बताया है कि मेरे कपड़े, चप्पल की सिलाई के लिये पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ती थी, तब पैसे देता था। वे भी पूरे नहीं पड़ते थे। कभी नहीं भी देता था, कहता था अगले महीने लेना। जब अगले महीने पैसे देने की बात आती तब कुछ न कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता, मारने दौड़ता।''[9] इससे स्पष्ट होता है कि कौसल्या ने भी आर्थिक अधिकार को महत्व दिया है। वह कहती हैं कि–''अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते है तो हमें अपने पाँवों पर खड़ा होकर, अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अंदर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा।''[10]

स्वातन्त्रयपूर्व नारी की स्थिति शिक्षा के अभाव में सोचनीय थी। वह घर में, परिवार में और समाज में उपेक्षित थी। घर में सास–ससुर तथा पतिदेव की इच्छानुसार ही रहती एवं कार्य करती थी। वह आर्थिक दृष्टि से परतंत्र और समाज से प्रताड़ित थी। नारी को प्रेम करने का अधिकार नहीं था। नारी केवल उपभोग की वस्तु मानी जाती थी। पुरुषों की उद्दाम विषयवासना का वह शिकार हो चुकी थी। ''सामन्ती व्यवस्था में नारी एक वस्तु है, सम्पत्ति है, सम्भोग और सन्तान की इच्छा पूरी करने वाली मादा है।''[11] इन आत्मकथाओं के माध्यम से कहा जा सकता है कि स्वतंत्रतापूर्व नारी उपभोग्या नारी के रूप में समझी जाती थी। स्वातंत्र्योत्तर नारी की स्थिति में बदलाव आया है। भारतीय नारी के जीवन एवं समाज में उसकी स्थिति को लेकर निरंतर परिवर्तन आ रहे हैं।

''आर्थिक स्वतंत्रता और बाद के तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण, शहरीकरण की परिस्थितियां नारी के आत्मनिर्भर, आत्मनिर्णायक होने की नयी स्थितियों ने उसके स्वरूप और मानसिक गठन को और परिणामतः पुरुष के साथ उसके सम्बन्धों को भी बदला है।''

इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन ने नारी के स्वाभिमान को साहित्य में स्थान दिया है। समाज में नारी अर्द्धांगिनी के रूप में चित्रित की गई है। स्त्री पात्रों के सौन्दर्य शक्ति, साहस, सूझबूझ के बड़े उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं। समाज में नारी के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण के बावजूद भी प्राचीन संस्कार ने अभी पीछा नहीं छोड़ा है। अभी भी स्त्री को एक छाया की जरुरत होती है, नहीं तो उसका जीना लोग हराम कर दें क्योंकि समाज में स्त्री के प्रति परम्परागत मूल्य धारणा अभी पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है। नारी समाज की धुरी है। नारी के बिना समाज की कल्पना असम्भव ही नहीं बल्कि नामुमकिन भी है आत्मकथा लेखिकाओं के साहित्य में वर्तमान परिदृश्य में नारी को जो स्वाभिमानी जीवन यापन करना चाहिए उसे लेखिकाओं ने विविध स्त्रियों के जीवन संघर्षों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है—

नारी होने का दुःख

एक परिवार में बच्ची का जन्म लेना उसके स्वयं के लिए जीवनपर्यन्त का कष्ट, दुख लेकर आता है जो उसे बचपन के अल्हड़पन से ही होने लगता है। पिता द्वारा प्रेम व स्नेह से वंचित रहने, माता, परिवार व पिता द्वारा बेटी होने के ताने सुनने से उसका अहं व क्रोध दोनों का भार व दबाव सीधे तौर पर अपनी ही संतान पर निकलता है। दिनभर दिनचर्या में परिवार द्वारा बार—बार बच्ची होने का ताना सुनकर उसके अन्तर्मन को ठेस पहुँचती है जो क्रोध, घृणा के रुप में और कभी—कभी कुंठा के रुप में भी परिलक्षित होती है तथा उसका प्रेम व स्नेह ही बच्ची के लिए परेशानियां व समस्याएं उत्पन्न करने लगता है।

यदि परिवार में बच्ची के साथ लड़का भी है और परिवार में लड़का व लड़की में भेदभाव किया जाता है तो बचपन में ही उसके कोमल मन व स्वभाव में घृणा, द्वेष आदि भाव उत्पन्न होने लगते हैं।

लड़के को सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान करना तथा लड़की को सुविधाओं से वंचित रखना उसके अन्तर्मन को हिला देता है। लड़की घर के कार्यों के लिए है तथा उसे भोजन आदि बनाना आना चाहिए। रसोई का कार्य आना चाहिए आदि कई प्रकार के घरेलू कार्यों में उसकी प्राथमिकता बचपन से ही बढ़ाई जाने लगती है जिससे उसे स्वयं भी लड़की होने का अहसास होने लगता है तथा उसका मन व शरीर मानसिक रूप से कमजोर बनता है। परिवार की इस प्रकार की परिस्थितियाँ उसे संघर्ष करने के लिए तैयार न कर उसे कमजोर होने का अहसास कराती है। यदि परिवार मध्यम या निम्न स्तरीय है तो उसे समाज के नियमों द्वारा हमेशा डरा कर रखा जाता है। उसे खुल कर बात करने या खेलने की मनाही होती है। खासतौर पर लड़कों के साथ तो बिल्कुल नहीं। पिता या परिवार द्वारा सहयोग या प्रेम, स्नेह प्राप्त न होने के कारण उसका कोमल स्वभाव हमेशा स्वयं को असुरक्षित महसूस करता है इस प्रकार की मानसिक स्थिति व असमंजस की स्थिति में जीवन जीना उसके लिए न जीने के बराबर हो जाता है।

पराया धन

एक परिवार की फूल सी कली के धीरे–धीरे बड़ा होने पर परिवार के सदस्यों तथा खासतौर पर पुरुष वर्ग द्वारा यह कहना कि यह तो पराया धन है अतः इसे सुविधाएं प्रदान करना या इसकी शिक्षा पर खर्च करने का कोई औचित्य नहीं है जो एक स्त्री या लड़की के दिल की गहराइयों तक उसे झझोड़कर रख देता है। एक लड़की जो अपने ही परिवार व माता–पिता के साथ होते हुए भी उसे पराया बना दिया जाता है। अतः कई बार एक स्त्री अपने पिता का घर छोड़ देने के पश्चात् पुनः वहाँ जाने से कतराती है या यौवन की दहलीज पर जब उसके मन को सुकून देने वाला उसे मिलता है तो वह उसके साथ–साथ चल देती है। बिना यह जाने की भविष्य उसे किस मोड़ पर लेकर जायेगा। वह केवल विश्वास की

डोर थामे चलती चली जाती है। इसी प्रकार से एक पुरुष उसके कोमल मन व स्वभाव के द्वारा उसे अपना बना कर उसे दुःख दर्द, पीड़ा पहुँचाकर छोड़ देता है।

सामाजिक बंधन

सामाजिक बंधन केवल एक स्त्री व नारी के लिए ही बने होते हैं तथा उसकी पीड़ा, दुख—दर्द केवल उसके ही भाग्य में लिखे गये हैं। समाज में स्थापित आडम्बरों, गलत धारणाओं व गलत रीतिरिवाजों का खामियाजा एक नारी को भी भोगना पड़ता है।

सभी प्रकार के बंधन नारी पर लागू किये जाते हैं यहाँ तक की अधिकांश मामलों में पुरुष ही उत्तरदायी होता है लेकिन पुरुष प्रधान समाज उसके लिए भी एक नारी को गलत या उत्तरदायी ठहराता है।

यदि परिस्थितिवश या परिस्थितियों के कारण एक नारी समाज के विरुद्ध विद्रोह करती है या विरोध करती है तो उसका प्रतिकार पूरा समाज उस नारी के विरुद्ध करता है तथा उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है, दण्ड़ या सजा दी जाती है। जुल्म, अत्याचार या शारीरिक शोषण किया जाता है।

अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में परम्पराओं व रीतिरिवाजों के नाम पर स्त्रियों का पूर्ण शोषण किया जाता है। उन्हें परिवार में बंधुआ मजदूर की तरह का जीवन जीने के लिए विवश किया जाता है।

समाज पुरुष प्रधान है अतः एक नारी की पीड़ा को समझने वाला या उसे पूर्ण इन्साफ दिलाने वाला कोई नहीं होता है। एक नारी का बलात्कार केवल शारीरिक ही नहीं होता है जीवन भर का ऐसा दुःख—दर्द व पीड़ा होती है जिसे उसे स्वयं को ही न चाहते हुए भी भोगना पड़ता है। पुरुष द्वारा किये जाने पर भी इसका दुःख केवल स्त्री को ही सहना पड़ता है।

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुडंल बसे) में मैत्रेयी की माँ जीवन के दुःख–दर्दों को सहन करती हुई यह महसूस करती है और मानती है कि यदि पुरुष प्रधान समाज में रहना है तो उसे स्वयं अपने को मजबूत, निडर, साहसी तथा शिक्षित होने के साथ–साथ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर भी होना आवश्यक है।

वह स्वयं अपनी बेटी के विचारों तथा उसकी भावनाओं का कई बार विरोध करती है जिससे वह समाज के समक्ष सशक्त रूप से मुक्त विचारों के द्वारा खड़ी हो सके। परन्तु पुष्पा जी मानती है कि केवल शिक्षा प्राप्त करने से विचारों में अपनत्व या समानता, सम्मान नहीं आ जाता। पुरुष समाज के मन में व्याप्त मन का मैल इतनी आसानी से नहीं जाता है।

एक स्त्री से केवल सामाजिकता के नाते विवाह कर लेना तथा अपने उत्तरदायित्वों से हमेशा मुँह मोड़ने से पुष्पा जी पति–पत्नी के सम्बन्धों से निष्क्रिय होने लगी तथा उनके अन्तर्मन की स्त्री सजीव, जिसने उन्हें स्वावलम्बी बनाने तथा अपना जीवन परिवर्तित करने की प्रेरणा दी।

पति के होते हुए साथ न होना उन्हें आत्मकथा की दिशा ओर लेकर गया। उनके अन्दर की लेखिका, कवयित्री अपनी प्रतिभा को उजागर करने लगी जिससे आर्थिक स्थिति के साथ उन्हें सम्मान की भी प्राप्ति हुई।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) लेखिका जब अपने परिणीता से विवाह करने की बात सुनती है तो वह उन्हें कल्पना प्रतीत होती है। लेकिन शादी के पश्चात् पत्नी को पत्नी न मानना, प्रेमिका को पत्नी न मानना, पत्नी का साथ न देना, लेखिका के लिए जीवन का दर्द बन जाता है। स्वयं की ओर से प्रेम होने के कारण परन्तु पति का साथ न होने से उनके जीवन में एक अंतराल प्रतीत होता है तथा उस अधूरेपन को पूर्ण करने के लिए वह अपने विचारों तथा भावनाओं को कलम से उकेरने लगती है। यहाँ लेखिका केवल समाज में अपनी एक पहचान,

सम्मान चाहती है और वह अपने आदर्शों व मूल्य के अनुरूप ही पुरुष समाज में रहते हुए कार्य को परिणत करती है।

लेखिका स्वयं कहती है कि–''पैसे का संकट चाहे जितना रहा हो... जरूरत भी रही हो, पर पैसे का लालच तो आज तक कभी नहीं रहा।''[12] पैसे के लिए मैंने कभी भी किसी भी तरह के समझौते नहीं किए, न अपने लेखन में... न ही अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में...। जितनी चादर थी, उतने ही पैर फैलाने की आदत शुरू से ही डाल ली थी। इसलिए कभी किसी से उधार नहीं माँगा... न घर बनवाते समय, न टिंकू की शादी के समय और न ही अपनी हारी बीमारी में।''[13]

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ से प्रेम कर उनके साथ रहने के कारण समाज द्वारा जो प्रताड़ना, तिरस्कार, अपमान सहन करती है उसके लिए सम्बल की आवश्यकता होती है। वह मानती है कि केवल पढ़ने से अध्ययन चिंतन मनन और लेखन से स्त्री स्वतंत्र नहीं हो जाती। औरत के लिए प्यार ही सब कुछ नहीं है, धन, मान, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी होनी चाहिए। आर्थिक आत्मनिर्भरता प्रभा जी के जीवन की महत्त्वपूर्ण उपाधि थी।

पुरुष को स्त्री का मालिकाना तेवर नापसंद

मैंने भी सोचा चलो काम में लगा जाए...मुझे निर्यात के व्यापार में एक नया आइटम और जोड़ना है, चमड़े से केवल बड़ी संख्या में बैग का निर्यात किया जाता है। मेरी आँखें अर्जुन की तरह दुकानों में टंगे फैशन बैग पर टिकी रहती, कितने रंग, कितनी तरह की डिजाइनें, बनाना रिपब्लिक... हाँ यही तो वह दुकान है जिसके बारे में 'एलीस' पत्रिका में पढ़ा था, मैंने चुपचाप पूरा पता–ठिकाना नोट कर लिया। एक बार जाकर के देख भी आई थी, आज फिर से जाऊँगी। पूरे निश्चिन्त मन से...थोड़ा समय लूँगी, कुछ और डिजाइनों को दिमाग में बैठाना होगा, स्केचिंग

करनी होगी। वैसे एक बैग तो सच में भा गया। नार्थ–साउथ वाला बैग, दुकान में खड़ी लम्बी टाँगों वाली खूबसूरत–सी सेल्स गर्ल ने कहा–

"तो आपको यह नार्थ–साउथ बैग पसन्द आया।"

"इसकी कीमत?"

"ढाई सौ डॉलर...!"

दाम महँगा है, मगर खरीदना होगा, केवल स्केच देखकर इस्माइल मास्टर उस बैग को बना नहीं सकेंगे। चलो खरीद लेती हूँ। आखिर व्यापार करना है तो सैंपल पर तो हमें खर्च करना ही होगा, मगर ढाई सौ डालर? ऑफिस में लोग इतनी महँगी सैम्पलिंग पसन्द नहीं करेंगे। कोई बात नहीं मुझे क्या करना है अन्य और सामान खरीदकर? अपने पैसे से तो यह बैग ही खरीद लेती हूँ। व्यापार है तो पैसा है, और पैसा है तो भविष्य में ढेरों सामान खरीदने की क्षमता है। अमेरिका कही भागा तो नहीं जा रहा। जुलाई में रॉन गार्डन कलकत्ता आएगा। मेरी व्यापारी बुद्धि कह रही है कि इस बैग पर लम्बा ऑर्डर मिल सकता है, और मैंने वह बैग खरीद लिया था। पूरे ढाई सौ डॉलर दिये थे। खाकी रंग का वह नॉर्थ–साउथ बैग बड़े चाव से डॉक्टर साहब को वापस होटल में लाकर दिखाया था। मगर बैग का दाम सुनते ही आकाश टूट पड़ा :

"प्रभा!

तुम्हारा दिमाग तो नहीं खराब हो गया।

खाकी कैनवास के इस थैले का

ढाई सौ डॉलर दे आई...पागल हुई हो?

चलो वापस करो।"

"नहीं मुझे तो हूबहू इसकी नकल उतारनी है और मेरी व्यापारिक बुद्धि

कहती है...

व्यापारिक बुद्धि?

तुम्हारे पास बुद्धि नाम की चीज भी है?

गुस्से में उनका गोरा चेहरा लाल होता जा रहा था–

तुम अपने आपको समझती क्या हो?

डॉक्टर साहब मेरे पास पैसे हैं, अपनी खर्च के लिए जो हैं, उनमें से दे दूँगी।

तुम्हारा यह मालिकाना तेवर मैं सहन नहीं कर सकता''[14]

"औरों के लिए भी तो इतना सामान खरीदा गया है।

वे चीजें उनकी जरूरत है।

तो यह बैग मेरी जरूरत है।" ''[15]

बहस जो वहाँ से उठी तो जैकसन हाइट पर आकर खतम हुई। खतम क्या हुई, डॉक्टर साहब ने मेरे हाथ का पैकेट छीनकर फुटपाथ पर दे मारा था। और कहा था :

"तुम यही पड़ी रहो।" और डॉक्टर साहब टैक्सी में बैठकर चले गए, साथ में मेरा पासपोर्ट और वॉलेट भी लेते गए। एक बार फिर मेरी आँखों के सामने बनाना रिपब्लिक की दुकान घूम गई। जहाँ पर वह लड़की खड़ी थी। कितना खूबसूरत ताँबई रंग था– चमकते हुए सफेद हाथ, ऊँख कद, और कन्धे से झूलता हुआ नॉर्थ–साउथ बैग... हाँ इसे सभी खरीदेंगे। ख्याल में मैं वापस तालतल्ला की गली से लौट गई, जहाँ पर मेरी फैक्ट्री थी। आधी से अधिक आबादी का गली में रहना, खाना–सोना, हगना–मूतना सब कुछ था। जहाँ दिन के समय बात–बात पर छुरा–चाकू निकलना मामूली बात है।''[16]

निर्यात व्यापार की आर्थिक सफलता ने उनके व्यक्तित्व को ऊँचाई प्रदान की। डॉ. सर्राफ के परिवार में अन्या थी, लेकिन सुदृढ़ आर्थिक आधार ने धीरे–धीरे उन्हें ''अनन्या'' बना दिया। जो मारवाड़ी समाज उन्हें मंचासीन नहीं देखना चाहता था, उसी ने 'कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स' की प्रथम महिला अध्यक्ष का पद प्रदान किया।

मैरी कॉम (मेरी कहानी) अपनी आत्मकथा में एक अति सामान्य परिवार से होने के कारण आर्थिक परिस्थितियों से लड़ते हुए तथा अपने परिवार के सदस्यों का त्याग व बलिदान तथा समर्पण करते हुए अपनी सफलता को प्राप्त करती है। वह मानती है कि अच्छे जीवन के लिए समाज में पद व प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है तभी समाज उसे सम्मान की दृष्टि से देखता है।

जब वह स्वयं आर्थिक रूप से मजबूत होती है तो अपने परिवार को भी आर्थिक रुप से सक्षम बनाने की कोशिश करती है तथा जिन्दगी के एक पड़ाव व जीवन की सन्तुष्टि के पश्चात् ही अपने जीवन के उन क्षणों को आत्मकथा में उतारती है। जिन्हें जीत कर आपने वह मुकाम हासिल किया है।

अतः एक नारी की आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक स्थिति भी उसके मान–सम्मान व मर्यादा का प्रतीक होती है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक के समाज में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि मीडिया तथा इन्टरनेट व दूर–संचार व प्रौद्योगिकी के कारण समाज की मानसिकता में परिवर्तन आया तथा एक परिवार अपनी बेटी को शिक्षित करने के प्रयास करने लगा साथ ही वह उसे उच्च शिक्षा की ओर ले जाने भी लगा। सरकार द्वारा एवं विभिन्न योजनाओं के माध्यम से बालिका शिक्षा को दिया जाने वाला प्रोत्साहन समाज में भी नजर आने लगा तथा शिक्षित बालिका जब एक परिवार का अंग बनने लगी तो वह आर्थिक रूप से सक्षम

भी होने लगी तथा अपने परिवार की आर्थिक सहायता प्रदान करने में सहयोग करने लगी।

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय समाज में बड़ा बदलाव व परिवर्तन देखने को मिलने लगा। परिवारों में बेटों से ज्यादा बेटियाँ अधिक शिक्षा प्राप्त कर आर्थिक रूप से सक्षम होने लगी। शिक्षा में बालिकाओं को दी जाने वाली खुद व परिवार की स्वतन्त्रता ने उसे ऊँची उड़ान भरने को आतुर करने लगी तथा वह खेलकूद, अंतरिक्ष, न्याय–कानून, रेल्वे, सेना, आदि ऐसे क्षेत्रों में भी पदार्पण करने लगी जिन क्षेत्रों में केवल पुरुषों का ही वर्चस्व था।

इसके कारण पुरुषों की मानसिकता व सोच में बदलाव आने लगा कि एक नारी अब अबला न रहकर सबला बनने की तैयारी में है तथा वह पुरुष के समान हर क्षेत्र में कार्य करने में सक्षम है।

पुरुष के मुकाबले नारी की शक्ति, सोच, आत्मविश्वास उसे अधिक ऊँचाइयों व पदों पर स्थापित करने लगा साथ ही समाज में उसे सम्मान व प्रतिष्ठा दोनों की प्राप्ति होने लगी।

विभिन्न प्रतिष्ठानों व कार्यस्थलों पर नारी शक्ति का रूप दिखाई देने लगा। इन सबके कारण एक स्त्री अपने आपको आर्थिक रुप से सुदृढ़ व सक्षम भी बनाने लगी। बहुत दिनों के बाद माँ–बाबा ने घर के जेवर जो कुछ थे, उन्हें बेचा, पुरानी बस्ती का घर बेच दिया, कुछ कर्जा किया और नागपुर के रामदास सेठ से जमीन खरीदकर घर बनाया। तब तक मेरी और मधु की शादी हो गई थी परन्तु मधु और बाकी भाई–बहिन पढ़ रहे थे। माँ–बाबा अभी भी मिल में काम करने जाते थे।''[17]

पड़ोसिन की आर्थिक सहायता का नवीन रूप

जब मुझे लड़का पैदा हुआ तब सामने के घर में रहने वाली जमनी को लड़की पैदा हुई। जमनी का पति बहुत आलसी था। मिल में काम करता था, परन्तु वह छुट्टियाँ बहुत करता था। पगार कट जाती थी। कई बार भूखे सोते थे। बच्चों को कोई न कोई खाना दे देता था। पहली बीबी टी.बी. से मर गई थी। उसके इलाज के लिए भी इसके पास पैसे नहीं थे। बिना इलाज के वह चल बसी थी। पहली बीबी से तीन बच्चे थे फिर भी जमनी को घर में लाया। जमनी जवान थी उसको भी सहारा चाहिए था। जब जमनी को लड़की पैदा हुई तब उसके आदमी ने पैसे उधार लाकर दो दिन जमनी को खाना खिलाया। तीसरे दिन खाने को कुछ नहीं था। वह मेरे घर आयी, कहा कि खाने को कुछ नहीं है। मैंने उसे घर में पड़ी चावल की खुद्दी दी। राशन का जमाना था। घर में भी सिर्फ काम चलाने भर का राशन था। एक दिन उसने खुद्दी की खिचड़ी बनाकर खाई। दूसरे दिन के लिए कुछ नहीं था। खाना न मिलने से उसकी छातियों में दूध नहीं आया और उसकी बच्ची की दूध के अभाव से मृत्यु हो गई। मैं बहुत बैचेन हो गई। फिर भी उसके पति को पैसे कमाने की फिक्र नहीं होती थी। यह सब दुर्दशा देखकर बस्ती के लोगों का मन बड़ा दुःखी होता था।''[18]

भाई के इलाज का खर्चा और अब बच्चे का खर्चा बढ़ गया था। अब घर चलाना मुश्किल होने लगा। देवेन्द्र कुमार को अपने रिसर्च को छोड़ना पड़ा और लेबर इंस्पेक्टर की नौकरी करनी पड़ी... यह जगह बिहार प्रांत में है। हफ्ते में दो बार हाठ लगता था। यहाँ आटा, दाल, तेल, घर का अन्य सामान मिलता था। एक–दो दुकानें थी। एकाध छोटे कपड़े की दुकान, नाई की और धोबी की। बस इतने ही लोगों की वहाँ छोटी दुकाने थी। पीने के लिए महिने के छः रुपए देने पर छः घड़े रोज पानी एक औरत कुएं से भरकर लाती थी। ज्यादा चाहिए तो उसके लिए अतिरिक्त पैसे देने पड़ते थे।''[19]

आसनसोल में चार–पाँच महीने बाद देवेन्द्र कुमार ने यह नौकरी छोड़ दी और उसकी भारत सरकार के सूचना और प्रसार विभाग में असिस्टेन्ट रिसर्च ऑफिसर के पद पर नियुक्ति हो गई। मैं दूसरे बच्चे की प्रसूति के लिए नागपुर आई थी। बहने–भाई सब बस्ती में रहकर पढ़ रहे थे। आर्थिक हालात में कोई खास परिवर्तन नहीं आया था।''[20]

आर्थिक संघर्ष का दौर

अब हम सब भाई–बहन बड़े होने लगे थे। खाने–पहनने और किताबों का खर्चा बहुत बढ़ गया था। दूसरा महायुद्ध शुरु हो जाने से महंगाई भी बहुत बढ़ गई थी। राशन की लाइन, मिट्टी के तेल की लाइन लगती थी। कभी–कभी तो बहुत लम्बी लाइन होती थी। अपनी बारी आने तक दुकान बन्द हो जाती थी और खाली हाथ लौटना पड़ता था। सबसे ज्यादा परेशानी मिट्टी के तेल की होती थी। मिट्टी का तेल न मिलने से पढ़ने के लिए बहुत दिक्कत आती थी क्योंकि घर में बिजली तो थी ही नहीं। माँ सबेरे छः बजे सबको उठाकर पढ़ने बिठाती या हम स्कूल से आते ही पढ़ाई शुरू कर देते थे। रात में कभी–कभी खाने के तेल में बाती लगाकर किसी तरह निभा लेते थे। लाइन लगाने के लिए कभी छोटी बहिन या भाई को भेज देते थे। बड़े आदमी उनको भगा देते थे। कभी मुझे कभी छोटी बहिन को स्कूल से छुट्टी लेनी पड़ती थी। ''माँ–बाबा की छुट्टी लेने पर पैसे कट जाते थे। इसलिए वे छुट्टी नहीं लेते थे। राशन में बहुत घटिया अनाज मिलता था। लाल रंग के मोटे चावल मिलते थे। उस चावल को ओखली में लकड़ी के मूसल से कूटकर एकदम सफेद बनाते थे। चावलों की खुद्दी अलग करते थे। खुद्दी का भात चने की मसाले वाली दाल या मट्ठे की कढ़ी के साथ खाते थे। मट्ठा बस्ती में एक औरत बेचने आती थी। कभी–कभी दही भी लाती थी। उससे भी हम कढ़ी बनाते थे।''[21]

माँ सवेरे ही उठ जाती थी और नल से पानी भरती थी। पिताजी सब्जी काटकर रख देते थे। सब्जी के लिए माँ शाम को ही मिर्च–मसाला पत्थर पर पीसती थी या कभी–कभी हम बहनों में से कोई पीसती थी। खाना लकड़ियों पर बनता था। घर में खूब धुआँ होता था। पिताजी चूल्हा जलाकर नहाने के लिए पानी चढ़ा देते थे। बाबा स्नान करते, तब तक माँ भात और कोई रस्से वाली सब्जी झटपट बना लेती थी। समय हो तो बाबा के कपड़े और अपने कपड़े भी धो लेती थी। थोड़ा–थोड़ा खाना माँ–बाबा खाते, कभी देर होने से नहीं भी खाते। साथ में दोनों खाना ले जाते थे।''[22]

आंबूकरा

हम सब बहन–भाई उठ जाते थे। मुँह वगैरह धोकर, कोई झाडू देती, कोई बर्तन माँजती थी। माँ ने कपड़े नहीं धोए तो हम कपड़े धोती थी। नहाकर अपने कपड़े भी धोती थी और रात का कुछ खाना बचा हो तो छोटे भाई बहन खा लेते थे। गर्मी के दिनों में अगर बासी खाना बचा हो तो उसे पानी में डालकर रख देते थे और सबेरे उसमें इमली का पानी डालकर खिचड़ी की तरह पकाते। इसे घाटा या आंबूकरा कहते थे। कोई भी अन्न फेंकते नहीं थे। किसी के घर पर शादी हो और खाना बचा हो तो ऐसा ही घाटा बनाकर मोहल्ले में बांट देते थे। अगर बहुत सा भात बना हो तो उसको धूप में सुखाते और खूब सूख जाने पर उसको पीसकर उसकी रोटियाँ बनाकर खाते थे। मतलब अन्न न फेंककर उसका उपयोग करते थे।''[23]

राशन का जमाना

घर में न चाय बनती थी और न नाश्ता। स्कूल जाने के पहले नौ बजे हम सब खाना खा लेते थे। भात और रसे वाली सब्जी स्कूल ले जाने के लिए अच्छा नहीं लगता था। स्कूल से पाँच बजे घर आते थे। स्कूल काफी दूर था। पैदल ही

आना पड़ता था। बहुत जोर की भूख लगती थी। रोना आता था। सबेरे का खाना बच जाता था तो छोटे भाई–बहन पहले आते थे, वे चट कर जाते थे। कभी–कभी उनमें भी खाने के लिए झगड़ा होता था क्योंकि बहुत ज्यादा खाना बचता नहीं था। राशन का जमाना था। माँ मिल से आते ही खाना बनाने लगती थी। छः–सात बजे (शाम के)खाना खा लेते थे और पढ़ने बैठ जाते थे। बराबर डर लगा रहता था कि कही मिट्टी का तेल खत्म न हो जाए। साढ़े नौ बजे तक सब सो जाते थे। सभी थके–थके रहते थे। बस्ती में दस बजे तक सन्नाटा छा जाता था।''[24]

चाय की लत डालना

चाय तब बनती थी जब कोई विशेष व्यक्ति घर में आता था। माँ पैसे देती थी। एक आने का दूध, एक आने का गुड़ या दो आने की शक्कर, पाँच पैसे की चाय की पुड़िया उस समय मिलती थी। बाबा बेकरी में थे, तब हमें चाय पीने को मिलती थी। फिर भी हमें चाय की आदत नहीं पड़ी थी। मजदूरों में चाय पीने की आदत डालने के लिए चाय कम्पनी ने (अब कम्पनी का नाम याद नहीं) हमारी बस्ती में छः महीने मुफ्त चाय पिलाई थी। पहले चाय कंपनी के लोगों ने हर घर में कितने व्यक्ति रहते हैं, इसकी सूची बनाई थी। फिर तीन–चार बजे एक आदमी स्टोव पर या किसी कोयले की अंगीठी पर चाय बनाता था। रोज़ किसी–न–किसी के आँगन में चाय बनती थी। साथ में कंपनी के नाम की छोटी झंड़ी गड़ी रहती थी। चाय बनने पर उसे एक पीतल के नल लगे ड्रम में भरकर दूसरा आदमी सूची हाथ में लेकर जिस घर में जितने आदमी के नाम लिखे होते थे, उतने कप चाय देता था। लोग अपनी पतीली में चाय लेते थे। इस तरह बस्ती के कुछ मजदूरों में चाय पीने की आदत पड़ गई थी। माँ–बाबा भी सबेरे–शाम चाय पीने लगे थे। बस्ती में सब लोगों का जीवन ऐसा ही था। सब की समस्याएँ एक जैसी ही थी। महँगाई से घर की हालत बहुत खस्ता हो रही थी। किसी तरह माँ–बाबा घर की गाड़ी चला रहे थे।''[25]

बड़ी बहिन की आर्थिक स्थिति

बड़ी बहिन की आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो रही थी। उसके पति दो–तीन बार बहुत बीमार हुए और डॉक्टरों की फीस और दवाइयों पर काफी पैसा खर्च हुआ था। बहन को हर दूसरे वर्ष बच्चे होते थे। पहली लड़की हुई, बाद में तीन लड़के हुए थे। तीनों बीमार होकर चल बसे। बहन को ग्यारह बच्चे हुए थे और वे बराबर बीमार रहते थे। ''डॉक्टर की फीस और दवाइयों के खर्चे से उनकी स्थिति बहुत खराब हो गई थी। कभी–कभी दो दिन तक चने और मुरमुरे खाकर रहते थे। माँ–बाबा कभी–कभी उन्हें सहायता करते, परन्तु वे भी कितना कर सकते थे। उनकी हालत भी कोई अच्छी नहीं थी। जीजाजी पर बहुत कर्जा हो गया था। बहन कभी किसी की गोदड़िया सीकर पैसे कमाती थी। बाद में उसको पागलखाने के पागलों के कपड़े सीने का काम मिल गया। उन्होंने अम्माजी से और बाद में एक टेलर के पास रहकर मशीन चलाने का काम सीख लिया था। पागलों के कपड़े बहुत मोटे होते थे। उन्हे सीते–सीते उनकी बाँहें दुखने लगती थी। कुछ सूजन भी आ जाती थी। इसलिए उन्होंने वहाँ का काम छोड़ दिया और किसी टेलर के पास बहन ने बटन लगाने, काज करने जैसा काम शुरू किया था। परन्तु बहुत कम पैसा मिलता था, फिर भी बहुत मदद हो जाती है।''[26]

एक पिता अपनी बेटी को बेटा मानने लगा तथा एक बेटी–बेटा बनकर अपनी पहचान बना पाने में सफल रही है। एक बेटी दो परिवारों को संभालने लगी तथा बेटी व बहू दोनों के कर्तव्यों व दायित्वों को पूर्ण करने लगी–साथ ही यदि वह नौकरी पेशा है या किसी व्यवसाय में संलग्न है तो उसके दायित्वों को भी पूर्णरूप से निर्वाह की ओर ले जाने लगी। नारी उच्च शिक्षा की ओर तेजी से कदम बढ़ाते हुए अग्रसर होने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के विगत् दस वर्षों में कई प्रतिष्ठित व्यवसायों व घरानों के व्यवसाय की ओर अग्रसर एक नारी सफलतापूर्वक ग्रहण की गई और परिणाम आशाजनक व आश्चर्यजनक रहे।

बेटियाँ व बहुएं परिवार के व्यवसाय में पूर्ण संलग्न होकर उसे बढ़ाने में अपना सहयोग प्रदान करने लगी जिसके परिणामस्वरुप उन्होंने सफलता की ऊँचाइयों को छुआ।

इन सभी के कारण भारतीय समाज का एक बड़ा तबका जो नारी का प्रतिनिधित्व करता है आर्थिक रूप से सक्षम हुआ जिसके परिणामस्वरूप पुरुष वर्ग उन्हें दबाने या डराने या उनका शोषण कर पाने में असमर्थ व असहाय महसूस करने लगा।

समाज में बढ़ती हुई महँगाई, बेरोजगारी के कारण एक स्त्री का महत्त्व और बढ़ गया यदि एक नारी आर्थिक रुप से सक्षम है या परिवार की आर्थिक सहायता प्रदान करने की उसमें क्षमता है तो परिवार में उसका महत्व अधिक होने लगा। एक पुरुष उस नारी को अधिक महत्व व सम्मान प्रदान करने लगा जो उसे आर्थिक रूप से सहयोग व सहायता प्रदान कर सके। फिर चाहे पुरुष की मानसिकता कैसी भी क्यों न हो।

इसी प्रकार एक नारी के मनोभावों तथा उसकी इच्छाओं का महत्व भी बढ़ गया और वह निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र सी हो गई।

जब एक नारी अपना स्वयं का अस्तित्व बना लेती है या एक सम्मानजनक पद व प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती है तो वह स्वतंत्र निर्णय लेने के योग्य हो जाती है तथा उसकी तुलना पुरुष के वजूद व स्वरूप के समान हो जाती है। जब एक नारी अपने जीवन में संघर्ष कर समाज में सम्मान प्राप्त कर लेती है तो जो दुःख–दर्द, पीड़ा का अहसास उसे हुआ है अब वह समाज के साथ बाँटने में सक्षम हो जाती है तथा उसे पता होता है कि अब समाज व पुरुष वर्ग उसकी कही हुई बातों को नकार नहीं सकता अतः अपने जीवन के उन कड़वे व कुछ मीठी यादों को यादगार के तौर पर आत्मकथा के रुप में परिणत कर समाज को सौंपती है जिससे समाज में नारी की गरिमा व सम्मान बढ़े तथा जो नारी इस प्रकार की पीड़ा व दुःख को

भोग रही है, अत्याचार को सहन कर रही है। वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सन्तुष्टि व सुखपूर्वक जी सके। नारी अपने आपको उन दुखों व अत्याचारों से अपने आपको उभार कर पुनः अपना जीवन नये रूप में नयी पहचान के साथ स्थापित कर सके तथा समाज में एक दिव्य ज्योति के रुप में अपना प्रकाश फैला सके।

वर्तमान समय की नारी शिक्षित होकर आत्मनिर्भर बन रही है तथा जागरुक भी है वह अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए तत्पर भी हैं और संघर्षशील भी हैं। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्षों में समाज में नारी शिक्षा के लिए जो बदलाव व परिवर्तन आये तथा महिला सशक्तिकरण के द्वारा महिलाओं व बालिकाओं को अधिकार प्रदान करने की जो कोशिशे की जाने लगी। उसी के कारण आज महिलाओं की स्थिति बेहतर है।

आज हर क्षेत्र में महिलाएं अपना वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश कर रही है तथा हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी बढ़ रही है। इसी के साथ महिलाएं आर्थिक व सामाजिक तौर पर सक्षम व आत्मनिर्भर भी हो रही है अतः जो नारी समाज में अपने को स्थापित कर पाती है या सम्पन्न परिवार से, प्रतिष्ठित पद से होती है उनमें समाज में अपनी एक पहचान बनाने तथा स्वयं के जीवन को, दूसरों को जानने व बताने की इच्छा प्रबल होने लगती है। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के वर्षों में अधिकांश महिलाओं में आत्मकथा लिखने की होड़ सी लग गई। इसका एक कारण मीडिया व इन्टरनेट की भूमिका भी है जो किसी भी व्यक्ति को रातोंरात प्रसिद्धि दिला देता है। हमारा भारतीय समाज सच्चाई को हमेशा नजर अन्दाज करता आया है तथा सत्य को आसानी से स्वीकार नहीं करता हैं और यदि वह सच्चाई एक नारी द्वारा शब्दों में व्यक्त की गई होती है तो पुरुष वर्ग उसे ग्रहण करने में हिचकिचाता है तथा उस पर अनावश्यक रोष व समीक्षाएं तथा विपरीत प्रतिक्रियाएं प्राप्त होने लगती है।

फिल्मी क्षेत्र एक इस प्रकार का क्षेत्र है जो कल्पना व भविष्य के आधारों पर टिका होता है तथा चकाचौंध से भरा होता है परन्तु वास्तविकता से परे होता है लेकिन इस क्षेत्र में अचानक व्यक्ति को धन, वैभव, सम्पन्नता, ऐश्वर्य प्राप्त होने की आशा होती है तथा इस क्षेत्र की सभी महिलाएं किसी भी कारण–अकारण मीड़िया में बनी रहना चाहती है। जिससे उनकी छवि समाज में हमेशा बनी रहे फिर चाहे ''उस छवि को बनाने या अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उसे अपने जिस्म का सौदा ही क्यों न करना पड़े या उसे इसके लिए अंग प्रदर्शन ही क्यों ना करना पड़े। एक बार जब किसी महिला को इस प्रकार के क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है तो अपने पद को बनाये रखने या स्वार्थसिद्धिवश या समाज की सहानुभूति प्राप्त करने के उद्धेश्य से इस प्रकार की महिलाएं फोरी आत्मकथाएं लिखती हैं।''[27] इस प्रकार की महिलाओं ने सदी के प्रारम्भ में अचानक मीडिया का ध्यान आकर्षित किया तथा इन्टरनेट की उपलब्धता के कारण महिलाएं आत्मकथा लिखने को प्रेरित हुई। परन्तु इस प्रकार लिखी गई आत्मकथाएं वास्तविक आत्मकथाओं की श्रेणी में बहुत ही कम प्राप्त हुई। कई प्रतिष्ठित घरानों की महिलाओं व बहुओं द्वारा भी आत्मकथाएं लिखी गई है परन्तु उनमे सत्य का अंश अंशमात्र ही है।

जो आत्मकथाएं किसी कवयित्री, लेखिका या समाज–सेविका द्वारा लिखी जाती है। उसमें मौलिकता, सत्यता व भावनाओं की वास्तविक सृजनता दृष्टिगत होती है जो स्वयं ही इस बात का प्रमाण होती है कि यह वास्तविक जीवन पर आधारित वास्तविक घटनाओं को, जीवन संघर्ष को चरितार्थ करती है।

इसी प्रकार से जिस नारी का जीवन संघर्षमय रहा हो अर्थात् पति द्वारा छोड़ दिये जाने पर कठिनाइयों व समस्याओं के साथ एक नये जीवन की शुरूआत करना, पति द्वारा प्रताड़ना, अत्याचार सहते हुए अलग होकर स्वतंत्र रूप से जीवन जीना, पति की आकस्मिक मृत्यु होने पर परिवार का भरण–पोषण करते हुए कष्टमय जीवन व्यतीत करना, पति व परिवार में कष्ट, सुख आदि होने पर संघर्ष

करते हुए परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ बनाना, ससुराल द्वारा घर से निकाली गई बहू द्वारा संघर्ष कर अपने अधिकारों को प्राप्त करना, बलात्कार व शारीरिक शोषण का शिकार तथा जीवन पर्यन्त उस दर्द यंत्रणा को सहते हुए समाज में आत्मसम्मान प्राप्त करना, समाज द्वारा ठुकराई व निकाली गई स्त्री द्वारा अपने आप की पहचान स्थापित करना। धोखा, छलकपट द्वारा एक स्त्री की भावनाओं के साथ खेल कर उसे छोड़ देने पर अपने आत्मसम्मान के साथ जीना, पति व परिवार के सदस्यों द्वारा कष्टमय जीवन जीने व अत्याचारों, पीड़ा, शोषण को सहते हुए अपने स्वयं की पहचान को स्थापित करना, कार्यस्थल व कार्यक्षेत्र में पुरुषों द्वारा शारीरिक शोषण, अवाछंनीय बातों, कटाक्षों, मानसिक विकृति वाले पुरुषों की भद्दी व घिनोनी नजरों तथा शब्दों से बचाती हुई तथा अपनी शर्म व लज्जा का मान रखती हुई संघर्षशील नारी द्वारा लिखी गई आत्मकथाओं में सत्य की खोज की पूर्णाहुति होती है क्योंकि वह अपनी कलम से अपनी भावनाओं की सुखद अनुभूति को व्यक्त करती है जो उसकी स्वयं की आत्मानुभूति का परिणाम होती है।

एक नारी अपने जीवन में विभिन्न सम्बन्धों तथा पदों को धारण करती है तथा सभी की अनुभूति व अनुभव प्राप्त करती है इस प्रकार प्राप्त अनुभव जीवन की सच्चाई व वास्तविकता का सामाजिक परिचय प्रस्तुत करती है कि आज भी नारी अपने अधिकार, पद, अपनी लज्जा को बचाने के लिए संघर्षशील है। वर्तमान में केवल दुःख, दर्द, पीड़ा, अत्याचारों का स्वरूप बदल गया है परन्तु नारी की स्थिति अभी भी भारतीय समाज में वैसी ही बनी हुई है जैसे अन्य शताब्दियों में थी।

नारी के साथ होने वाले अत्याचार, शारीरिक शोषण जब उसके दिल को चीर या भेद देते हैं तथा उसकी अंतरात्मा वेदना से फट जाती है तो उस दुःख दर्द, पीड़ा का बखान ही आत्मकथा होता है।

जब एक नारी अपने आत्मसम्मान व अपनी रक्षा व अपने स्त्रीत्व की रक्षा करते हुए अपने जीवन को एक नयी दिशा व सोच प्रदान करती है तथा अपने

जीवन को एक पहचान दिलाती है जिससे समाज व पुरुष वर्ग उसे सम्मान की दृष्टि से देखे तथा उसे पुरूष के समान ही अधिकार प्राप्त हो उसके साथ समानता का व्यवहार हो तो वह आर्थिक तथा सामाजिक रूप से सुदृढ़ होकर अपने आपको स्थापित करती है किंतु जो स्वतन्त्रता उसे संघर्ष के पश्चात् प्राप्त होती है उसकी पूर्ण परिणती के रूप में आत्मकथा का सृजन होता है।

गत् शताब्दी में अधिकांश आत्मकथाएं उन महिलाओं द्वारा लिखी गई जो आर्थिक रूप से सक्षम थी तथा जिन्हें आसानी से समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी या उनकी पृष्ठभूमि राजनीतिक स्थिति की थी। जिसकी भूमिका व आधार पर आत्मकथा केवल चर्चा में रहने के कारण लिखी गई।

इस प्रकार की आत्मकथाओं में जीवन की सच्चाईयों का अभाव सा रहता है केवल जीवन के कुछ अंश का समावेश औपचारिकतावश किया गया होता है।

4.2 आर्थिक स्वातन्त्रय और बनते बिगड़ते रिश्ते :

आर्थिक स्वातन्त्र्य से घर और परिवार के मध्य बनते बिगड़ते रिश्ते इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन में परिवर्तन चक्र के साथ मूल्य चक्र में घूमते दिखाई देते हैं। इन बनते बिगड़ते रिश्तों को सबसे पहले नैतिकता की कसौटी पर कसते हैं। इक्कीसवीं सदी की आत्मकथाओं में भारतीय समाज परम्परागत नैतिक मान्यताओं को तिलांजलि देकर नवीन नैतिक मान्यताओं को अपना रहा है। आज विधवा–विवाह के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। आज विधवा विवाह समस्या अनैतिक नहीं, बल्कि उदात्त कर्म माना जाता है। भारतीय समाज में विधवा विवाह का प्रसार दिन–प्रतिदिन होता जा रहा है। अनेक मामलों में बड़े भाई के देहान्त के बाद छोटा भाई भाभी से विवाह कर लेता है। मूल्य संक्रमण के इस दौर में आर्थिक नैतिकता के अर्थ बदल रहे हैं।

"नैतिक शब्द का अर्थ आचरण से सम्बधित है। नैतिक शब्द 'नीति' से बना है। समाज धर्म और राज्य द्वारा निर्मित नियमों के अनुकूल चलना ही नीति है और उन नियमों के अनुकूल आचरण से संबन्धित मूल्य ही नैतिक मूल्य है। दया, त्याग, पवित्रता, सत्य आदि शाश्वत मूल्यों को नैतिक मूल्य कहा जा सकता है। समाज, राज्य तथा धर्म के द्वारा स्वीकृत व्यवहार ही मूल्य के अन्तर्गत आते हैं।''[28]

नैतिक तथा आचरण शब्द एक–दूसरे से विशेष रूप से जुड़े हुए हैं, क्योंकि जहाँ आचरण होगा, वहाँ नैतिकता स्वतः ही आ जाएगी। भौतिक मूल्यों से धर्म और चरित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि व्यक्ति स्वभावतः ही धार्मिक है तो नैतिकता उसके जीवन में स्वतः ही उतरती चली जाएगी। धर्म, त्याग, सत्य, दान, दया, पुण्य, मानवता, पवित्रता, शान्ति आदि मनोवृत्तियां नैतिक मूल्यों के ही सहायक अंग हैं। अतः जहाँ ये मनोवृत्तियां अभिव्यक्त होगी, वहीं सच्चे मूल्यों की स्थापना होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि नैतिकता बनावटी न हो, स्वतः ही जीवन में उतरनी चाहिए। 'जीवन' में यदि धर्म समा जाए तो जो भी व्यक्ति करता है, वह नैतिक ही होता है। नैतिकता के लिए नीति की शिक्षा नहीं, धर्म की शिक्षा अपेक्षित है। सौन्दर्य मूल्य और नैतिक मूल्य एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं। यद्यपि कुछ विद्वान इनमें अन्तर भी मानते हैं। जब तक नैतिकता नहीं होगी, तब तक सौन्दर्य मूल्यों का उदय होना सम्भव नहीं है। अतः नैतिकता ही तो सौन्दर्य का आधारस्तम्भ है।

भारतीय समाज में नैतिक मूल्यों के प्रति विशेष आदर रहा है। यही कारण है कि समाज और शासन के प्रति निष्ठावान रहने की परम्परा भारतीय जनता में विशेष रूप से विद्यमान रही है। हमारे यहाँ आचरण की पवित्रता को अधिक महत्त्व दिया गया है। मूल्य के दो भेद माने जाते हैं। एक शाश्वत मूल्य और दूसरा समाज सापेक्ष जीवन मूल्य। शाश्वत मूल्य ये सर्वमान्य आचरण सिद्धान्त के अन्तर्गत आते हैं। ये मूल्य किसी भी समय और परिस्थिति में नहीं बदलते। वस्तुतः नैतिक मूल्यों का जन्म ही सामाजिक आवश्यकता के साथ हुआ है। जीवन मूल्य विकसित होने

के बाद विश्व नैतिकता के रूप में स्वीकार किया गया, जिन्हें दूसरी ओर समाज सापेक्ष जीवन मूल्य रूढ़िवादी व्यवहार की चुनौती देते हैं। जो मूल्य एक युग में नैतिक लगते हैं, वे ही दूसरे युग में अनैतिक लगने लगते हैं। ये मूल्य समाज तथा देश के अनुसार बदलते रहते हैं जो बात एक देश में नैतिक मानी जाती है, वही दूसरे देश में अनैतिक हो सकती है जैसे उन्मुक्त यौन सम्बन्ध कई पाश्चात्य देशों में उतने वर्जित नहीं है, किन्तु भारतीय समाज में आज भी इन्हें वर्जित और घृणित माना जाता है।

सामाजिक मूल्य हर युग में साहित्य को प्रभावित करते हैं जागरुक साहित्यकार सदैव नये मूल्यों का आग्रही होता है। शायद इसलिए कालीदास का भी लिखकर ''पुराण मित्येव न साधु सर्वम्''[29] भी घोषणा करनी पड़ी थी। भारतीय साहित्य में मूल्यों के सन्दर्भ में आज अनिश्चिय की स्थिति दिखाई देती है। ''जैसे–जैसे समाज में नैतिक मूल्यों का विकास होता है, वैसे–वैसे साहित्य के समीक्षात्मक मानदण्ड भी बदल जाते हैं। पुराने साहित्य में सच्चाई और ईमानदारी पर प्रत्यक्ष जोर दिया जाता था, परन्तु आज अभिव्यक्ति का स्वरूप बदल गया है।''[30] मूल्य विघटन के इस युग में ईमानदार व्यक्ति के हिस्से में पीड़ाएं ही अधिक आती हैं। यह भी मूल्यों के प्रति साहित्य का अप्रत्यक्ष आग्रह ही है। यही इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में देखा जाता हैं।

प्रत्येक समाज में नैतिक मूल्यों की विशिष्ट परम्परा रही है। उच्चता, श्लील, अश्लील के अपने मानदण्ड होते हैं। समाज की उच्छृंखलता पर नैतिक मूल्यों का नियंत्रण रहता है। वर्तमान परिस्थितियों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि इक्कीसवीं सदी के भारतीय समाज ने परम्परागत नैतिक मान्यताओं को अस्वीकार करने की प्रक्रिया अपनायी हैं। आज का युवा वर्ग जैसे प्राचीन नैतिकता के जुए से मुक्त होने की शपथ ही ले चुका है परम्परागत नैतिक मूल्यों के भंजन में

परिस्थितियों ने गंभीर भूमिका निभाई है। अतः इसी पृष्ठभूमि पर महिला आत्मकथाओं में नैतिक मूल्यों का विवेचन अपेक्षित हैं।

अर्थ तंत्र पर रिश्तों की बलि

इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन के गद्य साहित्य में जीवन मूल्यों की दो स्थितियां सामने आती हैं। एक तरफ हमारे भारतीय संस्कारों से जुड़े मूल्य हैं, जो कालखण्ड में तीव्रगति के साथ परिवर्तित हुए हैं। पाश्चात्य संस्कृति ने हमारे जीवन को अन्दर तक अर्थात् गहराई तक प्रभावित किया है। हमारी भारतीय परम्पराएं धीरे–धीरे टूटती चली गई हैं। संयुक्त परिवार, ग्राम स्वराज्य, अतिथि सेवा, भाईचारे की भावना आदि परम्पराएं बिखरती हुई दिखाई देती हैं। हर क्षेत्र में एक यांत्रिकता आ गई है। वेश–भूषा, खानपान, और रहन–सहन सभी में हमनें पाश्चात्य संस्कृति का अन्धानुकरण किया है। यह परिवर्तन अच्छा है या बुरा है, यह कहना अनावश्यक है। परन्तु यह सत्य है कि पाश्चात्य प्रभाव ने हमारे जीवन को ऊपर से ही प्रभावित नहीं किया बल्कि अन्दर तक बदल दिया है। इस परिवर्तन से हानि के साथ लाभ भी हुआ है। अस्पृश्यता, जातिभेद, दहेजप्रथा, बालविवाह और वैधव्य जीवन सरीखी सदियों पुरानी कथाएं भी अपने आप मिटने लगी हैं। हम अपने आप को एक परिवर्तित युग में खड़ा पाते हैं, जो हमारे परम्परागत समाज से सर्वथा भिन्न है। अर्थ तंत्र पर रिश्तों की बलि आज हर घर में देखी जा रही हैं।

पारिवारिक विघटन का मूल : अर्थ

इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा लेखन ने जीवन का हर कोना छान मारा है। जीवन की कोई भी पीड़ा उनकी नज़रों में अछूती नहीं रही है। उन्होंने अपने आत्मकथा लेखन में शाश्वत मूल्यों के विघटन और परम्परागत मूल्यों के संक्रमण को अनेक रूपों में चित्रित किया है। साहित्यकार को जीवन की स्थितियों का निर्लिप्त भाव से चित्रण करना है। समस्याओं को जान लेना ही काफी नहीं है।

उसका कृत्रिम समाधान करना भी आवश्यक है और आप इस लक्ष्य में पूर्णतः सफल हैं। इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा साहित्य की विषयवस्तु की दृष्टि से एक ठहराव सा आ गया है, परन्तु यह ठहराव गद्य साहित्य का नहीं है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बदलती हुई परिस्थितियों ने महिला साहित्यकारों को जो कैनवास प्रदान किया था, वह आज तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। स्थितियां तनिक भी नहीं बदलती है, बदली है तो केवल इतनी कि पहले मूल्य संकट की स्थिति सीमित थी, अब और अधिक व्यापक हो गई है। आज भ्रष्टाचार सर्वव्यापक हो गया है। जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जिस पर उसका प्रभाव नहीं पड़ा हो। इन स्थितियों ने बुद्धिजीवी वर्ग को एक सदृश्य निराशा से भर दिया है। आज पारिवारिक विघटन का मूल कारण अर्थ ही है। इस निराशा की छाया इक्कीसवीं सदी के महिला आत्मकथा पर पड़ना स्वाभाविक है, किन्तु यह स्थिति स्थायी नहीं है।

पीढ़ीगत आर्थिक दासता

आत्मकथा साहित्यकार का रथ समाज का मार्गदर्शन करते हुए सदा आगे बढ़ता रहा है। रास्ता ऊबड़–खाबड़ हो तो सफर कष्टसाध्य हो जाता है, पर साहित्यकार रुकता नहीं है। इसलिए महिला आत्मकथा लेखिकाओं के साहित्य में निबन्धों, जीवनियों, कहानियों आदि की संख्या नगण्य नहीं है, जिनमें शाश्वत मूल्यों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। साहित्यकार शाश्वत मूल्यों के प्रति सदैव ही आस्थावान रहा है। चाहे वह भारतेन्दु युग का गद्य साहित्य हो, चाहे प्रेमचन्द युगीन कहानी– 'सवा सेर गेहूँ' पीढ़ीगत आर्थिक दासता का शंखनाद है उनकी आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानी या निबन्ध या जीवनियां हो अथवा आज की अति यथार्थवादी व आदर्शवादी कहानी, नाटक, निबन्ध, जीवनी आदि गद्य विधाएं हो साहित्यकार सर्वत्र आर्थिक मूल्यों के प्रति आग्रही होता है। साहित्यकार की यह आस्था ही पाठकों को मूल्यों के प्रति शाश्वत करती है। बुराई कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, अच्छाई को हरा नहीं सकती। यह विश्वास ही आपकी

प्रगति का आधार है। जिसे हम विविध आत्मकथाओं में इस प्रकार देखते हैं :

मेरीकॉम (मेरी कहानी) लेखिका स्वयं यह मानती है कि उनके जीवन की उपलब्धियों में उनके पति का सहयोग व साथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। एक परिवार तथा बच्चों को पालने तथा घर की जिम्मेदारियों का निर्वाह और पत्नी को प्रेरणा व प्रोत्साहन देना वह भी अलग–अलग रहते हुए एक नारी के लिए आत्म–सम्मान की बात है।

इसी कारण से मेरीकॉम तथा उनके पति के मध्य हमेशा प्रेम व मधुर सम्बन्ध बने रहे, एक अटूट विश्वास के साथ उनका परिवार हमेशा उनके साथ जुड़ा रहा।

एक–दूसरे की भावनाओं को समझते हुए तथा जीवन के लक्ष्य को जानकर उसे प्राप्त करने में साथ देना उनके जीवन का आधार बना।

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुण्डल बसै) जब कस्तूरी के पति का देहान्त हो जाता है और वह विधवा बन जाती है तो उसके अन्दर की स्त्री यही कहती है कि आखिर इतनी गरीबी में मेरी शादी कर दी, उसके पश्चात् पुरुष छोड़कर चला गया विधुर पुरुष की कोई बन्धन की जिन्दगी नहीं होती परन्तु एक विधवा तथा सन्तान पालने की बाध्यता। यही सब सोचकर वह अपने को मजबूत बनाती है वह सोचती है कि जब किसी को उसकी चिन्ता नहीं तो उसे भी क्यों हो, वह अपनी शिक्षा को बढ़ाती है साथ ही पुरूष समाज का सामना करने के लिए तत्पर रहती है।

कस्तूरी मानती है कि आर्थिक स्थिति तथा शिक्षा से ही एक नारी की स्थिति बदल सकती है। अतः वह मैत्रेयी को भी समाज से लड़ने की शिक्षा प्रदान करती है।

अपनी बेटी के जीवन को बदलकर देखने वाली माँ को मैत्रेयी कोड़ा चलाने वाली लगती है तथा माँ उसकी भावनाओं तथा उसके स्त्रीत्व को समझ नहीं रही

है। कई बार उनके रिश्तों में उतार चढ़ाव आते हैं परन्तु अन्ततः मैत्रेयी अपनी माँ को समझ पाती है।

मैत्रेयी का स्वयं का वैवाहिक जीवन असंतुष्ट रहा। पति उसे अपने स्तर के अनुरूप नहीं समझता और हमेशा उससे दूरी बनाकर रहता है। परन्तु मैत्रेयी अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों को बखूबी निभाती है।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) जिस लेखक को अपना आदर्श मानती है तथा उसके द्वारा विवाह का प्रस्ताव प्राप्त होता है तो उनकी कल्पना साकार होते हुए नजर आती है परन्तु विवाह के पश्चात् ''समानान्तर जिन्दगी'' का जो आधुनिक पैटर्न पति द्वारा दिया जाता है उससे ''उनकी जिन्दगी रेगिस्तान में जल की तलाश में फिरने वाले मृग के समान हो जाती जिसे पति तो नजर आता है परन्तु उसका प्रेम तथा साथ उन्हें प्राप्त नहीं होता।''[30]

मन्नू भंडारी के रिश्ते में एक ठहराव व ठण्डापन ही रह गया था परन्तु प्रेम करने की विवशता के कारण पति का साथ छोड़ने में उन्हें तीस वर्ष लग गये। धीरे–धीरे उन्होंने अपने जीवन को पुनः साहित्य की ओर अग्रसर किया तथा उन्हें सफलता प्राप्त होती गई।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) ने अपनी आत्मकथा में प्रेम को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया तथा जिससे प्रेम किया जीवनभर उसका साथ भी दिया परन्तु ''डॉ. सर्राफ न तो उससे प्रेम कर सके, ना रिश्ते को मान सके बल्कि बिना नाम के रिश्ते पर भी शक करते थे।''[31]

परन्तु जब प्रभा जी ''व्यवसाय से जुड़ी तथा आर्थिक रुप से सुदृढ़ होने लगी तो जो सम्मान उन्हें अपमानित करता था उसी ने उन्हें पद प्रदान किया, सम्मान दिया। उन्होंने स्वयं अपनी पहचान बनायी। वह मानती है कि क्या एक स्त्री का विवाह करना आवश्यक है।''[32] क्या किसी विवाहित पुरुष से प्रेम करना पाप है

क्यों? जब यही एक पुरुष करता है तो उसके सम्मान में तो कोई कमी नहीं आती समाज उसे तो कुछ नहीं कहता।

लेखिका अपना सर्वस्व देकर भी डॉ. सर्राफ के परिवार की देखभाल एक पत्नी के रूप में करती है परन्तु अन्ततः उनके रिश्तों को कोई भी स्वीकार नहीं करता।

विगत् दस वर्षों में भारतीय परिवेश में बहुत अधिक परिवर्तन आया है। समाज की सोच, पहनावे, रीति–रिवाजों, सम्बन्धों में बदलाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है जिस भारतीय संस्कृति, सभ्यता व मूल्यों तथा परम्पराओं पर भारतीयता कायम है तथा जो इसका आधार है धीरे–धीरे उनमें परिवर्तन हो रहा है तथा यह विलुप्त होती जा रही है पाश्चात्यकरण की संस्कृति का प्रभाव धीरे–धीरे आधुनिकता के साथ भारतीय समाज पर अपना प्रभाव स्थापित करता जा रहा है।

नारी सशक्तिकरण तथा बालिका शिक्षा ने नारी के लिए शिक्षा के द्वार क्या खोले, उसने अपनी सीमाओं का भी उल्लंघन करना प्रारम्भ कर दिया। स्वतंत्रता का तात्पर्य कभी भी स्वछन्दता नहीं होता है, स्वतंत्रता से तात्पर्य विचारों की अभिव्यक्ति तथा अधिकारों का सही उपयोग से है। परन्तु नारी ही स्वतः अपनी गरिमा तथा अपने नारीत्व को छिन्न–भिन्न करती सी प्रस्तुत हो रही हैं।

यदि हम नारी की स्वतंत्रता की बात करते हैं तो आज जो स्थिति नारी की है उसमें उसे शिक्षा प्राप्त करने, जीवन जीने, स्वतंत्रतापूर्वक निर्णय लेने का अधिकार प्रदान कर दिया हैं तो क्या अधिकार प्राप्त हो जाने से नारी उन अधिकार का सही उपयोग कर रही है? क्या नारी द्वारा स्वयं उन अधिकारों का उल्लघंन नहीं किया जा रहा है? क्या नारी की स्थिति के लिए केवल पुरुष ही उत्तरदायी हैं?

वर्तमान परिवेश में नारी जिस प्रकार से आधुनिकता का चोला ओढ़ कर पाश्चात्यकरण के रंग में रंग कर अपनी महत्त्वाकांक्षाओं या हठधर्मिता की जिस

प्रकार से पूर्ति करना चाह रही है वह ठीक नहीं है। भारतीय परिवेश, संस्कारों के लिए यह घातक है जिसका प्रमाण हमारी अपनी संस्कृति को गर्त की ओर धकेल रहा है और हम मूक बधिर की तरह केवल उसे महसूस कर पा रहे हैं। व्यक्ति छटपटा रहा है परन्तु करना कुछ चाह नहीं रहा है इसका कारण वर्तमान जीवन शैली, जीवकोपार्जन के साधन, आधुनिकता के साधन, दूर–संचार, तकनीक व उपकरण भौतिकवादिता का प्रभाव है जो सम्बन्धों में दूरियां बढ़ा रहा है तथा व्यक्ति मशीनीकृत होता जा रहा है।

नारी की जहाँ तक स्वतंत्रता की बात है तो उसे अब कई प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त हो रही है परन्तु इसके घातक व विपरीत परिणाम भी दृष्टिगत हो रहे हैं जो समाज की संस्कृति व संस्कारों को नष्ट कर रहे हैं आज नारी के विचारों में स्वतंत्रता है उसे पहनावे में स्वतंत्रता है, उसे रहन–सहन, खान–पान तथा आजादी के साथ जीवन जीने का अधिकार है तो क्या नारी अपने अस्तित्व, गरिमा, मातृत्व, वात्सल्य जैसे गुणों के आधार पर पतिव्रता धर्म निभा पा रही हैं? क्या इस प्रकार के जीवन से परिवार बन पा रहे हैं? क्या नारी अपने घर का सपना सच कर पा रही है? इस प्रकार की कमोवेश स्थिति आज जो बन रही है अविस्मरणीय है जो घटनाएं और जिस प्रकार की घटनाएं समाज में हो रही है वह इस बात को स्पष्ट करती है कि हमारे परिवेश में पुरुष मानसिकता व नारी की मानसिकता परिपक्वता की स्थिति में नहीं है हम खुले तौर पर सत्य को स्वीकार नहीं कर पाते हैं तथा भारतीय परम्परा की एक गरिमा रही है जो आज की नारी तोड़ रही है जिसके कारण सम्बन्धों में दरारें व दूरियाँ स्थापित हो रही है परिवार एक नहीं हो पा रहे हैं।

एक परिवार को जोड़े रखने व बनाये रखने तथा नयी पीढ़ी को संस्कार प्रदान करने का उत्तरदायित्व शायद एक नारी का पुरुष की अपेक्षा कहीं ज्यादा होता है क्योंकि वह एक अद्‌भुत पद को आधार करती है जिसे माँ कहा जाता है

जो बच्चे की प्रथम गुरू मानी जाती है क्योंकि संस्कारों के सृजन तो उसकी कोख व गर्भ से ही होना प्रारम्भ हो जाते हैं अतः एक नारी के चरित्र, उसके विचार, मन आदि का प्रभाव बालक के व्यावहारिक व मनोवैज्ञानिक पक्ष पर पड़ता है और एक परिवार तथा परिवारों से समाज का निर्माण होता है।

आज हमारे समाज में जिस तरह का बदलाव देखा जा रहा है वह मानसिक विकृति को प्रदर्शित कर रहा है। कहा भी जाता है कि एक पुरुष की मानसिकता तथा चरित्र से केवल एक परिवार बिगड़ता है परन्तु स्त्री चरित्र व मानसिकता की विकृति से कई पीढ़ियाँ उसके दर्द को भोगती हैं।

नारी जाति की मानसिकता में जो परिवर्तन वर्तमान समाज में प्रदर्शित हो रहे हैं जैसे :

सोच में अंतर

जैसा कि हम आधुनिक नारी को देख पा रहे हैं उसकी सोच तथा पहले की नारी की सोच में बहुत बड़ा अन्तर स्पष्ट रूप से नजर आता है। आज की भारतीय नारी शिक्षित होकर अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने स्वाभिमान के साथ जीना चाहती है। उसकी सोच में संकीर्णता का दायरा अधिक नजर आने लगा हैं। वह केवल अपने आप या पति व बच्चों तक ही सीमित होती जा रही है। खास तौर पर कामकाजी महिलाएं तो केवल अपने और केवल स्वयं के बारे में ही सोचने लगी है इस बात से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है कि मेरे पति, परिवार या अन्य उसके बारे में क्या विचारधारा रखते हैं या उनकी क्या धारणा है वह केवल अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहती है सम्बन्धों को निभाने व उत्तरदायित्व कर्त्तव्यों की सोच तथा दायरा कम होता जा रहा है इसी का परिणाम एकल परिवार का होना पाया जा रहा है नारी अपनी सोच से ऊपर नहीं उठना चाहती है उसमें त्याग, सर्मपण, प्रेम जैसे गुणों की कमी महसूस होती है। केवल शारीरिक ही नहीं

मानसिक तौर पर भी नारी विकृति का शिकार हो रही है। वह स्वयं तो गलत रास्तों को चुन रही है तथा अन्यों को भी उसमें सम्मिलित कर रही है। वर्तमान में पुरुष समाज को बिगाड़ने में जितना उत्तरदायी माना जाता है बल्कि नारी का जो पद है उसके अनुसार तो उसका उत्तरदायित्व कहीं अधिक है।

ईश्वर ने उसे जो मातृत्व का सुख प्रदान करने की शक्ति दी है उसी के अनुसार पुरुष व नारी की शारीरिक संरचना भी भिन्न है तथा उनके स्वभाव व गुण भी। अतः हम नारी को संस्कार प्रदान करने वाली प्रतिमूर्ति के रूप में देखते हैं यदि उसकी सोच ही संकीर्ण विचारधारा वाली हो जायेगी तो पीढ़ी में संस्कार कहाँ से जागृत होंगे।

अच्छे या बुरे, गलत या सही की समझ न होने पर भी नारी द्वारा लिये जा रहे निर्णय के लिए वह अन्य को ही दोष देती है। वर्तमान में बालिकाओं के साथ होने वाले अत्याचार आम बात सी हो गई है। सम्बन्धों में शारीरिक आकर्षण मुख्य होता जा रहा है। महत्त्वाकांक्षाओं व भविष्य की ऊँची उड़ान व कल्पनाशील जीवन, फिल्मी जीवन की अवास्तविकता से परे नारी उसे प्राप्त करने के लिए रेगिस्तान में प्यासे मृग की तृष्णा शांत करने के लिए दौड़ी जा रही है।

नारी की सोच इतनी संकीर्ण होती जा रही है कि वह गलत परिणामों की चिंता भी नहीं कर रही हैं। यह उसकी हठधर्मिता या अहं ही है जो उसे पतन की ओर ले जा रहा हैं।

उसकी सोच के परिणामस्वरुप ही उसके रिश्ते पति या परिवार के साथ अच्छे नहीं हो पा रहे हैं तथा जो व्यक्ति उसके प्रति आकर्षित हैं या मन में गलत सोच रखते हैं उनके साथ उसके रिश्ते अच्छे हैं क्योंकि वे लोग ऊपरी मन से अच्छी बातें करते हैं परन्तु मन में मैल होता है।

नारी की यह सोच ही परिवार में सम्बन्धों को बाँधकर नहीं रख पा रही है तथा वह स्वयं भी जीवन के दलदल में फंसती जा रही है। यदि नारी परिवार को अच्छे से संभाल रही है तो वर्तमान के साथ उसकी सोच मेल नहीं खा पा रही है और यदि वह आधुनिक नारी है तो सम्बन्धों को जोड़ नहीं पा रही है। मन में तनाव व असंतुष्टि के भाव के कारण सम्बन्धों में अजीब सा तनाव नजर आता है।

नारी की सोच, कार्यप्रणाली, घरेलू कार्य, समय, समयावधि आदि का तालमेल जीवन में सही रूप से बैठाना कठिन कार्य है तथा आधुनिकता की भागदौड़ में नारी में इसकी कमी है। शारीरिक रूप से वह कमजोर है तथा परिवार के कार्यों में अन्यों की ज्यादा भागीदारी बढ़ाना चाहती है। इसी कारण से पति–पत्नी के अधिकांश सम्बन्ध तनावपूर्ण है परन्तु भारतीय समाज के रीतिरिवाजों आदि के कारण दोनों सम्बन्धों का बोझ ढ़ो रहे हैं।

नारी तो सभी प्रकार के सम्बन्धों में पूर्ण स्वतन्त्रता चाह रही है। जो असम्भव है क्योंकि वही तो है जो जीवन का आधार है।

एकल परिवार की मानसिकता

वर्तमान समाज में संयुक्त परिवार का होना अहम बात है क्योंकि वर्तमान नारी की सोच एकल परिवार की होती जा रही है। जब एक बालिका परिवार में बड़ी होती है तो जो वह सम्बन्धों में तनाव, रिश्तों में झगड़े देखती है, सास–बहू की तकरार देखती है तो वह स्वयं ही रिश्तों से दूर हटने की कोशिश करती है तथा उसका मन स्वतः ही एकल परिवार की ओर जाने लगता है क्योंकि उसे लगता है कि इससे उसका तनाव कम होगा, रिश्तों में दूरियाँ होगी तो जीवन में शांति होगी अतः वह रिश्तों से भागना चाहती है।

दूसरा कारण वर्तमान फिल्मी जीवन है जिसकी कल्पना में वह जीना चाहती है अतः वह अपना जीवन अलग व्यतीत करना चाहती है जहाँ केवल वह और

उसका परिवार है तथा अन्य की दखलअंदाजी न हो। वह अपने अनुसार कार्य कर सके, जीवन जी सके, परन्तु जहाँ एकल परिवार के फायदे हैं वहाँ नुकसान भी है तो इसी प्रकार संयुक्त परिवार के फायदे भी है तो नुकसान भी है, लेकिन जो परिवार संयुक्त परिवारों में रहते हैं तथा एकल परिवार के रूप में भी रह चुके होते हैं। उनके अनुसार संयुक्त परिवार में फायदे अधिक हैं। वहाँ समस्याएं, परेशानियाँ बँट जाती हैं, व्यक्ति तनावरहित रहता है, जबकि एकल परिवार की समस्या या परेशानियाँ उन्हें स्वयं को ही भुगतनी पड़ती है। परन्तु वर्तमान में नौकरीपेशा व्यक्ति द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण के कारण भी एकल परिवार का सिद्धांत अपनाना मजबूरी होती जा रही है।

वर्तमान समाज में अभिभावकों की सोच व मानसिकता भी एकल परिवार को प्राथमिकता प्रदान करती है अर्थात् अभिभावक स्वयं यह चाहते हैं कि शादी के पश्चात् यदि उनकी लड़की व लड़का परिवार से अलग रहे तो ज्यादा सुखी व प्रसन्न रहेंगे परन्तु यह भ्रामक तथ्य है हाँ यह बात सत्य है कि यदि परिवार में नारी को समस्याओं व परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है तो लड़ाई–झगड़े से बेहतर अलग होकर रहना है। परन्तु यहाँ पर जो बेटी किसी घर की बहू बनकर आती है उसकी मानसिकता पर इतना अधिक प्रभाव डाला जाता है कि कुछ समय पश्चात् वह स्वयं इस प्रकार के कार्य करना प्रारम्भ कर देती है जिससे उसे परिवार से अलग होकर रहना पड़े।

कार्य न करने की मानसिकता, अभिभावकों के घर पर कार्य न करने की मानसिकता, सहनशीलता की कमी, बन्धनों का बोझ, पहनावा, रहन–सहन, आजादी में अचानक आने वाले बदलाव से वह अपने को आजाद करना चाहती है और यही कारण धीर–धीरे उसे पृथक करने की ओर उन्मुख करते हैं। अन्य नारियों द्वारा हमेशा अलग सलाह व मशवरा दिया जाता है। सास की हमेशा बुराई व गलत

मानसिकता की बताना, जीवन की सच्चाई से दूर करता है तथा मानसिक स्थिति में द्वन्द्व होने से रिश्तों में हमेशा दूरिया बढ़ती है।

एक लड़की जो अभी–अभी बहू बनी है यदि परिवार की ओर से उसे सम्बन्धों को जोड़ने तथा सहनशीलता का गुण अपनाने की सलाह व समझदारी सिखाई जाती है तो एकल परिवारों की प्राथमिकता निश्चित रुप से कम होगी।

शहरीकरण की चकाचौंध

वर्तमान नारी के संदर्भ में महत्वाकांक्षाएं अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती जा रही हैं फिर चाहे वह शहरी क्षेत्र की हो या ग्रामीण क्षेत्र की। ग्रामीण क्षेत्र की नारी में यह महत्वाकांक्षाएं और अधिक प्रबल होती जा रही हैं। शहरीकरण की चकाचौंध व जीवनशैली दूर से उसे अधिक सुहावनी व लुभावनी प्रतीत होती है जो उसे अपनी ओर खींचती है जिससे उसकी महत्वाकांक्षाओं का स्तर बढ़ जाता है। यही स्थिति शहरीकरण की है नारी को जो प्राप्त हो रहा है वह उससे सन्तुष्ट नहीं है तथा भौतिकवादिता व उपभोगवाद की बढ़ती प्रवृत्ति उसे अपनी ओर आकर्षित करती है जिससे वह अपनी दिनचर्या को उसी प्रकार की बनाना चाहती है जिससे उसके जीवन के सपने पूर्ण हो सके। परन्तु सपनों की इस दौड़ती भागती जिन्दगी में वह रिश्तों को भूलती जा रही हैं। आज सम्बन्ध धीरे–धीरे सिमटते हुए दूर संचार उपकरणों तक या मिलने की औपचारिकता मात्र रह गये हैं।

महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने के लिए केवल सम्बन्धों का योग किया जा रहा है परन्तु वास्तविकता में उनमें प्रगाढ़ता या अपनापन नहीं होता है केवल औपचारिकताएं होती हैं। नौकरीपेशा या अपने सपनों को साकार करने के लिए नारी सम्बन्धों को भी छिन्न–भिन्न कर देती है तथा उन सम्बंधों में हमेशा के लिए एक कड़वाहट सी रह जाती है जिसका दंश व पीड़ा वह स्वयं तो भोगती ही है उसके साथ–साथ उसका परिवार व अन्य भी उसे भुगतते हैं।

नारी यदि सपनों को बनाने के लिए किसी से शारीरिक अंतःसम्बन्ध भी बनाती है तो वह केवल रेत के ढ़ेर पर ही टिके होते हैं जिनमें खोखलापन होता है। केवल आकर्षण, वास्तविकता व जीवन की सत्यता से परे होते हैं जिसकी सच्चाई उम्र व अनुभव से धीरे–धीरे प्राप्त होती है जो आत्मग्लानि के रूप में कभी–कभी आत्मकथाओं में भी इसका स्वरूप दिखाई देता है।

नारी अपने जीवन में जो कुछ भी करती है परन्तु वह स्वयं इस बात को जानती है कि वह सही है या गलत तथा जीवन में उसे क्या परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु चकाचौंध में उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता जिसके कारण रिश्ते कई बार कलंकित भी होते हैं।

धन, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए वह अपने आत्मसम्मान व स्वाभिमान का भी गला घोट देती है तथा जीवन में इस प्रकार के निर्णय भी ले लेती है जिससे सम्बन्ध विच्छेद हो जाते हैं। विश्वास टूट जाता और परिणाम नकारात्मकता के रूप में प्राप्त होते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार 'चरित्र निर्माण ही सर्वोत्तम गुण है।' अर्थात् महत्वाकांक्षाएं जीवन में होनी चाहिए जो व्यक्ति को आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करें परन्तु उसके लिए जीवन के अनमोल रिश्तों की बलि देकर यदि हम अपनों को ही भुला बैठे तो ऐसी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति से क्या लाभ कि हमारी सफलता या उन्नति पर हमारे अपने ही हमारे साथ ना हो।

आज नारी केवल अपने पति या बच्चों के अलावा परिवार के बारे में विचार करना ही नहीं चाहती, वह केवल अपनी सुख–सुविधाओं की ओर ही ध्यान देती है तथा अपनी उन्नति व विकास पर ज्यादा प्रभाव डालती है। पारिवारिक गतिविधियों से ज्यादा सम्बन्ध जोड़ना नहीं चाहती और यदि स्थितियाँ अच्छी हो जाती है तो वह सम्बन्ध विच्छेद कर अलग परिवार के साथ रहने लगती है। इसी कारण से

आज एक परिवार के सभी लोग मिल–जुलकर सुख व शांतिपूर्वक जीवनयापन नहीं कर पाते।

हम हमारे परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध तोड़कर अन्यों से रिश्ते बनाने के लिए आतुर रहते हैं क्योंकि वहाँ परिवार की मानसिकता नहीं होती है। नारी को यह महसूस होता है कि शायद पूरे परिवार से अलग रहकर वह ज्यादा सुखी रहेगी जबकि उसे यह पता नहीं होता है अलग रहकर जो परेशानियां व समस्याएं उत्पन्न होती है उसे स्वयं ही हल करना होता है उसमें किसी की भी सहायता कम ही प्राप्त हो पाती है जबकि संयुक्त परिवार में कई प्रकार की समस्याएं व परेशानियाँ स्वतः ही बँट जाती है तथा मानसिक दबाव कम होता है। रिश्तों की अहमियत रिश्तों को निभाने से ही पता चलती है तथा व्यक्तियों व नारियों के अनुभव यह बताते हैं कि व्यक्ति के जीवन में रिश्तों की अहमियत बहुत है चाहे वह रिश्ता किसी भी नाम से सम्बोधित किया जाये।

नारी के स्वयं के अनुभव यह बताते हैं कि संयुक्त परिवार में रहते हुए बच्चे कब बड़े हो गये और अभिभावक कब जीवन की उम्र के अंतिम पड़ाव व उत्तरदायित्वों को निभा गये पता ही नहीं चलता।

अत्यधिक महत्वाकांक्षाएं

रिश्तों में दूरियां तथा सम्बन्धों में अविश्वास, अपनत्व की कमी, सुख व समृद्धि की कमी, शांति की कमी का कारण आशाएं या महत्वाकांक्षाएं हैं जो व्यक्ति के जीवन की दिशा को मोड़ तक देती हैं। महत्वाकांक्षा होना प्रगति का सूचक होता है परन्तु जीवन में जब उसमें लालसा, सुख–सुविधाओं की अधिकता, जीवन में ज्यादा से ज्यादा प्राप्त करने की इच्छा बढ़ने लगती है तो उससे मन प्रदूषित होने लगता है तथा मानसिक विकृतियां उत्पन्न होने लगती है। संगत गलत होने लगती है व पथभ्रष्ट हो जाता है। जाने–अनजाने दूसरों को कष्ट पहुँचाने लगता हैं। स्वयं

से अहं का भाव अत्यधिक होने लगता है। जब नारी को भी स्वतन्त्र जीवन जीने या स्वतन्त्ररूप से कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाती है तो उसकी भी आकांक्षाएं व अभिलाषाएं बढ़ने लगती है।

वर्तमान परिवेश में जिस प्रकार की आधुनिक जीवन शैली जीने के लिए सुविधाओं की आवश्यकता होती है नारी उन्हें प्राप्त करने की कोशिश करती हैं वह उन्हें प्राप्त करने के लिए अपने परिवार को कम समय दे पाती है।

परिवार की समस्याओं को हल नहीं कर पाती, रिश्तों व सम्बन्धों को निभाने में उसे कठिनाई महसूस होने लगती है मन से मन की भावनाओं में टकरार होने लगती है। अनावश्यक तनाव व दबाव परिवार के सदस्यों तथा परिवेश में व्याप्त होने लगता है।

नारी का मन व्याकुल रहने लगता है उसका मन अशांत रहता है स्वभाव में उग्रता आने लगती है स्वभाव में चिड़चिड़ापन होने लगता है। रिश्तों में खिंचाव होने लगता है।

महत्वाकांक्षाओं के मध्य नारी को अन्य सभी सम्बन्ध धीरे–धीरे तुच्छ लगने लगते हैं तथा उन्हें वह छोड़ने भी लगती है। जिससे नारी की गरिमा तथा कभी–कभी उसका स्त्रीत्व भी दूषित हो जाता है।

भौतिकवादिता

मेरीकॉम (मेरी कहानी) खेलों के आयोजनों के दौरान उनकी इच्छा कई प्रकार से सामान खरीदने की हुई परन्तु भौतिकवादिता का प्रभाव उन पर कभी दिखाई नहीं दिया, ना ही उन्होंने उसको अपने ऊपर हावी होने दिया। हमेशा उन्होंने अपने जीवन के लक्ष्य को ध्यान में रखा तथा परिवार की आर्थिक स्थिति के अनुसार कार्य किया।

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुडंल बसे) अपनी आत्मकथा में बताती हैं कि वह एक साधारण सी लड़की थी जो विवाह की औपचारिक रस्मों से परे थी केवल पति से मिलने को उतावलापन था जो उसे लज्जाहीन बनने को मजबूर कर रहा था परन्तु वह शहरी सभ्यता और तामझाम तथा औपचारिकता से कोसों दूर थी इसी भौतिकवादिता के कारण उनके रिश्तों में अपनापन नहीं रहा।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) हमेशा भौतिकवादिता से स्पष्ट रूप से दूर रही तथा अन्यों को उनके कार्य में दखल देने से भी रोका।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) अपने अनुभव में बताती है कि जब एक बार उन्हें अमेरिका जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो वहाँ प्राप्त पति–पत्नी के रिश्तों पर उनका कहना है कि वहाँ भी नारी की स्थिति हमारी जैसी ही है, उसे भी अधिकार प्राप्त नहीं है। वहाँ स्वतन्त्रता तो है जीवन जीने की परन्तु अधिकार का बंधन नहीं है अतः दूर से अमेरिका का जो जीवन भौतिकवादिता का नजर आता है उनके रिश्ते खोखले हैं तथा वास्तव में वह रिश्ते है ही नहीं।

उपर्युक्त आत्मकथाओं से यह ज्ञात होता है कि आत्मकथाओं में कुछ आत्मकथाएं ही वास्तविकता की पृष्ठभूमि पर अपना नियन्त्रण रख पाती हैं। अधिकांश समाज में केवल नाम के प्रचार–प्रसार हेतु लिखी जाती है जिसमें न तो भावनाएं होती है ना मौलिकता, ना ही रिश्तों व सम्बन्धों का सकारात्मक पक्ष।

आज की नारी देह को भौतिकवादिता के नाम पर परोसने को तैयार है। उसे लगता है कि उससे उन्हें नाम, वैभव, सम्मान की प्राप्ति होगी।

भारतीय नारी की सोच 'बदनाम होंगे तो क्या नाम नहीं होगा' जैसी होती जा रही है तथा समाज का बुद्धिजीवी वर्ग तमाशा बनकर उसे देख रहा है क्योंकि भौतिकवादिता का घना कोहरा हमारे संस्कारों पर अपना प्रभाव डालता जा रहा है।

पहनावा

मैरीकॉम (मेरी कहानी) अपनी आत्मकथा में कई ऐसे प्रसंगों का अनुभव बताती है जब उन्हें विदेशों में पढ़ने या वहाँ जाने का अवसर प्राप्त हुआ तो अधिकांश समय तो वह तथा अन्य नारी साथी खेल का पहनावा ही पहनती थी परन्तु भारतीय होने का गर्व व गौरव तथा सम्मान उन्हें साड़ी पहनने पर प्राप्त होता था।

वह स्वयं यह अनुभव करती है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में भारतीय संस्कृति की एक अनोखी छाप है जो एक नारी द्वारा धारण की गई साड़ी व पहनावे से परिलक्षित होती है।

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुंडल बसै) एक गाँव की सीधी सी लड़की होती है उसे पहनावें में कुछ विशेष पता नहीं होता है। खासतौर पर शहरी क्षेत्र के बारे में परन्तु ब्याह के पश्चात् जब वह ससुराल शहर जाती है तो उसका पति ही उसके पहनावे, स्वभाव, चरित्र पर ही संदेह करता है, उसे चिड़ियाघर का जानवर कहता है।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) कहती है कि ''स्त्री मीडिया द्वारा निर्मित छवि के अनुकूल नहीं बन पाती इसलिए अपनी देह को वह अन्य के रूप में लेने लगती है। यह देह मानों उसकी अपनी नहीं, देह मानों उससे स्वतन्त्र है और देह की इस स्वतन्त्रता को नियंत्रित करना होगा। इसे काटना–छांटना होगा। अपनी देह के प्रति स्त्री कितनी फासिस्ट होती जा रही है। मुझे उन दिनों समझ में आया। अक्षत यौवन की चाह कितनी मासूम है। मगर यह चाह बड़ी आक्रामक है स्त्रियां अपनी देह पर वार किए जाती है। उम्र को एक जगह फ्रिज कर देना चाहती है।''[33]

रहन–सहन

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुडंल बसै), मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी), अन्या से अनन्या (प्रभा खेतान), कृष्णा अग्निहोत्री (लगता नहीं है दिल मेरा), मैरीकॉम (मेरी कहानी) में लेखिकाओं द्वारा रहन–सहन पर प्रकाश कम ही डाला गया है परन्तु मेरी कहानी के अलावा सभी आत्मकथाओं से यह स्पष्ट होता है कि सभी नारियां अपने परिवार को बनाने की कोशिश में रही तथा उनका रहन–सहन सामान्य रहा परन्तु वह मानती है कि पति जो एक पुरुष होता है वह एक स्त्री से कभी सन्तुष्ट नहीं होता है तथा अपनी पत्नी का रहन–सहन उसे अप्रिय लगता है। वह हमेशा तुलना कर अन्य को श्रेष्ठ समझता है केवल उपभोग करने के लिए अधिकांश पुरुष अपनी पत्नी को केवल घर के अन्दर रखने वाली वस्तु मात्र मानते हैं।

वात्सल्य, मातृत्व सुख से दूरी

मैत्रेयी पुष्पा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में कस्तूरी अपनी पुत्री को शिक्षित कर उच्च पद पर सम्मान के साथ देखना चाहती है अतः वह अपनी ही पुत्री को मातृत्व सुख से वंचित कर अबॉर्शन करने को कहती है। अपनी पुत्री तथा दामाद के रिश्तों के बीच आती है क्योंकि उन्हें लगता है कि वह पारिवारिक रिश्तों व दायित्वों की सीमा में ही जीवन गुजार देंगे और वह उसे उन सीमाओं से बाहर निकालने की कोशिश करती है।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) अपने एक प्रसंग में इस बात का जिक्र करती है जो हृदयस्पर्शी है जिसमें वात्सल्य, मातृत्व की भावना का दर्शन होता है। वह कहती है कि उनकी बेटी टिंकू अर्थात् रचना उन्हें अपनी मम्मी नहीं मानती क्योंकि दिल्ली आते ही उसे मन्नू की बहिन सुशीला के पास कलकत्ता पहुँचा दिया जाता था। अतः वह बहन सुशीला को ही असली माँ मानती है।

अतः कई बार न चाहते हुए भी रिश्तों में दूरियां बन जाती है तथा माता–पिता बच्चों को रिश्तों की समझ नहीं समझा पाते।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) अपने से दोगुने बड़े विवाहित पुरुष डॉ. सर्राफ से प्रेम कर बैठती है। डॉ. सर्राफ उन्हें सावधान भी करते हैं। परन्तु वे नहीं संभलती अतः उन्हें गर्भपात तक करवाना पड़ता है। उसके पश्चात् भी वह अपने जीवन को नवीन दिशा की ओर ले जा सकती थी परन्तु प्रेमवश विवशता उन्हें जाने से रोक देती है जिन्दगी में वह न तो पत्नी का सुख प्राप्त कर पाती है ना ही मातृत्व सुख।

जब एक स्त्री को मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है तो पति, परिवार व समाज से प्राप्त दुःख व पीड़ा सब कुछ मर जाती है। क्योंकि उसका सारा दर्द, गम अपने बच्चों के वात्सल्य से दब जाता है। उसके जीवन को एक नयी दिशा व आयाम मिल जाता है।

मेरीकॉम (मेरी कहानी) अपनी आत्मकथा में बताती है कि विवाह के पश्चात् गर्भवती होती है तो एक बार तो उन्हें लगता है कि उनका लक्ष्य व जीवन का उद्देश्य अधूरा रह जायेगा परन्तु उनके पति उनका पूरा साथ देते हैं। मातृत्व सुख प्राप्त होने पर उन्हें एक अद्‌भुत शक्ति प्राप्त होती है तथा उसे न खोने के कारण ही वह अपने खेल को भूल कर बच्चों की पूर्ण परवरिश में लग जाती है। उनके अनुसार मातृत्व सुख एक नारी को पूर्ण बना देता है। इसके पश्चात् पति का साथ उन्हें पुनः खेल की ओर लेकर जाता है।

वर्तमान समय मे यह देखा जा रहा है कि नारी अपनी देह का प्रदर्शन करना चाह रही है परन्तु मातृत्व सुख से दूरी बना रही है। जो नारी मातृत्व सुख से पूर्णतः वंचित रहती है समाज के द्वारा उन्हें तिस्कार, घृणा, अपमान सहना पड़ता है। कभी–कभी सौतन को भी सहना पड़ता है। पुरुषों की नजरें हमेशा ऐसी स्त्री

पर ही रहती है। ऐसी स्त्री कभी–कभी विवशतापूर्ण अवैध सम्बन्ध भी बना लेती है परन्तु जीवन एक नौकरानी जैसा हो जाता है जो महत्वहीन–सी दिखाई देती है।

विवाह से दूरी

मैत्रेयी पुष्पा 'कस्तूरी कुंडल बसै' में कस्तूरी अपनी बेटी मैत्रेयी की शादी की नहीं सोचती क्योंकि वह उसे शिक्षित बनाकर सम्मानपूर्वक जीवन जीने के योग्य बनाना चाहती है परन्तु मैत्रेयी के यौवन में कदम रखते ही वह शादी करने तथा पारिवारिक बंधनों में बंधने के लिए तैयार होने लगती है उसकी भावनाएं पति का प्रेम पाने को आतुर होने लगती है।

कस्तूरी का बाल विवाह, तत्पश्चात् गर्भवती होना तथा पति का देहान्त ने उसे विवाह सुख प्रदान नहीं किया। शायद यही कारण रहा कि वह कभी–कभी हृदय से कठोर होती हुई प्रतीत होती है तथा अपनी पुत्री को समाज के पुरुषों की नजरों से बचाने के कारण ही एक कठोर माँ के रूप में नजर आती है।

परन्तु लेखिका स्वयं भी यह मानती है कि केवल विवाह हो जाने से सम्बन्ध नहीं बनते, जीवन नहीं चलता।

मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) की आत्मकथा में लेखिका पत्नी होने पर भी संबंधहीन रहती है तथा प्रेमिका कभी पत्नी का स्थान प्राप्त नहीं कर पाती अतः विवाह के पश्चात् धीरे–धीरे दूरियां बढ़ने लगती है और सम्बन्ध विच्छेद करने में उन्हें तीस वर्ष लग जाते है।

इस प्रकार के सम्बन्धों के कारण भी अक्सर उनका प्रभाव समाज पर दिखाई देता है। तथा लड़कियाँ विवाह से दूरी बनाना चाहती है।

प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) अपनी आत्मकथा में जीवनपर्यन्त दुःखी नजर आती है उसका कारण उनका अवैवाहिक प्रेम सम्बन्ध नहीं बल्कि स्वीकारोक्ति की

कमी थी डॉ. सर्राफ उन्हें कभी पत्नी या पत्नी का प्रेम नहीं दे सके ना ही उन्हें सम्मान दे पाये।

अतः जब एक नारी इस प्रकार की पीड़ा भोगती है तथा पारिवारिक वातावरण में झगड़े, गृहक्लेश, अपमान आदि की स्थितियों से एक लड़की के कोमल मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है तथा वह सम्बन्ध बनाने में हमेशा संकोच करती है, दूरी बनाकर रखती है क्योंकि उसके अन्तःमन में हमेशा डर या भय व्याप्त रहता है।

मेरीकॉम (मेरी कहानी) अपनी आत्मकथा में जब ऑनलर उनके सामने शादी का प्रस्ताव रखते हैं तो उसके अन्तःमन की नारी प्रफुल्लित हो उठती है परन्तु जीवन के लक्ष्य व उद्देश्यों की प्राप्ति के कारण उनमें अंतर्द्वन्द्व की स्थिति बन जाती है। उन्हें लगता है कि शादी के पश्चात् जीवन केवल घर तक ही सीमित होकर रह जाता है। परन्तु एक दूसरे की भावनाओं, जीवन के उद्‌देश्यों, परिवारों की पृष्ठभूमि की समझ के कारण उनके रिश्ते प्रगाढ़ता लिए हुए रहे तथा सफलता प्राप्त हुई।

अन्तरंग सम्बन्धों की अधिकता

मैत्रेयी पुष्पा (कस्तूरी कुंडल बसै), मन्नू भंडारी (एक कहानी यह भी) प्रभा खेतान (अन्या से अनन्या) में एक तथ्य जो स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि अधिकांश पुरुषों के सम्बन्ध पत्नी के अलावा अन्यों से भी रहे जिसके कारण हमेशा पति–पत्नी के रिश्तों व सम्बन्धों में दूरियां बनी रही उनके सम्बन्धों में घृणा, कटुता, अपमान, तिरस्कार, क्रोध आदि का आविर्भाव भी होता रहा।

एक पुरुष द्वारा पत्नी के अलावा अन्य से रिश्ता बनाने से उसे बाहर का सुख अधिक प्रभावित करता है क्योंकि उसमें बंधन नहीं होता, कर्तव्य व

उत्तरदायित्व की भावना का अभाव रहता है। अतः रिश्तों में दूरियां बढ़ती है और धीरे–धीरे रिश्ते बिगड़ते हैं।

परिवारिक सम्बन्धों में मतभेद

कस्तूरी कुंडल बसै, एक कहानी यह भी, अन्या से अनन्या आदि आत्मकथाओं से यह स्पष्ट होता है कि यदि परिवार में तथा पति–पत्नी या अन्य सम्बन्धों में किसी भी प्रकार का मतभेद उत्पन्न होता है तो उससे रिश्ते हमेशा बिगड़ते ही हैं।

पति–पत्नी के रिश्ते विश्वास तथा एक–दूसरे की भावनाओं को समझने से ही पूर्ण हो पाते हैं अन्यथा उनमें हमेशा मनमुटाव की स्थिति या गृहक्लेश की स्थिति बनी रहती है जिससे जिन्दगी दुभर हो जाती है।

वर्तमान समय में यह स्थिति बहुत ज्यादा विकट होती जा रही है जहाँ एक स्त्री, एक पुरुष दोनों एक–दूसरे को समझना ही नहीं चाहते। एक स्त्री व पुरुष का अहं व अभिमान टकराव की स्थितियां पैदा कर रहे हैं जिससे पारिवारिक वातावरण दूषित हो रहा है।

सहनशीलता की कमी

कस्तूरी कुंडल बसै, एक कहानी यह भी, अन्या से अनन्या तथा मेरी कहानी में सहनशीलता की कमी है वह बिना सोच–विचार किये निर्णय ले लेती है चाहे परिणाम जो हो। वह अपने आवेगों को वश में न कर उन्हें किसी भी रूप में निकालना चाहती हैं उनमें संतुष्टि का भाव नहीं आता।

इसी प्रकार इस सदी की नारी में भी सहनशीलता की कमी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है वह किसी भी बात को सुनना या उस पर चिन्तन मनन नहीं करना चाहती, परन्तु निर्णय पर पहुँच जाती है फिर चाहे जीवन का परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

सहनशीलता होनी चाहिए परन्तु असहनशीलता की कल्पना समाज नहीं करता परन्तु वर्तमान पारिवारिक स्थितियां इस बात का घोतक है कि स्त्री–पुरुष दोनों ही असहनशीलता की श्रेणी में आते जा रहे हैं।

परिस्थितियों से समझौता नहीं

'कस्तूरी कुंडल बसै' में कस्तूरी परिस्थितियों से समझौता करती है उन्हें समझती है तथा उनका सामना आत्मनिर्भर व दृढ़ता से करती है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी परिस्थितियों से समझौता करने की कोशिश करती है तथा आत्मनिर्भर होकर अपना सम्मान प्राप्त करती है। 'अन्या से अनन्या' में भी प्रभा खेतान अपनी ही बनाई हुई परिस्थितियों से ऊपर उठकर अपने स्वाभिमान तथा स्त्री की गरिमा के लिए आत्मनिर्भर बनाती है तथा समाज से सम्मान व पद प्राप्त करती है। परन्तु वर्तमान में समाज में एक स्त्री और ना ही एक पुरुष परिस्थितियों से समझौता करने को तैयार नहीं है। चाहे उन्हें कुछ भी करना पड़े। वह अपने आत्म–सम्मान, मान मर्यादा, स्त्रीतत्व तथा पुरुषत्व, मूल्यों को भी ताक पर रखने को हमेशा तैयार बैठे नजर आते हैं। एक स्त्री व पुरुष का शरीर उन पुतलों व खिलौनों के समान होता जा रहा है जिसे बेचने व खरीदने वाला दोनों बाजार में हमेशा उपस्थित है।

स्वयं के अनुसार जीवन जीने की लालसा

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में मैत्रेयी जिस प्रकार का जीवन जीने की कल्पना करती है उसमें माँ उन्हें रोड़ा लगने वाली प्रस्तुत होती है वह उसे कलयुगी माँ दिखाई देती है। जबकि कस्तूरी उसे समझाती भी है कि तेरी जिंदगी का मकसद आदमी के संग सोना और बच्चे पैदा करना, के अलावा कुछ और भी है। परन्तु जीवन के उस पड़ाव पर यौवनारम्भ के उस क्षण पर किसी ओर की बातों का असर या प्रभाव अर्थहीन मालूम होता है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी जिस लेखक को प्रेमी समझकर ब्याह करती है वही उसे संबंधहीन बनाकर जीवन जीने को विवश कर देता है तथा स्वयं प्रेमिका के साथ जीवन जीना चाहता है।

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान बताती है कि प्रेम करने के पश्चात् वह हमेशा डॉ. सर्राफ के साथ रहती है एक वैवाहिक पुरुष के साथ तथा उन्हें यह भी पता होता है कि डॉ. सर्राफ हमेशा स्त्रियों की ओर आकर्षित होकर उनसे सम्बन्ध स्थापित करते हैं। डॉ. सर्राफ हमेशा अपने अनुसार अपनी जिन्दगी जीते हैं।

उपर्युक्त आत्मकथाओं से विपरीत विचारधारा मेरीकॉम (एक कहानी) की आत्मकथा से परिलक्षित होती है। जिसमें उनके पति हमेशा उनकी भावनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उनका साथ देते हैं तथा पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह भी बखूबी करते है।

वर्तमान समाज की स्थिति विकट व गंभीर होती जा रही है जहाँ एक स्त्री जीवन जीने की अपनी लालसा के कारण अपना स्त्रीत्व खोती जा रही है। उसकी भावनाएं मातृत्व, प्रेम, स्नेह शारीरिक आकर्षण व दिखावटीपन की ओट में छिपता जा रहा है तथा पुरूष के समान वह भी भौतिकवादिता की होड़ में पीछे रहने को तैयार नहीं है। जिसके कारण रिश्तों व सम्बन्धों में अविश्वास उत्पन्न हो रहा है तथा सम्बन्ध बिखर रहे हैं।

4.3 रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़

'कस्तूरी कुंडल बसै' के प्रथम खंड में कस्तूरी अपनी परिस्थितियों को समझकर, शिक्षित होकर जीवन को बदलना चाहती है परन्तु जिन्दगी में बहुत उतार–चढ़ाव आते हैं। देश आजाद होता है तथा बेटियों की शिक्षा के नये द्वार खुलते हैं तथा कस्तूरी अपनी बेटी को शिक्षित कर बढ़ते अवसरों का लाभ प्रदान

कर उसके जीवन को एक स्थिरता प्रदान करना चाहती है, आत्मनिर्भरता प्रदान करना चाहती है।

रचनाकार एक सेतु

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी मानती है कि वह क्यों लिखती है इसलिए कि अधिक से अधिक लोग उसे पढ़े, पढ़े ही नहीं बल्कि इससे जुड़े भी। संवेदना के स्तर पर भागीदार बने, माने कि एक की कथा–व्यथा अनेक की बन सके, बने लेखक की रचना, अनेक के बीच, सेतु बने।

लेखिका ने कभी अवसरों की होड़ नहीं कि इसका प्रसंग आपातकाल के दौरान संस्कृति विभाग द्वारा दी जाने वाली फैलोशिप को अस्वीकार कर दिया जाना। इसी प्रकार सरकार की ओर से ''पदमश्री'' देने के प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया जो इस बात का परिचायक है कि संकट के समय लेखिका अपने देशवासियों के साथ उठकर खड़ी रही।

''धन की आवश्यकता सभी को होती है परन्तु अपने लेखन के प्रति उन्होंने कभी समझौता नहीं किया।''[34]

आर्थिक आत्मनिर्भरता महत्त्वपूर्ण उपलब्धि

'अन्या से अनन्या' में लेखिका मानती है कि रोजगार के अवसर प्राप्त होने से उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई जो उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इसी का परिणाम था कि जब डॉ. सर्राफ कैंसर के मरीज बने तो मिसेज सर्राफ ने कहा–'' अब आपको ही सब कुछ संभालना है... आप पढ़ी लिखी हैं। व्यापार करती हैं और मुझे विश्वास है कि परिवार को आप संभाल लेगी।''[35]

डॉ. सर्राफ ने अंतिम बार उनसे कहा–

''तुम उषा (अर्थात् डॉ. सर्राफ की तलाकशुदा बेटी) का

फिर से ब्याह कर देना,

तुम मजबूत हो,

अकेली रह लोगी

लेकिन उषा नहीं रह सकती।

यहाँ मजबूती का आशय आर्थिक मजबूती से है।''[36]

'अन्या से अनन्या' में लेखिका का सम्पूर्ण जीवन ही शोषित रहा। कम उम्र होते हुए विवाहित पुरुष के साथ लिव इन रिलेशन में सारी उम्र साथ निभाया वह भी स्वयं द्वारा आत्मनिर्भर होकर समाज में उच्च पद प्राप्त कर, फिर भी डॉ. सर्राफ इन्हें प्रेम न दे पाये। हमेशा ताने देते तथा औरों द्वारा दिये गये तानों या कटाक्ष या व्यंग्य पर भी टिप्पणी नहीं करते थे। वह केवल शारीरिक संबंध को ही मानते थे। भावात्मक सम्बन्ध उनके लिए शून्य रहा। डॉ. सर्राफ ने अपने जीवन व परिवार में भी उन्हें महत्त्व प्रदान नहीं किया। औरत के आर्थिक रूप से सक्षम होने पर पुरुष उन्हें ब्लैकमेल भी करते थे।

लेखिका मानती है कि मृत्यु के क्रूर प्रहार के कारण हिन्दी साहित्य और कथा–साहित्य के पाठक इस बहुमूल्य अवदान से वंचित हो गए हैं।

'मेरी कहानी' में मेरीकॉम द्वारा प्रयोजनों के बारे में एक शब्द–से स्पष्ट होता है कि एक खिलाड़ी को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ आवश्यकताओं की अतिरिक्त आवश्यकता होती है तथा उनकी पूर्ति, लक्ष्य की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है। जिससे एक खिलाड़ी अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाता है तथा उससे उसके रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं जो उसको निजी जिन्दगी व पारिवारिक वातावरण के लिए आवश्यक होते है।

वर्तमान संदर्भ में देखा जाये तो साहित्य, लेखन और पत्रकारिता बिकाऊ हो चुके हैं प्रकाशनों का इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि लेखक द्वारा क्या

परोसा जा रहा है तथा समाज की मानसिकता पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा। ''माल बिकना चाहिए'' के सिद्धान्त को अपनाते हुए साहित्य व लेखन को बेचा जा रहा है। जिन्हें साहित्य व लेखन की समझ नहीं है परन्तु पैसा है या पद है वह भी लिख रहे हैं और समाज उसे ग्रहण भी कर रहा है।

हमारे समाज और समाज के पर्यावरण या विश्व परिदृश्य ने समाज की स्थिति, विचारधारा, मानसिकता आदि को परिवर्तित कर दिया है तथा हमारी सभ्यता, संस्कृति, परम्पराओं में परिवर्तन तथा बदलाव देखा जा रहा है। आधुनिक जीवन शैली, व्यावसायिक प्रतिबद्धता, निजीकरण, समय का अभाव, पाश्चात्यकरण के साथ–साथ इन्टरनेट, टी.वी. कार्यक्रम, मोबाईल, इलैक्ट्रोनिक्स उपकरणों ने हमारी जीवन शैली तथा उसकी सोच को बदल दिया है। रिश्तों तथा संबंधों की व्यावहारिकता खत्म होती जा रही है। रिश्ते खोखले होते जा रहे हैं। शरीर केवल आकर्षण का मार्ग बन गया है।

इस प्रकार की आधुनिकता ने रोजगार के अवसरों की एक होड़ सी लगा दी है जिनके निम्न कारण हो सकते हैं जो इन्हें प्रभावित करते हैं।

समय की कमी

इक्कीसवीं सदी मानव के लिए कशमकश वाली हो गई है। आज किसी के लिए किसी के पास समय नहीं है। समय की अनुपलब्धता ने समाज में रोजगार के नये अवसर भी प्रदान किये हैं। कुछ बुद्धिजीवी व्यक्ति ऐसे होते हैं जो समय के अनुसार अपने आप को ढाल लेते हैं या समाज की सोच तथा व्यावहारिकता उन्हें नजर आती है उसी के अनुसार लेखन सामग्री परोस देते हैं। समय की कमी के कारण लोग क्या सही है या क्या नहीं, क्या अच्छा है या क्या नहीं, सोच ही नहीं पाते। जब समय था तो लेखक कम थे वर्तमान में हर कोई चाहे वह खिलाड़ी हो, फिल्मस्टार हो, नाटककार हो, अपनी पब्लिसिटी तथा धन कमाने के लिए जरिया

बन जाने के कारण समयानुसार उसे भुनाना चाहते हैं। समय की कमी का ही यह नतीजा है कि वास्तविक साहित्य की कमी महसूस की जाने लगी है तथा जो साहित्य प्रकाशित किया जा रहा है उससे नवयुवकों व युवा समाज की भावनाओं को भड़काया जा रहा है। आधुनिकता की चकाचौंध ने समय को जैसे पंख लगा दिये हैं। हर व्यक्ति किसी ना किसी तरह से धन, ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त करना चाहता है। जिसके पास यह सब है वह मनमाने तरीके से लेख, पुस्तकों, को प्रकाशित करवा लेते हैं। जब समाज के समक्ष अच्छा साहित्य आयेगा ही नहीं तो व्यक्ति की मानसिकता या मन पर उसका प्रभाव भी कैसे होगा।

इक्कीसवीं सदी में जब प्रौद्योगिकी तथा संचार माध्यमों ने अपने पैर पसारने शुरु किये तो लोगों में जैसे होड़ सी मच गई इस दुनिया में अपने नाम को, अपने चेहरे को मशहूर करने की। दुनिया पब्लिसिटी से ही जानती है जिससें लोगों को लगने लगा और लोग संचार माध्यम का सहारा लेकर एक मंच तैयार करने लगे। अपनी–अपनी बातों को लोगों तक पहुँचाने के लिए कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट एक माध्यम बनने लगा। समय के अभाव ने इन्टरनेट की गति को ओर बढ़ा दिया तथा लोग अधिक से अधिक इन्टरनेट का उपयोग व प्रयोग स्वयं के फायदे के लिए करने लगे।

इन्टरनेट व कम्प्यूटर ने लेखक की पहुँच को दुनिया के हर कोने तक कर दी। इन्टरनेट के द्वारा लेखक अपने को विश्व के साथ जोड़ पाने में सक्षम हो गया है तथा इससे उनकी लेखन क्षमता में बढ़ोतरी भी हुई है। अपने लेखन को समयानुसार कभी भी कहीं भी वह कम्प्यूटर व इन्टरनेट द्वारा प्रस्तुत व प्रदर्शित कर सकता है। भावनाओं की अभिव्यक्ति तुरंत व तत्काल प्रस्तुत की जा सकती है तथा साथ ही वास्तविक दृश्यों का प्रदर्शन भी किया जाना संभव हो गया है। इन्टरनेट ने ज्ञान की दुनिया का विस्तार भी किया है आज ऑनलाइन आप किसी भी पुस्तक, लेख आदि को आसानी से पढ़ सकते हैं या मंगवा सकते हैं। इस तरह विश्व में

साहित्यिक अभिव्यक्ति का विस्तार बढ़ता जा रहा है। इस प्रकार यह एक प्रेरणात्मक स्रोत की भूमिका भी अदा कर रहा है इस तरह दोनों प्रकार के लेखक बहिर्मुखी व अन्तर्मुखी इस व्यवस्था का उपयोग अपने–अपने अनुसार आसानी से कर पा रहे हैं जो नारी या स्त्री अपने शब्दों को स्वर प्रदान नहीं कर पा रही थी या अभिव्यक्ति प्रदान नहीं कर पा रही थी वह आज इस माध्यम से आसानी से अपनी भावनात्मक अभिव्यक्ति प्रदान कर रही है।

पब्लिकेशन

लेखन के क्षेत्र में अहम् भूमिका लेखक के साथ में उसे पुस्तक या लेख के माध्यम से प्रस्तुत करने में पब्लिकेशन की है जो लेखक के शब्दों व भावों की पुस्तक के रुप में लोगों की पहुँच तक पहुँचाने का माध्यम बनता है यह अति महत्त्वपूर्ण इसलिए भी है कि सही समय पर सही प्रकार से अभिव्यक्ति या प्रदर्शन महत्त्वपूर्ण है अन्यथा उसकी सार्थकता में कमी आ जाती है। किसी भी लेख या पुस्तक की सार्थकता समय तथा परिस्थिति पर निर्भर करती है। कई बार ऐसी भी परिस्थितियाँ देखी गई है कि साहित्य कितना ही अच्छा हो तथा समाज के हित में हो परन्तु लेखक की पहुँच पब्लिकेशन तक नहीं है या आर्थिक रूप से कमजोर है तो उसकी रचना अपने तक ही सीमित होकर दम तोड़ देती है। उसका लेखन धीरे–धीरे उसका साथ छोड़ने लगता है और वह अनजान बनकर रह जाता है। प्रकाशक कई बार लेखक की मजबूरी या आर्थिक स्थितियों का भी फायदा उठाते हैं।

परन्तु एक बात तो है कि इक्कीसवीं सदी में धीरे–धीरे प्रकाशनों की संख्या में बढ़ोतरी हुई तो मशीनीकरण ने भी इसे सस्ता बना दिया तथा लेखक की पहुँच प्रकाशकों तक आसानी से होने लगी। आज कई प्रकाशक स्वयं लेखक को तलाश करते हैं तथा उसकी प्रतिभा को निखारने की कोशिश भी करते हैं।

प्रकाशक कई प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन भी करने लगे हैं जिससे लेखकों को एक आधारस्तम्भ प्राप्त होता है तथा कई लेखकों से परिचय होने के साथ अपनी प्रतिभा व योग्यता को प्रदर्शित करने का मौका भी प्राप्त होता है।

कम्प्यूटर तथा इन्टरनेट ने प्रकाशन को नई गति के साथ कई नये आयाम भी प्रदान किये हैं। कम्प्यूटर द्वारा किसी भी लेख आदि को आसानी से कुछ समय में कहीं भी भेजा जा सकता है। उसमें आसानी से सुधार किया जा सकता है तथा सुरक्षित भी रखा जा सकता है। इन्टरनेट ने इसकी उपयोगिता को और अधिक बढ़ा दिया है। अब आप किसी भी प्रकाशक या प्रकाशन की बुक लेख आदि को कहीं भी किसी भी समय ऑन–लाइन देख सकते हैं। उसकी फोटोप्रति प्राप्त कर सकते हैं तथा अपनी समीक्षा या टिप्पणी को तुरंत प्रकाशक या लेखक तक पहुँचा सकते हैं। प्रकाशन को त्रुटियां बता सकते हैं जिससे धीरे–धीरे साहित्य में सुधार आता है तथा गुणवत्ता व उच्चता की प्राप्ति होती है। टिप्पणी या समीक्षा लेखक को सकारात्मक सोच प्रदान करती है जिससे उसकी लेखनी में गुणवत्ता आती है तथा साहित्य में साहित्य का स्तर उच्च बनता है।

त्रुटियों में कमी

आधुनिकीकरण तथा मशीनीकरण ने इस क्षेत्र को नई गति तथा आयाम प्रदान किये। कम्प्यूटर द्वारा कई प्रकार के कार्य तथा मशीनों द्वारा भी कई प्रकार के कार्य किये जाने से मानवीय त्रुटियों की संख्या में कमी आयी तथा साथ ही पुस्तक की गुणवत्ता, कागज की गुणवत्ता में सुधार आया। कार्य कम समय में पूर्ण होने लगा जिससे इसका लाभ महिलाओं को भी प्राप्त होने लगा। अपने घर या दफ्तर से या कार्यस्थल पर रहते हुए वह अपने लेख आदि को सुधारने का मौका सही प्रकार से प्राप्त होने लगा जिससे समय की भी बचत होने लगी। कई महिलाएं इन्टरनेट के उपयोग द्वारा भी अपनी बात को समाज के सामने लाने लगी।

परन्तु इसके विपरीत प्रभाव भी दिखाई देने लगे कि कई महिलाएं फूहड़ या अश्लील साहित्य को बढ़ाने में सहयोग देने लगी अर्थात् उनके अनुसार भारतीय समाज यही चाहता है तथा पब्लिसिटी तथा पैसा कमाने के उदे्श्य भर से वह कई प्रकार के घटिया साहित्य को समाज के सामने परोसने लगी। जिससे साहित्य में गुणवत्ता तथा उसके स्तर की त्रुटियां होने लगी है। साहित्य में मानवीय तथा प्राकृतिक सृजनता धूमिल होने लगी है। पाश्चात्यकरण के प्रभाव ने इसे और अधिक बढ़ा दिया है।

कम्प्यूटर की उपयोगिता

वर्तमान समय में कम्प्यूटर ने लेखन के क्षेत्र में लेखन की उपयोगिता तथा महत्त्व को और अधिक विस्तृत कर दिया है। लिखित सामग्री को व्यवस्थित रूप से लम्बे समय तक रख पाने, संचार सुविधा के लाभ के कारण एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुँचा पाने तथा त्रुटियों में आसानी से सुधार होने के कारण कम्प्यूटर की उपयोगिता ने लेखन को एक नया आयाम प्रदान किया। विभिन्न प्रकार की मुद्रण सामग्री तथा उन मुद्रण सामग्रियों में आसानी से किसी भी प्रकार की डिजाइन बन जाने के कारण अवलोकन सामग्री प्रभावी नजर आने लगी तथा आकर्षित भी।

आकर्षण तथा साज–सज्जा, पृष्ठ कवर, पुस्तक के पृष्ठ तथा साथ ही उसकी जिल्द आदि की गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी हुई।

अर्द्ध संचार माध्यम

संचार माध्यमों ने लेखन के क्षेत्र में अपनी अहम् भूमिका का निर्वाह किया है और कर रहा है। किसी भी प्रकार की लेखन सामग्री को आसानी से एक–दूसरे स्थान पर कुछ समय में ही भेजा जाना संभव हो गया है साथ ही लेखक, प्रकाशक, तथा प्रशंसकों, समीक्षकों आदि के मध्य की दूरी भी कम हुई है। प्रशंसक सीधे

लेखक के सम्पर्क में आते हैं तथा एक–दूसरे से संवाद कर पाते हैं जिससे लेखक का भी आत्मसम्मान बढ़ता है, समाज के द्वारा उसे सम्मान की प्राप्ति होती है।

संचार माध्यम के द्वारा लेखक द्वारा लिखी गई सामग्री पर टिप्पणियां या समीक्षा आदि उसे कुछ समय में ही प्राप्त हो जाती हैं जिससे उसका पुनः अवलोकन करना उसके स्वयं के लिए लाभदायक प्रगतिपूर्ण होता है।

4.4 कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन :

कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति आर्थिक रूप से मजबूत होती है। वह अपने परिवार को भी आर्थिक रुप से सक्षम बनाने की कोशिश करती है तथा जिन्दगी के एक पड़ाव व जीवन की सन्तुष्टि के पश्चात् ही अपने जीवन के उन क्षणों को आत्मकथा में उतारती है। जिन्हें जीत कर आपने वह मुकाम हासिल किया है।

आर्थिक आत्मनिर्भरता मान सम्मान व मर्यादा का प्रतीक

मैरी कॉम (मेरी कहानी) अपनी आत्मकथा में एक अति सामान्य परिवार से होने के कारण आर्थिक परिस्थितियों से लड़ते हुए तथा अपने परिवार के सदस्यों का त्याग व बलिदान तथा समर्पण करते हुए अपनी सफलता को प्राप्त करती है वह मानती है कि अच्छे जीवन के लिए समाज में पद व प्रतिष्ठा की आवश्यकता होती है तभी समाज उसे सम्मान की दृष्टि से देखता है।

अतः एक नारी की आत्मनिर्भरता तथा आर्थिक स्थिति भी उसके मान सम्मान व मर्यादा का प्रतीक होती है।

सभी आत्मकथाकार महिलाओं ने स्वीकार किया है कि आर्थिक स्वावलम्बन के बिना नारी जीवन में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आएगा। अतः उन्होंने नौकरी करने वाली नारी को प्रोत्साहन दिया है। ग्रामीण परिवेश अज्ञानवश नौकरीपेशा नारी की निन्दा की जाती है।

सुशीला राय के मंझले भाई की पत्नी नौकरी करने लगी तो उसकी निन्दा करती हुई गाँव की औरतें कहने लगी– ''पढ़ी–लिखी लड़की एकदम बेकार रहती है। वह सास की न तो देखभाल करेगी और न ही कोई काम। सिर्फ अपने शरीर की सफाई करेगी, कहेगी मैं पढ़ी–लिखी हूँ। खेत में काम करना नहीं आता है, खुद खाना बनाकर नहीं खाऊँगी। इसलिए जो पढ़ी–लिखी लड़की से शादी करता है, उसका जीवन नष्ट हो जाता है।''[37]

'दोहरा अभिशाप' की कौशल्या बैसंत्री महिलाओं के संगठन बनाकर नारी समाज में जागृति निर्माण करती है। वह पति से तिरस्कृत अपमानित जीवन जीने के लिए विवश है। उसने अनुभव किया है कि नारी उन्नति के लिए नारी का समाजिक क्षेत्र में कार्य आवश्यक है।

'हादसे' की रमणिका गुप्ता मजदूर संगठनों में काम करती है। वह खादान मजदूरों, दलितों, आदिवासियों एवं औरतों की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश करती रही है। नारी के सामाजिक दायित्व का महत्व जानती हुई प्रभा खेतान कहती है– ''बिना सामाजिक प्रतिबद्धता के धन और यश हवा के सूखे पत्ते की भाँति उड़ जायेगा। धन का जितना उपयोग अपने लिए है, उतना ही समाज के लिए भी है और समाज को समझने के लिए न केवल सोशल होने की आवश्यकता है जैसा कि वर्तमान समय में प्रचलन है। जहाँ लोग एक–दूसरे को छू कर निकल जाते है, लोग जब किसी अन्य की समस्या से संलग्न नहीं होना चाहते इतना हल्का होकर व्यक्ति अपना जीवन व्यापन करेगा तो अंत में उसके हाथ कुछ आने से रहा।''[38]

युगीन परिवेश का प्रभाव

शहरी सभ्यता और युगीन परिवेश के प्रभाव से ग्रामीण नारी की आदतों एवं व्यवहारों में परिवर्तन आया है। वह भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति की कोशिश करती है। उसकी मानसिकता और सोच–विचार में परिवर्तन आया है।

सुशीला राय पति के साथ कोलकत्ता रहने लगी है। जब वह गाँव में थी तो पति के विरोध में कुछ भी नहीं बोलती थी। वह बात–बात पर रोती रहती मगर शहर में आने के बाद उसकी आदतों में परिवर्तन आया है। वह उसमें आये परिवर्तन को स्वीकारती हुई कहती है–''कोलकत्ता आकर मेरी आदत बिगड़ गई है क्योंकि बीच–बीच में पति के साथ बहुत बहस करने लगी हूँ जिससे कभी–कभी अनुचित बाते भी कह जाती हूँ। गाँव में मैं डरती थी, कुछ बोल नहीं पाती थी, लेकिन यहाँ आकर पता नहीं मेरे सिर पर क्या सवार हो जाता है कि बोलने लगी हूँ।''[39]

रमणिका गुप्ता ने हंस, जनवरी 2000 और फरवरी 2002 के अंकों में 'तुम्हारी और मेरी मुक्ति' तथा 'बन्द है मेरा कमरा' शीर्षक द्वारा अपने सम्बन्धों का खुला वर्णन किया। वह गर्व के साथ कहती थी ''अब पुरुषों की तरह मेरे प्रसंगों की चर्चा होने लगी थी। मुझे याद नहीं है अपने प्रेम करने वालों की संख्या। वह सब अपने में एक–एक अनुभव थे।''[40]

वह बहुत जिद्दी औरत है वह कहती है–''मेरी इच्छा है तो सब सम्भव है, नहीं तो कुछ नहीं। अपनी इच्छा से मैं किसी भडभूँजे के साथ भी सो सकती हूँ–पर मेरी इच्छा नहीं तो मुख्यमंत्री भी मुझे नहीं पा सकते।''[41]

''पैसे देवेन्द्र कुमार अपनी आलमारी में ताले में बंद रखता और रोज दूध और सब्जी के पैसे देता था। गिनकर। कभी–कभी देना भूल जाता। उसे याद दिलानी पड़ती थी। कभी कोई बात पूछने पर दस मिनट तक तो कोई उत्तर नहीं देता। उसके बाद चलते–चलते संक्षिप्त–सा जवाब मिलता था। मेरे कपड़े, चप्पल

की सिलाई के लिए पैसे लेने में बहुत पीछे पड़ना पड़ता, तब पैसे देता था। वे भी पूरे नहीं पड़ते थे। कहता अगले महीने लेना।जब अगले महीने पैसे देने की बात आती तब कुछ न कुछ कारण निकालकर झगड़ा करता। मारने दौड़ता। मैंने बाद में उसके साथ ज्यादा बात करनी छोड़ दी थी क्योंकि वह जरा–जरा सी बात पर गाली देता था।''[42]

पैसे न होने से मन मारकर रहना पड़ता था। माँ कभी–कभी नागपुर से कोई आता उसके हाथ कुछ पैसे, मिठाई बच्चो के लिए भेज देती थी, साथ में बढ़ियां पापड़, सेंवइयां वगैरह भी भेंज देती थीं। पैसे मैं बचाकर रखती थी, कभी सब्जी आदि खरीदने पर कुछ पैसे बचते, वह भी रखती। अखबार की रद्दी बेचकर भी कुछ पैसे आते। उसी से मेरा अपना खर्चा चल जाता था। (रिटायर होने के बाद देवेन्द्र कुमार रद्दी अखबार बेचकर उसके पैसे खुद रखने लगा) तंगी रहती ही थी क्योंकि देवेन्द्र कुमार अपने गाँव बिहार जाता, तब एक कागज पर इतने पैसे दूध के, इतने सब्जी के, इतने राशन के और चालीस रुपये तुम्हारी पगार लिखकर रख देता, जैसे मैं वहाँ इनके घर की नौकरानी हूँ।''[43] यही व्यक्ति अपने घर में लड़ाई करता था अपनी पत्नी से। प्रशंसा तो दूर, उसे पेंशन के जो पैसे मिलते थे, उनमें से भी पत्नी को एक पैसा भी नहीं देता, उसके द्वारा घर का सारा काम करने पर भी।''[44]

स्वतंत्रता सेनानी की पत्नी को एक दासी के रूप में देखने की चाह

जो चालीस रुपये मेरा जेब खर्च नियत किया था, उसे भी बंद कर दिया गया था। तब मैंने घर का दूध लाना, दोनों हाथों से बडे–बड़े थैले लेकर जाना छोड़ दिया था। घंटा–भर मुझे बारिश, ठंड, धूप में दूध–राशन की लाइन में खड़ा रहना पड़ता था। कपड़े धोना बंद कर दिया था, क्योंकि मैं कपड़े बैठकर नहीं धो सकती थी, मुझे बहुत गंभीर गठिया है। नौकरानी कपड़े धोती थी, उसे भी देवेन्द्र ने छुड़वा दिया। मुझसे कहता कि मैंने तुम्हें पालने का ठेका नहीं लिया है। मैंने कहा शादी के बाद पत्नी को पालने की जिम्मेदारी पति की होती है। मैं भी यहाँ पर

मुफ्त में नहीं खाती हूँ। यहाँ काम करती हूँ। तब कहता बाहर जाकर काम करो और खाओ। पत्नी को वह स्वतंत्रता सेनानी भी एक दासी के रूप में ही देखना चाहता था। मैं कपड़े नहीं धोती थी, इसलिए वह साबुन भी अलमारी में बंद रखता था, थोड़ी–थोड़ी रोज लड़के के लिए, चाय के लिए एक कटोरी में रख देता। अब खुद राशन, दूध–सब्जी आदि लाता। पकाने के लिए सब्जी टेबल पर निकाल कर रख देता। मैं सिर्फ खाना पकाकर रखती। घर में किसी को एक साथ टेबल पर बैठकर खाना खाने की आदत नहीं रही। जो आता वह अपने लिए खाना निकाल कर खा लेता। मैं खाना बन जाने पर खा लेती थी। तब उसने यह शिकायत मेरे भाई से की कि मैं उससे पहले खाना खा लेती हूँ। कोई जरूरी है कि पत्नी सबसे पीछे खाए! जिसे भूख लगे वह खाए। जब उसने साबुन अलमारी में रखना शुरू किया तब छोटे लड़के ने अपने पैसे से मुझे सर्फ का पाउडर खरीद कर दिया और राशन की चीनी चुपचाप निकालकर दी जो मैंने अपनी अलमारी में रख ली। मुझे घर आने वाली सहेलियों को चाय वगैरह पिलानी पड़ती थी। लड़की की शादी हो गई थी। वह अपने ससुराल रहती थी। उसका ससुराल थोड़ी दूर पर था। वह मुझे नहाने का साबुन, बालों में लगाने का तेल और कुछ पैसे पकड़ा देती थी।''[45]

बाबा रिटायर हो गए थे। उन्होंने सब बहनों को एक–एक हजार रुपया दिया था। वह बहुत बड़े अफसर नहीं थे। जो भी पैसा उन्हें मिला, उन्होंने सब बहनों को दिया। वह एक हजार रुपये मैंने बैंक में डाल दिये थे। कभी–कभी माँ को पैसे के लिये लिखती,तब वह कुछ पैसे भेज देती थी। बहन नौकरी पर थी, वह भी कुछ पैसे भेज देती थी, कभी लड़का भेज देता था। इसलिए देवेन्द्र द्वारा मेरे पैसे रोके जाने पर मुझे ज्यादा परेशानी नहीं हुई। उसने तो सोचा था कि मैं बहुत तंग हो जाऊ लेकिन उसकी मुराद पूरी नहीं हुई।''[46]

बहुत अत्याचार होने पर मैंने कोर्ट में देवेन्द्र कुमार पर केस दायर किया। आज दस वर्ष से कोर्ट में केस अटका पड़ा है। मुझे हर माह पाँच सौ रुपये

मेन्टेनेन्श के मिलते है। देवेन्द्र कुमार इसे देने में भी देर लगाता है। चार–चार महिने तक भी नहीं भेजता है। न्यायपालिका भी लगती है पर स्त्री के लिए ज्यादा फिक्र नहीं करती है।''[47]

चिटफंड

''मैंने भिसी में जाना छोड़ दिया। कुछ पैसे देने थे, मैंने नौकरानी के हाथ भिजवा दिए और साथ में मैंने उन्हें एक पत्र लिखा। मैंने लिखा–"आपने मुझसे मेरी जाति नहीं पूछी। क्या मैं अपनी जाति का पोस्टर अपनी पीठ पर चिपकाकर रखूँ? आप सभ्य नहीं लगती। सभ्य आदमी जाति–पाँति का विचार अपने मन में नहीं रखते और जाति–पाँति मानने वाले लोगों से मैं अपना सम्पर्क नहीं रखती। मुझे पहले पता होता कि आप जाति–पाँति मानती है तो मैं स्वयं आपके चिटफंड में नहीं आती। आपकी जाति के लोगों ने हमारे बाप–दादा और हमारे जाति के लोगों को सदियों से सताया–पीने को पानी नहीं, पढ़ाई नहीं, सम्पत्ति नहीं, काम करने की मनाही। गाँव के बाहर चिथड़े में रहने को मजबूर किया। और भी अमानुष अत्याचार किए। फिर भी हमने यह सब सहकर अपने पाँव पर खड़े रहकर उन्नति की ओर आपसे आगे बढ़कर दिखाया है। अब आपसे दबकर नहीं रहेंगे। फिर मैं आपसे क्यों डरूँ।" जब यह पत्र पढ़ा गया, तब कुछ औरतें कहने लगी एक–दूसरे को कि आपको उन्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए था। कुछ कह रही थीं, महार है इसलिए महार कहा।''[48]

दशरथ के परिवार की आर्थिक हालत

हमारे घर के पीछे दशरथ नाम का आदमी रहता था। लोग उसे दसऱ्या नाम से ही पुकारते थे। उसकी दो पत्नियाँ थी। पहली पत्नी को कोई बाल–बच्चा नहीं था, इसलिए उसने दूसरी शादी की थी। दसऱ्या बस्ती के ही एक लकड़ी के टाल पर सारे दिन लकड़ियाँ काटता था। सवेरे दसऱ्या आंबील पीकर टाल पर

जाता था। यह एक पतला पेय था। गेहूँ, चावल या ज्वारी के आटे को रात में एक हाँडी में पानी में पतला करके भिगोकर रखते थे। सवेरे खमीर बन जाता तब उसे एक मिट्टी के घड़े में कढ़ी की तरह पकाते थे। करीब घड़ा भर के बनाकर रखते थे। इसे पीने से थकावट और प्यास बुझ जाती थी। बच्चे–बूढ़े सब पीते थे। यही उनकी चाय थी। दसर्‍या की दूसरी औरत ठमी को हर वर्ष बच्चा पैदा होता था। ठमी बहुत परिश्रमी थी, सारा दिन काम करती थी। सवेरे खाना बनाना, बर्तन माँजना, झाड़ू, लीपना–पोतना, कपड़े धोना वगैरह। वह यह सब काम करके ओखली में मोटे सस्ते चावल कूटती थी। इधर मैं दस–बारह खाने वाले सदस्य थे और कमाई कम थी। पहली औरत अंग्रेज के घर में माली के नीचे काम करती थी। दो बड़े लड़के और एक लड़की ईसाइयों के घर सफाई, कपड़े आदि धोने के और अन्य काम करते थे। तनख्वाह बहुत कम थी। दसर्‍या के घर वाले एक रुपये के तेरह पायली (किलो से थोड़ा कम) लाल मोटे चावल खरीदते थे। वे बाजार से बच्चों के लिए पुराने कपड़े खरीदते थे। सब्जी सिर्फ आलू–बैंगन की ही बनती थी, यह मैं हमेशा देखती थी।''[49]

कर्जदार बन कर मत मरो

उसी दिन ठान लिया, मरना है तो दूसरों का कर्ज उतार कर मरो, ताकि बेटी से कोई यह न कहे कि उसके माँ–बाप बेईमान थे, कि उसके ऊपर कर्ज बरकरार है।

"गाये पालीं। तमाकू और आलू की खेती की। मैं बहू की जगह मजदूर और ग्वालिन बन गई। बछड़े हुए बाँके बैल। एक–एक ही कीमत कर्ज अदायगी की रकम बन गई। गाँव–गाँव जाती, उनके विश्वास पर रुपये गिन देती, जिन्होंने संकट काल में तेरे पिता की मदद की होगी। कर्ज पटाने के बाद मरना था।''[50]

"मगर तभी आ गया दस गुना लगान। मौत के आगे ढाल–तलवार लेकर खड़ा हो गया। कैसी लहर आई कि किसान जिस रकम का दसवाँ हिस्सा भरने के लिए ढोर–डगर बेचता था, बहन–बेटी का बाजार करता था और न देकर कुर्की कराता था। ताज्जुब कि दस गुना भरने के लिए तैयार हो गया। हर एक को मौरूसीदारी चाहिए थी,, नई आजादी का नया जोश था। नम्बरदार समझा रहे थे–अँगरेजी राज गया। काँग्रेस का राज है। नेहरूजी का विश्वास रखो। नेहरूजी आनन्दभवन छोड़कर किसानों की राह आए है, सोचो।

"भगवानदास ने खजाना खोल दिया। नए जमाने में नई तरह की समझदारी होगी क्योंकि किसान खेतों का मालिक हो जाएगा। ब्याज की दर एक रूपये से डेढ़ रूपया सैकड़ा चलेगी। नम्बरदार ने अपनी खत्ती का अनाज बेचा और लोगों को उधार पैसा दिया। यह दीगर बात है कि जलने वाले कहने लगे–अँगरेजों के पिट्टू जमींदार ही सबसे पहली गाँधी टोपी पहनकर कांग्रेसी हो गए। डबल फायदा, अंग्रेजों की चाकरी और चापलूसी की खता माफ, दूसरे कांग्रेस माने सत्ता सरकार।''[51]

"मुरसान का राजा इलाके में घूम रहा था। जाट लोग कांग्रेस को नहीं मान रहे थे। जाटों के लड़के रोज सवेरे प्रभातफेरी करते हुए गाते–

माँग रहा है हिन्दुस्तान

रोटी कपड़ा और मकान

सोशलिस्ट पार्टी का ऐलान

मत देना दस गुना लगान।''[52]

4.5 आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान।

अन्या से अनन्या में लेखिका प्रभा खेतान को हमेशा डॉ0 सर्राफ और उनके परिवार ने उपेक्षित किया। वह स्वयं स्वीकारती हैं कि रोजगार के अवसर प्राप्त होने से उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भर और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई जो उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।

स्वार्थ सिद्धी वश केन्द्रीय स्थान

इसी का परिणाम था कि जब डॉ. सर्राफ कैंसर के मरीज बने तो मिसेज सर्राफ ने भी उन्हें कहा–''अब आपको ही सब कुछ संभालना है... आप पढ़ी लिखी हैं। व्यापार करती हैं और मुझे विश्वास है कि परिवार को आप संभाल लेगी।''[53]

इस प्रकार उन्हें डॉ. सर्राफ और उनके परिवार में केन्द्रीय स्थान मिला। परिवार में केन्द्रीय स्थान देने में डॉ. सर्राफ और उनके परिवार की स्वार्थ सिद्धी होती है।

डॉ. सर्राफ ने अंतिम बार उनसे कहा–''तुम उषा (अर्थात् डॉ. सर्राफ की तलाकशुदा बेटी) का फिर से ब्याह कर देना, तुम मजबूत हो, अकेली रह लोगी लेकिन उषा नहीं रह सकती।''[54]

लेखिका मानती है कि मृत्यु के क्रूर प्रहार के कारण हिन्दी साहित्य और कथा–साहित्य के पाठक इस बहुमूल्य अवदान से वंचित हो गए हैं।

मेरी कहानी में मेरीकॉम द्वारा प्रयोजनों के बारे में एक शब्द–से स्पष्ट होता है कि एक खिलाड़ी को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ आवश्यकताओं की अतिरिक्त आवश्यकता होती है तथा उनकी पूर्ति लक्ष्य की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है। जिससे एक खिलाड़ी अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन कर पाता है

तथा उससे उसके रोजगार के अवसर भी बढ़ते हैं जो उसको निजी जिन्दगी व पारिवारिक वातावरण में केन्द्रीय स्थान के लिए आवश्यक होता है।

4.6 निष्कर्ष।

महिलाओं की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता आर्थिक स्वतंत्रता है। परिवार में अधिक श्रम महिलाएं ही करती हैं। प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक घर, कृषि, एवं पशुपालन के कार्य करती महिलाओं के श्रम का अधिकतम फल पूरे परिवार को मिलता है लेकिन महिलाओं को अमूल्य परिश्रम का आदर सम्मान, पूर्ण रूप से प्रदान नहीं किया, जो चिंतनीय विषय है।

अतः जब तक महिलाएं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर नहीं हो जाती तब तक उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदलना भी असंभव लगता है। फलतः आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सकता है। आर्थिक आत्मनिर्भर और आर्थिक स्वातंत्र्य के विकास के आधार पर ही आज महिलाओं को परिवार में केन्द्रीय स्थान मिला है। जो उनके जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. हिन्दी महाकाव्यः सिद्धान्त और मूल्यांकन– डॉ. देवीप्रसाद गुप्त, पृ. 23
2. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास– भीखनलाल आत्रेय, पृ. 619
3. भारत में समाजशास्त्र, प्रजाति और संस्कृति– गौरीशंकर भट्ट, पृ. 261
4. संस्कृति का दार्शनिक विवेचन– डॉ. देवराज, पृ. 176
5. पूर्व–पश्चिम भारतीय जीवन– डॉ. राधाकृष्णन्, पृ. 9
6. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20–21
7. लगता नहीं है दिल मेरा–कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. 32
8. उपेक्षिता नारी– सीमोन द बोउवार, पृ. 354
9. दोहरा अभिशाप–कौसल्या बैसंत्री, पृ. 105
10. दोहरा अभिशाप–कौसल्या बैसंत्री, पृ. 124
11. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 130
12. वही
13. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 7
14. वही, पृ. 6
15. वही, पृ. 6–7
16. दोहरा अभिशाप–कौसल्या बैसंत्री, पृ.–63
17. वही, पृ. 101–102
18. वही, पृ. 102
19. वही, पृ. 103–104
20. वही
21. वही, पृ. 6
22. वही
23. वही

24. वही

25. वही, पृ. 50

26. आदमी की निगाह में औरत– राजेन्द्र यादव, पृ. 17

27. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास– भीखनलाल आत्रेय, पृ. 610

28. वही, पृ. 581

29. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 24

30. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 31

31. वही

32. वही– पृ. 172

33. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 172

34. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 13

35. वही, पृ. 286

36. वही

37. एक अनपढ़ कहानी– सुशीला राय, पृ. 66–67

38. वागर्थ– मार्च, 2008

39. एक अनपढ़ कहानी– सुशीला राय, पृ. 65

40. हादसे– रमणिका गुप्ता, पृ. 31

41. वही

42. दोहरा अभिशाप–कौसल्या बैसंत्री, पृ. 104–105

43. वही, पृ. 105

44. वही

45. वही

46. वही

47. वही, पृ. 106

48. वही, पृ. 116

49. वही, पृ. 69–70

50. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 112

51. वही

52. वही, पृ. 112–113

53. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान, पृ. 13

54. वही, पृ. 286

अध्याय – 5

अध्याय – 5

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन

5.1 स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन

5.2 विभिन्न जनआन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन

5.3 प्रतिरोध की स्थितियां और महिला आत्मकथा लेखन

5.4 शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन

5.5 निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन

वर्तमान में स्त्री स्वतन्त्रता व नारी–विमर्श के झण्डे गाड़े जा रहे हैं, परन्तु नारी स्वतन्त्रता कहाँ है, केवल बाहरी आवरण में। आज भले ही वह ग्रामीण हो अथवा महानगरों की नौकरी पेशा नारी, हर जगह उनको परिवार तो मिले, परन्तु परिवार में बुनियादी लोकतन्त्र किसी को नहीं मिला, क्योंकि स्त्रियों के अस्तित्व व नियम कानून, उनके चरित्र, कार्यक्षेत्र की बागडोर तो पुरुषों के हाथों में रही है। इसलिए कभी शारीरिक रुप से कमजोर समझकर उनका यौन शोषण किया गया तो कभी औरत होने के कारण घर–परिवार व धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में दोयम दर्जा दिया गया। उनकी आत्मकथा इस समाज की इसी राह का दस्तावेज है। वे पहले पुरुष–वर्चस्वी, स्त्री विरोधी, घर–परिवार और दाम्पत्य जीवन के अन्यायों को दर्ज करती हुई कहती है– "पति के साथ असलियत में पत्नी का वह रोल नहीं, जो फेरों के समय वचनों के रूप में बताया जाता है। वादे होते हैं, सहभागिता और एक–दूसरे की इच्छा और जरुरत का सम्मान के कौल दिये जाते हैं । सब झूठ, फरेब। असलियत में हमारा रोल खादिमा, दासी और गुलाम होना है। सलाह मशविरा कौन करता है, आज्ञा देने का चलन है।"[1]

5.1 स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन :

घर–परिवार, समाज तथा राजनीति में स्त्री के दोयम दर्जे के लिए वह हमेशा चिंतित रहती है। उच्च वर्ण में भी स्त्रियों की कोई जाति नहीं होती है। इस बात का एहसास मैत्रेयी को बचपन में ही हो गया था, जब गाँव के निम्न वर्ण के लोग मैत्रेयी को नामकरण विधि के लिए गुरुकुल में पढ़ी पीड़िता के रूप में बुलाते। सोनपाल पटवारी तथा दादा जिस पर संवाद करते हैं पटवारी– "महिमा नहीं सुविधा देख रहे हैं, जानते हैं कि कोई वेद पढ़ा लड़का उनके संस्कार करने के

लिए आया तो फिर ब्राह्मण न माना जायेगा, मैत्रेयी के साथ ऐसी कोई परेशानी नहीं।

स्त्री जीवन में बदलाव की माँग

मैत्रेयी का सभी लेखन स्त्री जीवन में बदलाव लाने की मांग करता है। वह स्त्री के लिए ऐसे समाज की संरचना करती है, जो स्त्री की स्वाधीनताओं के सौन्दर्य की रक्षा कर सके। पुनः 'चाक' लिखने के बाद मैत्रेयी कहती है–"मैंने स्त्री के लिए मनुष्य के स्तर पर जीने की स्थिति ही तो खोजी हैं, कि मैंने पुरुष के समकक्ष अपनी भावनाओं को बराबरी से रखा है, कि मैंने समाज में लोकतांत्रिक विधान की घोषणा की है, कि औरत को हर तरह से सहनागरिक का दर्जा चाहिए। मैं इन सारी बातों को इसलिए नहीं लिख रहीं कि अपने लिए एक ऐसी दुनिया की कल्पना कर रही हूँ, जिससे अनैतिक सुख और अभद्र इच्छाओं वाली जिन्दगी के चित्र हैं, बल्कि इसलिए सब कुछ रचा है कि प्रेम की सहभावनाओं में 'अनैतिक और अभद्र' भी उदात्त रुप धारण कर लेता है।"

भारतीय समाज की हकीकतें इतनी आसानी से बदल जाये तो फिर कहना ही क्या? आखिरकार पुरुषवादी मानसिकता एक दिन में तो नहीं बनी, उसमें सदियों की रूढ़ियाँ और कूड़ा–करकट भरा हुआ है। इस बात का एहसास तो उन्हें कदम–कदम पर अपने पति के साथ तो होता ही हैं। साहित्यिक जगत में भी कुछ सम्पादक, सहसम्पादकों ने उनका आर्थिक–मानसिक शोषण किया। पुरुषों के स्त्रियों के प्रति इसी रवैये का वास्तविक रूप दिखाते हुए मैत्रेयी व्यंग्य से कहती हैं– "भारतीय स्त्री को न आर्थिक निर्भरता सुखी कर सकती है, न चेतना, न सम्पन्नता उसकी सहायक हो सकती है। बस उसे पारम्परिक कर्मकांड ही सुखी और सुरक्षित रहने की गारण्टी देते हैं।"

स्वत्व की चेतना

आजादी के बाद भारतीय संविधान बना। भारतीय जनता (स्त्री–पुरुष) को समान अधिकार मिले, परन्तु समाज तथा जातीय जिन्दगी में पुरुष इस मुद्‌दे पर मौन रहा। इसी पीड़ा से उपजा उनका स्वर स्त्री मुक्ति का स्वर था। आजादी की लड़ाई में योगदान देने में स्त्रियों का भी समृद्ध इतिहास है, परन्तु आजादी के बाद स्त्रियों को राजनीति में बड़ी कठिनाई से प्रवेश दिया गया। जीवन के हर कदम, हर क्षेत्र में स्त्रियों का अभिन्न योगदान रहा है। परन्तु भारतीय समाज में पुरुष सत्ता निरन्तर स्त्री को दोयम दर्जे की नागरिकता देती आ रही है। इसी उत्पीड़न से उभरे स्वर, अपने अधिकार को पाने की तड़प ही स्त्री मुक्ति का स्वर कहा गया है।''[2] स्त्री मुक्ति, स्त्री आन्दोलन की शुरुआत, स्त्री वेदना को मानते हुए मैत्रेयी अपनी पुस्तक 'सुनो मालिक सुनो' में कहती हैं– ''मुझे लगता है दर्द के मौन से स्वर फूटे स्त्रियों की पीढ़ी ने आवाज सुनी। यह आवाज भिन्न किस्म की थी। इस भिन्नता को क्या नाम दिया जाय? यह भिन्न स्वर स्त्री की पूर्ण नागरिकता से जुड़ता है।''[3] मैं बार–बार सोचती हूँ कि ''स्त्री की नागरिक चेतना 'स्वत्व' की चेतना ही अन्ततः स्त्री मुक्ति का आह्वान बनती है। जब स्त्रियों के स्वाभाविक गुणों पर बन्धन लगा दिये गये। एक मनुष्य होने के अधिकार छीने गए तो उनकी चेतना प्रखर हुई और उसकी व्यक्ति रूप में जीने की लालसा जागृत हुई। उसकी इसी लालसा ने उसे लोकतान्त्रिक सत्ता में सक्रिय बनाया।''[4] यही स्त्री मुक्ति का आधार है।

परम्परागत रूढ़ियों का खंडन

मैत्रेयी परम्पराओं, रूढ़ियों के बंधन अपने व्यक्तिगत जीवन में तोड़ देती है, इसलिए वह न करवा चौथ को मंजूर करती है, न ही मंगलसूत्र और बिछुए की बेड़ियों को स्वीकार करती है।''[5] आखिर प्रेम तो हृदय की भावनाओं से बनता है न कि बाहरी जेवरों के बंधन से। पति के रुप में सामाजिक बंधन रूपी रिश्ता नहीं वरन् एक भरोसेमंद जीवनसाथी और सखा के रुप में पति को पाना चाहती हैं।

इसके बावजूद मैत्रेयी परिवार को एक सुरक्षित जगह मानती है। वह परिवार ऐसा हो, जिसमें स्त्री को बुनियादी लोकतंत्र मिले, जहाँ पर सभी स्त्री एक गुलाम या दासी न मानी जाये बल्कि एक स्त्री के समूचे अस्तित्व को स्वीकारा जाये। मैत्रेयी की यह आत्मकथा वह है, जिसमें केवल मैत्रेयी के मन की छटपटाहट झलकती है। जहाँ समस्त नारी–संसार प्रकृति द्वारा दिए गए स्वाभाविक गुणों के आधार पर स्वतन्त्र जीवन जीना चाहता हैं।

बचपन से युवावस्था तक अकेले समाज का सामना करते हुए मैत्रेयी अपने संघर्षों की गाथा इस प्रकार कहती है–"बाप मर गए, माँ छोड़ गयी। बड़ी हुई तो गिद्ध मिले। वे नोंचें खसोटें, मैं तड़फू, रोऊँ लेकिन पुकार वहाँ तक न पहुँचे, जहाँ माँ है।" आखिर किसने सुनी मैत्रेयी की पुकार? किसने की मैत्रेयी की आत्मरक्षा? स्वयं उसने ही।''[6] इसीलिए मैत्रेयी, स्त्री स्वतन्त्रता, महज नारेबाजी के प्रदर्शन करने की नहीं बल्कि नारी के स्वयं के प्रति जागरुकता को मानती हैं। स्त्री की चेतना, सम्पन्नता, जागरुकता ही स्त्री सशक्तिकरण हैं। इस आत्मकथा को लिखते समय अपने परिवारजनों की ओर संकेत करते हुए कहती हैं–"इनको कैसे बताऊँ कि यह आत्मकथा उन मंजरों को खोलेगी, जिन पर मुझे शारीरिक रूप से बेइज्जत किया गया और मानसिक प्रताड़ना दी। यही साक्षी बनेगी कि मैंने स्त्री का जीवन सम्पूर्ण रूप से खोलकर क्यों किताब के पन्नों पर फैला दिया। बस, इसलिए कि पुरुषों ने मुझे जैसी जिन्दगी दी थी, उसके चलते लाज–शर्म के पर्दे फट गए। तन के साथ मन चिथड़ा–चिथड़ा।"[7] इसलिए स्त्री स्वतन्त्रता के असली मायनों को उद्घाटित करते हुए अपनी आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' के प्रारम्भ में ही कहती हैं–''मैंने कलम थाम ली। कलम के सहारे मेरी चेतना, जिसे मैंने आत्मा की आवाज के रुप में पाया, तभी तो साहित्य के द्वार तक चली आई। सुना था साहित्य व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता देता है। हाँ, लिखकर ही तो मैंने जाना कि न मैं धर्म के खिलाफ थी, न

नैतिकता के विरुद्ध। मैं तो सदियों से चली आ रही तथाकथित सामाजिक व्यवस्था से खुद को मुक्त कर रही थी।"[8]

'कस्तूरी कुंडल बसै' में कस्तूरी के पति का देहांत हो जाने पर, गोदी की बच्ची को बाल विधवा द्वारा पालना जैसे पहाड़ पर चढ़ने के समान था। समाज में पुरुष की नजरों से अपने को तथा अपनी बच्ची को बचाते हुए उसे शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनानें के लिए किए जाने वाले संघर्ष की एक लम्बी श्रृंखला होती है जो शायद कभी न खत्म होने वाले रास्ते पर ले जाती है।

कस्तूरी उम्र के आखरी पड़ाव पर भी महिला सशक्तिकरण के लिए संघर्ष करते हुए प्रतीत होती है। जीवन में होने वाले संघर्ष ही सृजनता को उत्पन्न करते है। स्त्रीत्व तथा उनकी भावनाओं, मनोवेग, आवेग, आक्रोश को लेखन व साहित्य के माध्यम से समाज में हो रही मानसिक विचारधारा को प्रकट करते हैं।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू जी बताती हैं कि ''जब उनके पिता जी आर्थिक कारणों से इन्दौर से अजमेर आए, आर्थिक तंगी तो थी परन्तु पिताजी की आदतें नवाबी अतः उनका क्रोध व यातना माँ को हमेशा सहनी पड़ती थी, कभी–कभी उन्हें भी अपने सांवलेपन के कारण वह पिताजी के वात्सल्य व प्रेम से वंचित रही जो जिन्दगी भर हीन भावना के रूप में रही।''[9]

इसी प्रकार जिससे प्रेम कर शादी की उसी ने समानान्तर जिन्दगी पैटर्न रखा। पत्नी को पत्नी न मानकर, प्रेमिका को पत्नी न मानकर, पत्नी के साथ न रहकर प्रेमिका के साथ रहना। यह तो महत्वहीन सम्बन्धहीन सम्बन्ध था। लेखिका को तो ऐसा लगा जैसे किसी ने छत देकर जमीन खींच ली हो। जीवन ही उन्हें अस्तित्वहीन प्रतीत हो रहा था।

'अन्या से अनन्या' में विवाहित पुरुष से प्रेम करने के कारण उम्र भर वह अपना संघर्ष स्वयं ही लड़ती हैं। ''जिसे सर्वस्व अर्पण करती है, जिन्दगी भर वही

उनका साथ नहीं देता बल्कि समाज के सामने अपमानित होते हुए भी कुछ नहीं कहता, केवल उसकी भावनाओं के साथ खेलकर शारीरिक सुख प्राप्त करता है।''[10] प्रेम व प्यार पाने की आशा में लेखिका का हृदय आग में धधकने लगता है और इसी आवेग से सरोबार होकर वह एक परिचित पुरुष के साथ सम्बन्ध भी बनाती है। परन्तु उन्हें अहसास होता हैं कि यह प्रेम नहीं है और वह उससे विलग हो जाती है।

समाज द्वारा उनकी उपलब्धियों को नकारते हुए डॉक्टर से प्रेम करने के कारण आरोप–प्रत्यारोप करते हुए उनकी उपेक्षा तक की जाती है परन्तु इन सबका विरोध वह सशक्त नारी के रूप में करती है।

''मेरी कहानी'' में मेरीकॉम खेल के लिए ही जीना चाहती है परन्तु ऑनलर का साथ तथा उनका विवाह प्रस्ताव उनके विचार में द्वन्द्व व तनाव पैदा कर देता है क्योंकि विवाह के पश्चात् उन्हें डर था कि उसका खेलना बन्द ना हो जाये, उनके सपने अधूरे न रह जाये।

इसी प्रकार से बच्चों के होने के कारण पुनः खेल की ओर मुड़ना तथा बच्चों की देखभाल व उनकी जिम्मेदारी से दूर हटना कष्टप्रद था परन्तु पति द्वारा पूर्ण समर्पण से साथ देना उनके लिए महत्वपूर्ण साबित हुआ।

खेलों तथा पुरस्कार में भी राजनीति का हस्तक्षेप ने उन्हें निरूत्साहित किया परन्तु उन्होंने कभी हार स्वीकार नहीं की, संघर्ष जारी रखा।

हिन्दी आत्मकथाकारों ने अपनी रचनाओं में स्त्री मुक्ति की अवधारणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किए हैं वे सभी 'स्त्री विमर्श' आधार रेखा माने जाते हैं। पुरुष प्रधान इस समाज में नारी की स्थिति को दर्शाने के प्रयास उपन्यासों व कहानियों में बराबर होते आये हैं किन्तु वर्तमान समय में इनकी चर्चा अधिक होने लगी है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुछ नारी लेखकों ने इस दिशा में अनेक

प्रयत्न किए हैं। नारी वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण एक नारी लेखिका उसकी आन्तरिक भावनाओं तथा व्यथाओं को स्पष्ट रूप से और प्रामाणिक रूप से व्यक्त कर सकी है। इन नारी लेखिकाओं में विशेष रूप से उषा प्रियम्वदा, चित्रा मुदगल, निरुपमा सेवती, सूर्यबाला, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, मणिका मोहिनी, मजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, प्रभा खेतान, रमणिका गुप्ता, राजी सेठ, नमिता सिंह, सुधा अरोड़ा, मैत्रेयी पुष्पा एवं ममता कालिया जैसे कई नामों का उल्लेख किया जा सकता है। इनके द्वारा रचित रचनाओं में नारी विमर्श को एक सही ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या

हिन्दी कथाकारों ने अपनी रचनाओं में नारी मुक्ति की अवधारणा को ध्यान में रखकर जो विचार व्यक्त किये हैं, वे सभी स्त्री विमर्श की आधार रेखा मानी जाती हैं। पुरुष प्रधान समाज में नारी की स्थिति को दर्शाने के प्रयास हिन्दी साहित्य की सभी विधाओं में बराबर होते आये हैं। किन्तु वर्तमान समय में इनकी चर्चा अधिक होने लगी है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुछ नारी लेखकों ने इस दिशा में अनेक प्रयत्न किये हैं। नारी वर्ग से सम्बन्धित होने के कारण एक नारी लेखिका उनकी आन्तरिक भावनाओं तथा व्यथाओं को स्पष्ट रूप से और प्रामाणिक ढंग से व्यक्त कर सकी है। इन नारी लेखिकाओं में विशेष रूप से उषा प्रियम्वदा, चित्रा मुदगल, निरुपमा सेवती, सूर्यबाला, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, दीप्ति खण्डेलवाल, मृदुला गर्ग, मणिका मोहिनी, मंजुल भगत, कृष्णा अग्निहोत्री, प्रभा खेतान, राजी सेठ, नमिता सिंह, सुधा अरोड़ा, मैत्रेयी पुष्पा एवं ममता कालिया जैसे कई नामों का उल्लेख किया जा सकता हैं। इनके द्वारा रचित रचनाओं में नारी विमर्श को सही–सही ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

इनके साथ–साथ पुरुष लेखकों ने भी अपनी रचनाओं में नारी की दशा का चित्रण किया है। सर्वप्रथम 'गोदान' में प्रेमचन्द ने मेहता के माध्यम से नारी की

दशा को दर्शाया है। वे नारी का स्थान पुरुष से श्रेष्ठ मानते हैं। इसके साथ–साथ वह नारी को यह सलाह भी देते थे कि तुम्हें अपना क्षेत्र छोड़कर पुरुष के क्षेत्र में प्रवेश नहीं करना चाहिए तथा पश्चिम का अनुकरण भारत की नारियों के लिए बहुत हानिकारक है।

मेहता जी वीमेंश लीग के भाषण में कहते हैं कि "यह पुरुषों का षडयंत्र है। देवियों को ऊँचे शिखर से खींचकर अपने बराबर बनाने के लिए उन पुरुषों का जो डर है, उनमें वैवाहिक दायित्व संभालने की क्षमता नहीं है। जो स्वच्छन्द काम क्रीड़ा की तरंगों में सांडों की भाँति दूसरों की हरी–भरी खेती में मुँह डालकर अपनी कुत्सित लालसाओं को तृप्त करना चाहते हैं। पश्चिम में इनका षडयंत्र सफल हो गया है और देवियाँ, तितलियाँ बन गई। मुझे यह कहते हुए शर्म आती है कि इस त्याग और तपस्या की भारत भूमि में भी कुछ अपवित्र हवा चलने लगी है। विशेषकर हमारी शिक्षित बहनों पर।

स्त्री विमर्श के प्रारम्भिक काल में पुरुष प्रधान समाज में नारी की दीन–हीन स्थिति का चित्रण करते हुए लेखिकाओं ने पुरुषों को दोषी ठहराया, किन्तु बाद में इस प्रवृत्ति का उन्होंने स्वयं भी विरोध किया। चित्रा मुद्‌गल ने नारी मुक्ति के ऊपर लिखा है कि "पुरुष विरोध करते हुए पुरुष की तरह निरंकुश और स्वच्छंद हो जाना नारी मुक्ति नहीं है।"[11]

'स्त्री विमर्श' की अभिव्यक्ति का मूल स्वर नारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता एवं नारी–पुरुष की समानता के इर्द–गिर्द घूमता रहा है। आर्थिक स्वावलम्बन के अभाव में नारी अपने ही परिवार में शोषित होती रही है, क्योंकि विरोध का न उसमें साहस है और न ही शक्ति। समाज में स्त्री के लिए अलग–अलग नियम निर्धारित किये हुए हैं। मैत्रयी पुष्पा जी लिखती हैं कि "विभिन्न मानसिकता के दो मुँहे समाज में आज की नारी वस्तु मात्र सम्पत्ति की विनिमय की मूर्ति के रुप में जानी जाती है।"[12]

आधुनिक समाज में नारी को मात्र भोग–विलास की वस्तु समझने वाली मानसिकता का विरोध भी मुख्य रूप से किया गया है। इसी मानसिकता का विरोध करते हुए नमिता सिंह लिखती हैं "यह जिन्दगी तो अंधेरे घने जंगल से निकलने वाली पगडण्डी का नाम है। कब किधर से कोई बाघ या भेड़िया हमला कर दे, किस पेड़ के पीछे से जंगली सूअर दौड़ता हुआ आए और टक्कर मारकर गिरा दे, कुछ पता नही।"[13]

इसके साथ–साथ आधुनिक युग में बेटे–बेटी में बहुत फर्क समझा जाने लगा है। मनुष्य के दिमाग में संकीर्णताओं ने घर बना लिया है। उनकी मानसिकता बदलती हुई नजर नहीं आती है। जबकि आज की नारी जाग चुकी है तथा अपना हक लेने के लिए कदम–कदम पर आत्मविश्वास के साथ लड़ रही है। वर्तमान युग की नारियों में आत्मविश्वास है। वह अपनी परिस्थितियों को सुधारने के लिए एकजुट हो गई हैं। उनके विरोध को देखते हुए चित्रा मुद्गल लिखती हैं "औरत बोनसाई का पौधा नहीं है, जब जी चाहे उसकी जड़े काटकर उसे वापस गमलों में रोप दो। वह बौना बनाए रखने की इस साजिश को अस्वीकार भी कर सकती है।"[14]

'एक कहानी' में कश्मीरी लाल जी नारी को बेचारी कहने के संदर्भ में लिखते हैं–"हर जगह पर औरतों का बुरा हाल है। समाज में कोई भी दूध का धुला नहीं है। वह असहाय स्त्री आज भी शुद्र है, वस्तु है, साधन है, गुलाम है। इसलिए वह स्त्री नारी के स्वतन्त्रता के अधिकार को समझती है। उसे नारी के लिए बेचारी सम्बोधन से आपत्ति है।"[15]

नारी विमर्श के आधार पर कई बार समाज में देखा गया है कि वह कई बार पुरुषों के अत्याचार का विरोध करती हुई उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप प्रतिशोध के भाव से युक्त होकर वह सब कुछ करने पर विवश हो जाती है। वह व्याख्या देती है अगर उसका पति पर नारी संसर्ग का आकांक्षी है तो वह पर पुरुष में

आसक्त क्यों नहीं हो सकती? नारी मुक्ति के समर्थ को नारी से यौन शुचिता की अपेक्षा करना उचित नहीं लगता। कौमार्य, सतीत्व, पतिव्रत जैसी अवधारणा अब आधुनिक संदर्भ में अप्रासंगिक लगती है। अनेक रचनाओं में नारी ने अपने प्रतिशोध की भावना को दर्शाया है। एक जमीन अपनी को नीता सुधीर जैसे कई पुरुषों द्वारा छली जाती है। यदि इसी को नारी चेतना या स्त्री विमर्श की संज्ञा दी जाये तो गलत नहीं होगा। इसके साथ ही रंगी हुई चिड़िया की शीला रामेकर हैं जिसकी एक आवाज पर हजारों मजदूर एकत्र हो जाते हैं। उसके जोश को देखकर कोई नहीं कह सकता कि नारी अबला है। स्त्री के इस अबलापन से मुक्ति भी स्त्री विमर्श का ही एक अंग है।

ध्रुवस्वामिनी नाटक की नायिका अपने कायर पति को चुनौती देती हुई कहती है कि "यदि तुम मेरी अपनी कुलमर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते मैं उपहार में दी जाने वाली शीतल मांग नहीं हूँ मुझमें रक्त की तरल लालिमा भी है।"[16]

अतः कहा जा सकता है कि आज भी इक्कीसवीं सदी की आधुनिक नारी में कोई बड़ा परिवर्तन न कर सके, किन्तु उनकी सोच तो बदली है। अपने सलीबे में रमणिका गुप्ता ने साफ कहा है कि जागरुक नारियों को जन–जागरण का कार्य अवश्य देना। भले ही वो समाज में कोई युगान्तकारी बदलाव नहीं कर सके परन्तु इसके बावजूद वो नारी शक्ति को जागृत करने में अहम भूमिका निभा सकती है। भारतीय नारी हमेशा से ही समाज में ओत–प्रोत होकर कार्य करती रही है। वर्जना विहीन, नैतिकता विहीन व संस्कारहीन जीवन जीने की ललक पाश्चात्य नारी मुक्ति के लिये उपयुक्त हो सकती है किन्तु भारतीय नारी के संदर्भ में यह सही नहीं है। भारतीय नारी का जीवन तो संस्कारमय तथा सभ्य होता है जिसके कारण यहाँ पर नारी को देवियों के समान पूजा जाता है, कहा भी गया है–

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'

'एक जमीन अपनी' में चित्रा मुद्गल ने लिखा है कि "मर्दों की भाँति रहना व समस्त आचार–व्यवहार अपनाना यही समानता का दृष्टिकोण है? जब ये अव्यवस्थाएं मर्दों के लिए अनैतिक, अमानवीय और निरंकुशताएं है तो स्त्री के लिए कैसे उचित हो सकती है।''[17]

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी का चरित्र विधवा का न होकर रेशमी वस्त्र पहनना तथा गहने भी पहनना था। अर्थात् कस्तूरी इस बात को समझ गयी थी कि यदि पुरुष प्रधान समाज में सम्मान के साथ रहना है तो खोखले रीति–रिवाजों को डालना होगा, उसके लिए संघर्ष भी स्वयं को ही करना होगा, अपने अधिकार व सम्मान की रक्षा हमें स्वयं ही करनी होती है।

कस्तूरी मानती है कि जो हमारा है हमें उसी के लिए हँसते हुए, संघर्ष करते हुए, शिक्षा को प्राप्त करते हुए जीना चाहिए जिससे समाज में कोई स्त्री का शोषण न कर सके तथा उसका अपमान, अनादर, तिरस्कार न कर सकें।

वह बंधनों से मुक्त होना चाहती थी। अतः त्याग, बलिदान आदि सभी को समझाती थी। वह अपनी व अपनी बेटी की जिन्दगी संवारने के लिए रिश्ते व परम्पराओं से ऊपर उठ जाती है।

इसी प्रकार मैत्रेयी यौवनारम्भ की अवस्था में यह मानने लगती है कि विवाह के पश्चात् पति का प्रेम तथा गृहिणी का सुख ही स्त्री के लिए सर्वोपरि है। विवाह के पश्चात् उसने जिस प्रेम, प्यार की कल्पना की थी वास्तविकता में वह था ही नहीं।

शहरीकरण की वास्तविकता

मैत्रेयी को पुरुष प्रधान समाज की तथा शहरीकरण व सम्बन्धों की वास्तविकता का धीरे–धीरे अहसास होता है। जब मैत्रेयी बेटी को जन्म देती है तो किसी को भी प्रसन्नता नहीं होती। मैत्रेयी को लगने लगता है कि अपनी बच्ची को

लेकर चिड़ियाँ की तरह उड़ जाऊ। अपने स्त्रीत्व व मातृत्व को उन्होंने इस प्रकार व्यक्त किया–

''मनुष्य के रूप में अगर सबसे कठिन चुनौती भरी जिंदगी को पाया है तो स्त्री ने, या कुदरत को उससे बैर था? या सृष्टि के कर्ता–धर्ता की ही कोई साजिश.... मादा बनाने के बाद मादा होने की सजा का नाम औरत कर दिया क्योंकि साथ में दिमाग दिया और विवेक भी दे दिया''।''[18]

स्त्री की परिभाषा तथा उसका चित्रण भावनात्मक अभिव्यक्ति के साथ जो प्रस्तुत किया है वह अन्तःकरण की गहराइयों को खुजाने वाला है। एक नारी के रूप व स्वरूप की दुनियाँ में इससे अच्छी अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती।

कस्तूरी अपनी ही पुत्री से विरोधाभास सहती है उनके मध्य हमेशा एक द्वन्द्व व नकारात्मकता की स्थिति बनती हुई देखी गयी। विवाह के समय समाज की परम्पराओं को तोड़ने की जो साजिश कस्तूरी कर रही थी उसकी सजा मैत्रेयी को ही भोगनी थी। अतः वह उसे कलयुगी माँ नजर आ रही थी।

''कस्तूरी, मैत्रेयी को शिक्षित कर समाज में मान–सम्मान व पद प्रदान करने की इच्छा रखती थी परन्तु मैत्रेयी तो शारीरिक सुख की प्राप्ति की ओर बढ़ रही थी। अतः जब वह गर्भवती होती है तो माँ उसे गर्भपात करवाने के लिए भी कहती है।''[19]

कस्तूरी के अनुसार स्त्री की मुक्ति शिक्षित होकर आत्मनिर्भर बनने से ही है। लेखिका मानती है कि उसके जीवन को नयी दिशा प्रदान करने में परोक्ष रूप से उनकी माँ का ही योगदान है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षमय रहा है वह भी स्वयं के साथ अधिक। ''जिस व्यक्ति से प्रेम विवाह किया, पिता की इच्छा के विरूद्ध, वही व्यक्ति शादी के पश्चात् किसी ओर के साथ जीवन व्यतीत करने

की कहकर पति–पत्नी के रिश्तों को ही महत्वहीन, संबंधहीन बना देता है तो एक नारी का जीवन ही महत्वहीन हो जाता है।''[20]

इन्द्रधनुषी रंगः घनघोर काली रात

भावी जीवन की कल्पना में जो इन्द्रधनुष के रंग लेखिका ने भरे उन्हें पति ने घनघोर काली रात में बदल दिया, उसकी भावनाओं व अस्तित्व को पूरी तरह से हिला डाला था। परन्तु पति के साथ साहित्य से जुड़ाव होने से उन्हें एक नयी दिशा प्राप्त हो चुकी थी। उन्होंने अपने जीवन के एकाकीपन को साहित्य की दिशा में मोड़ दिया।

वैवाहिक होते हुए भी विवाह व गृहस्थी तथा परिवार होने का सुख प्राप्त न होना, हर पल जिन्दगी को बेमानी मानने लगता है तथा मन से इस सोच को निकालकर जीना दिन–प्रतिदिन कठिन होता जाता है। साथ ही समाज के पुरुषों की नजरे उसे हमेशा अपनी ओर आती नजर आती है, उसे अपनी रक्षा स्वयं ही करनी होती है। साथ ही पारिवारिक मामलों में पति द्वारा किसी भी प्रकार का सहयोग प्रदान न करना जीवन में निराशा भर देता है। स्त्री की भावनाएं शरीर का साथ छोड़ने लगती है परन्तु अपनी अस्थिर जिन्दगी को निर्भय होकर संभाला और संकट की गुफा में पूरी तरह से ढकेल दिया। पति की लापरवाही व नाहेमियन जीवन से उन्हें अलग होने में तीस साल लग गये।

सरकार द्वारा उन्हें फैलोशिप प्रदान करना, 'पदम श्री' प्रदान करने के प्रस्ताव को आपातकाल में ठुकरा देना उनकी देशभक्ति तथा सामाजिकता का परिचय प्रदान करती है। उनकी लोगों के प्रति आस्था व विश्वास को स्पष्ट करती है।

सिक्ख दंगो में लोगों की सेवा करने का जज्बा उनकी भावनाओं को भी व्यक्त करता है कि आम लोगों से उनका कितना भावनात्मक सम्बन्ध था।

निःसंकोच होकर अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति करना उनके जीवन के मजबूत पक्ष को उजागर करता है। अपनी बात पर कायम रहना तथा सच्चाई के साथ डटे रहना हमेशा उनकी प्राथमिकता रही। जीवन के संकट के समय भी उन्होंने कभी समझौता स्वीकार नहीं किया तथा उनकी सृजनात्मक क्षमता की अभिव्यक्ति उनके उपन्यासों, कविताओं, कहानियों तथा उनसे बनने वाले धारावाहिकों, नाटकों व फिल्मों से दृष्टिगोचर होता है।

'अन्या से अनन्या' में लेखिका अपने जीवन के सार को इस प्रकार से व्यक्त करती है ''मैंने अपने–आपको बचाया है अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हाँ टूटी हूँ, बार बार टूटी हूँ..... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं..... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो जिन्दगी झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपरमास्थियों पर नाज है। मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेशा रहा है पर यह अकेलापन जीवन का अर्थ भी समझता रहा है।''[21]

उपर्युक्त पंक्तियाँ लेखिका के जीवन संघर्ष की पूर्ण अभिव्यक्ति देती है कि जीवन जितना सरल प्रतीत होता है उतना होता नहीं है। एक स्त्री अविवाहित होकर विवाहित पुरुष के साथ जीवन कैसे बिता सकती है यह तो पुरुष प्रधान समाज का नियम तोड़ना है क्योंकि यह अधिकार तो पुरुष ने प्राप्त कर रखा है।

एक स्त्री को यह अधिकार नहीं है कि वह जिससे प्रेम करती है उसके साथ अपना जीवन व्यतीत कर सके, वह भी बिना किसी स्वार्थ के। यह तो लेखिका का स्वयं का जीवन है, उस पर किसी का अधिकार कैसे हो सकता है। परन्तु जिसे जीवन भर प्रेम किया, पूर्ण समर्पण के साथ, साथ दिया उसने जीवन में कभी सम्मान प्रदान नहीं किया शायद पुरुष होने का अभिमान या समाज से डर।

लेखिका बताती है कि समाज में उसकी छवि नकारात्मक प्रस्तुत की जाती। लोग उसका अनादर अपमान करते परन्तु डॉ. सर्राफ ने उनका कभी साथ नहीं

दिया। लेखिका कहती है कि प्रेम क्या केवल शारीरिक होता है भावनाएं नहीं होती प्रेम में। प्रेम में लेखिका ने केवल प्रेम व साथ चाहा था मगर उसे वह भी प्राप्त न हो सका।

डॉ. सर्राफ के यह शब्द शायद किसी भी स्त्री को पूर्णरूप से तोड़ने के लिए काफी है कि ''तुम स्वयं मेरे गले पड़ती हो तो मैं क्या करूं, मेरी तुम्हारे प्रति कोई जवाबदेही नहीं।''[22] एक प्रेम सम्बन्ध को महत्वहीन कर केवल शारीरिक दुःख के दृष्टिकोण से देखना एक नारी की भावनाओं का अपमान है। व्यवसाय करने पर पुरुष प्रधान समाज द्वारा उन्हें अपमानित करना जीवन की सत्यता को दर्शाता है कि आज भी हमारा समाज स्त्री की कामयाबी से जलता है।

लेखिका मानती है कि संस्कारों से, परम्परा से, मुक्ति की यात्रा बहुत लम्बी है और बड़ी कठिन है। सम्पन्न परिवार में जन्म होने पर भी रंग गोरा न होने तथा दाँत उभरे होने की हीनभावना व दंश उन्होंने जीवन भर झेला और वे कभी भी उससे मुक्त नहीं हो पाई। एक कोमल मासूम बच्ची को बिना प्यार व स्नेह के दाई की लड़की कहना तथा माता–पिता के प्रेम व स्नेह से दूर रहना उन्हें जीवनपर्यन्त टीस पहुँचाता रहा।

इक्कीसवीं सदीं की आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति की वर्तमान स्थिति और सृजन

इक्कीसवीं सदीं की आत्मकथाओं में घर, परिवार, समाज और देश स्त्री से महती अपेक्षाएं रखता है। जबकि भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् स्त्रियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। यद्यपि स्वतंत्रता के पूर्व विभिन्न समाज सुधारकों एवं सुशिक्षित लोगों ने धार्मिक, सामाजिक आंदोलनों द्वारा स्त्रियों की स्थिति को सुधारने का प्रयास किया। फलस्वरूप बालविवाह, अशिक्षा, वैवाहिक कुरीतियों एवं जाति प्रथा का

निषेध किया गया और विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह का समर्थन कर समाज में स्त्रियों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में व्यापक परिवर्तन हुआ है।

डॉ. श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण लौकिकीकरण और जातीय गतिशीलता को इन परिवर्तनों का प्रमुख कारण माना है।

नारी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं

परिवार की अपेक्षाएं नारी से सर्वाधिक होती हैं। मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने वाली एक व्यापक इकाई का नाम संबंध है। आज मनुष्य का जो वर्तमान स्वरूप है वह संबंधों के द्वारा ही विकसित हुआ है। हमारे भारतीय समाज में प्राचीन मनीषियों ने नर–नारी संबंधों की अर्द्धनारीश्वर के रूप में सुंदर एवं रमणीय कल्पना की है। इस रूप में यह भाव प्रदर्शित किया गया है कि स्त्री एवं पुरुष एक–दूसरे के पूरक हैं। संबंधों के विविध रूप परिवार नामक संस्था में देखने को मिलते हैं, जिसका केन्द्र बिन्दु नारी है। नारी के पारिवारिक रूप को ही संबंधों के धरातल पर सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया है, जिसका कारण ''वही पुरानी मान्यता है कि नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रख सकती। इस मान्यता के विपरीत आत्मकथा लेखिकाओं ने नारी के कन्या, पत्नी, माँ, बहन, सास, बहू, विधवा रूप के अतिरिक्त मित्र, प्रेमिका और सहयोगी रूप का भी चित्रण किया है।''[23] आत्मकथाओं की नारी पारिवारिक संबंधों के अतिरिक्त अपना एक अलग व्यक्तित्व रखती है। वह भी पुरुष के समान सम्मान और अधिकार चाहती है। आज परिवार की विविध मांगों को वह अपने अस्तित्त्व को मिटा कर पूरा करना नहीं चाहती है। संयुक्त परिवार में नारी का व्यक्तित्व खंडित हो जाता था, इसलिए उसे संयुक्त परिवार से अरुचि हो गई है। पारिवारिक मर्यादा के प्रति भी नारी के रुख में अवमूल्यन हुआ है। आत्मकेन्द्रित हो जाने के कारण नारी का अकेलापन बढ़ा है।

स्वतंत्र अस्तित्व की चेष्टा

आजादी के बाद बदलते परिवेश और नारी को मिलने वाले विभिन्न अधिकारों से नारी स्वातंत्र्य को बल मिला। समय के साथ–साथ नारी में पुरुष की तुलना में जो हीनता की ग्रंथि थी, वह समाप्त होने लगी और नारी पुरुष की अपेक्षा स्वयं को कहीं अधिक प्रगतिशील एवं शक्ति संपन्न समझने लगी। अब नारी पुरुष के समक्ष स्वयं को पराजित होती नारी ससुराल के सभी सदस्यों एवं पति के समक्ष अपने स्वाभिमान एवं स्वतंत्र अस्तित्व को बनाये रखने की चेष्टा कर रही है।

दोहरे मानदंड का विरोध

वैज्ञानिक साधनों के प्रचार–प्रसार के कारण आज नारी की चेतना जागृत हुई है, जिसके कारण उसके धार्मिक विश्वास भी क्षीण हुए हैं तथा सामाजिक नैतिक मूल्यों में विघटन आया है। जिसके कारण स्त्री–पुरुष संबंधों में बदलाव आ गया है। अब नारी–पुरुष पर अंधविश्वास नहीं रखती है। इन संबंधों की जटिलताओं को आत्मकथा लेखिकाओं ने व्यापक धरातल पर चित्रित किया है। समाज ने पुरुषों के स्वतंत्र भोग पर कोई रोक नहीं लगायी है। पुरुष स्त्री पर आसक्ति प्रकट कर सकता है, लेकिन स्त्री पर पुरुष संबंध नहीं रख सकता। इसलिए नारी इस दोहरे मानदंड के प्रति विरोध प्रदर्शित करती है। प्रेम की नैतिकता के प्रति समाज स्त्री पुरुष के लिए अलग–अलग मानदण्ड रखता है, जिसका आत्मकथा लेखिकाओं ने भरपूर विरोध और विद्रोह किया है।

पुरुष ने जब देखा कि धीरे–धीरे स्त्री उसके अधीन होने लगी है, तब वह पतिव्रत, सती तथा अनेक विधानों के द्वारा उसे अपने अधीन करने लगा। अपना कोई आर्थिक आधार न होने के कारण स्त्री के पास अधीनता की स्वीकृति के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं था।

'कस्तूरी कुण्डल बसै' में कस्तूरी का कम उम्र में ही दुःख, दर्द सहना तथा जीवन की परिस्थितियों से लड़ना सीख लिया। कस्तूरी ससुर, दादाजी से कहती है कि मैं अपनी बेटी को पढ़ा–लिखाकर बड़ा करूँगी कि मेरे तुम्हारे बाद वह अपने दुश्मनों से बदला ले सके। कस्तूरी को शिक्षा से होने वाले परिवर्तन समझ में आ गये थे अतः वह सभी को शिक्षित होने की सलाह देती।

कस्तूरी यह मानती है कि ''एक नारी का केवल यह दायित्व या कर्तव्य नहीं है कि शादी करके बच्चे पैदा कर परिवार को संभाले इससे आगे भी समाज के प्रति उन्नति व स्वयं के विकास, आत्मनिर्भरता के लिए उसे आगे बढ़ना चाहिए। उनके अनुसार एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित तथा आत्मनिर्भर हो। पुरुष उसे तभी महत्त्व देता है जब नारी स्वयं के पैरों पर खड़ी हो तथा पुरुष लाठी का सहारे न बनी हो। मैत्रेयी की शादी के पश्चात् अंतरंग जिन्दगी की नीरसता उन्हें अखरने लगी।''[24]

लेखिका मानती है कि एक नारी का पढ़ा–लिखा होने के साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी आना चाहिए तथा उसमें आत्मनिर्भरता भी होनी चाहिए जिससे जीवन के निर्णय वह स्वयं ले सके। लेखिका मानती है कि पारिवारिक जिम्मेंदारियों को निभाते हुए विकास करना जीवन की सफलता है, मनमानी करना नहीं।

'एक कहानी यह भी' में जब मन्नू जी बिना किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन के कहानी लिखती है और वह छप जाती है तो ''लेखिका को अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनता हुआ वजूद नजर आता है। यही साहित्य व लेखन से प्रेम और कार्यक्षेत्र की शुरूआत ही उन्हें अन्त तक एक आत्मनिर्भर लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करती है।''[25] साहित्य व लेखन का जो स्वरूप उनका नजर आता है वह स्वयं केवल उनका और उनका ही है। उस पर पति के लेखन व साहित्य का प्रभाव जरूर पड़ा। उनकी सफलता उनकी स्वयं की ही थी। जीवन के वास्तविक अनुभवों तथा किरदारों को ही उन्होंने अपने साहित्य में स्थान दिया। लेखिका के अनुसार

एक नारी का जीवन में कुछ पाने का आत्मविश्वास, स्वयं के लिए विशिष्ट पहचान व आत्मनिर्भरता ही नारी मुक्ति का मार्ग है।

नारी इतनी आत्मनिर्भर होनी चाहिए कि वह स्वयं के निर्णय भी पूर्ण विश्वास तथा निडरता के साथ ले सके तथा समाज के सामने निडरता से खड़ी रहे बिना परिणाम की परवाह किये। उनके अनुसार एक नारी को स्वयं के प्रति हमेशा सचेत रहना चाहिए।

एक तरफा प्रेम के रिश्तों को तिलांजलि

'अन्या से अनन्या' में लेखिका मानती है कि एक नारी की सुन्दरता का प्रभाव परिवार में ही उन्होंने देखा क्योंकि वह उतनी सुन्दर नहीं थी अतः हीनताबोध, उपेक्षिता तथा आत्मसम्मान की कमी ने उनका जिन्दगी भर पीछा किया।

लेखिका इस बात को स्पष्ट रूप से कहती है कि एक नारी के लिए जीवन जीना इस समाज में बहुत कठिन है। नारी को अपना अस्तित्व तथा मार्ग स्वयं ही बनाना होता है तथा ''आत्मनिर्भरता उसके लिए मील का पत्थर, उसका आत्मविश्वास तथा संरक्षक भी होता है। उनके अनुसार एक नारी को सम्मान तभी प्राप्त होता है जब वह पूर्ण आत्मनिर्भर हो तथा समाज में किसी पद पर पहुँचे। पुरुष प्रधान समाज हमेशा हर परिस्थिति में उसे ही दोषी मानता है तथा उसके हर कदम पर काँटे बिछाता है।''[26] लेखिका मानती है कि पुरुष स्त्री को केवल शारीरिक तौर पर उपभोग करता है। भावनात्मक प्रेम उसके लिए होता ही नहीं है। पुरुष नारी का शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण करता है।

लेखिका की आत्मकथा से यह स्पष्ट होता है कि एक नारी को अपने जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय भावनात्मक रूप में नहीं लेने चाहिए तथा भविष्य की कठिनाइयों तथा समाज के विरोध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक स्त्री का स्वयं का वजूद ही उसका आत्मसम्मान बनता है। लेखिका के मानसिक विचारों से यह जान

पड़ता है कि यदि पुरुष प्रेम का उत्तर प्रेम से न दे, आपके समर्पण व लगाव को ना समझे, आपके आत्मसम्मान की रक्षा न कर सके तो इस प्रकार के रिश्तों को तोड़ कर तिलांजलि दे देना चाहिए और जिंदगी को नये सिरे से जीना चाहिए। स्त्री आत्मनिर्भरता पुरुष के वर्चस्व को बहुत कम कर देता है लेखिका के विचारों से ऐसा स्पष्ट होता है।

पुरुष वर्चस्व को तोड़ती नारी

'मेरी कहानी' में मैरीकोम बचपन में अपने पिता व माता को दिनभर मेहनत कर दो मुठ्ठी अनाज के लिए संघर्ष करते हुए देखती है तो धीरे–धीरे उनके मन में यह बात आती है कि जिन्दगी को यदि बेहतर तरीके से तथा सम्मानपूर्वक जीना है तो उसके लिए ''समाज में किसी विशेष पद तथा शिक्षित होकर आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी होगी। अतः अपनी मेहनत तथा खेल के प्रति रूझान को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उसे प्राप्त करने के लिए कड़ा संघर्ष करती है।''[27] परिवार भी अपनी परिस्थितियों से समझौता करता हुआ उनकी सफलता में अपना पूर्ण योगदान प्रदान करता है क्योंकि भविष्य की सुखद कल्पना व बेहतर जीवन जीने की सुविधाएं उन्हें भविष्य के मार्ग पर नजर आने लगती है।

लेखिका मानती है कि मेरीकॉम जैसे–जैसे सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ती जाती है उसका आर्थिक पक्ष मजबूत होता जाता है साथ ही सरकारी नौकरी तथा समाज व देश से प्राप्त सम्मान उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है।

मेरीकॉम मानती है कि पुरुष प्रधान समाज में स्वयं की रक्षा करते हुए सफलता को प्राप्त करना तथा एक नारी की सफलता में पुरुषों द्वारा निस्वार्थ योगदान बहुत ही कठिन होता है।

उपर्युक्त आत्मकथाओं से स्पष्ट होता है कि नारी के साथ जो होता है उसका उत्तरदायित्व केवल पुरुष होता है। पुरुष द्वारा नारी को केवल शारीरिक तौर

पर उपभोग करना, उसे प्रेम व सम्मान से वंचित रखना, संबंध को स्वीकार न करना, पारिवारिक कार्यों में सहायता न करना, आर्थिक परेशानियाँ पैदा करना, मानसिक रूप से तथा शारीरिक रूप से भी प्रताड़ित, अपमानित करना आदि के कारण एक स्त्री का स्त्रीत्व तथा उसका मानसम्मान, गौरव, आत्मविश्वास जीवन में निराशा का भाव उत्पन्न कर देता है। उसकी भावनाएं जब आहत होती है। दुःख व पीड़ा तथा दर्द जब ह्रदय की गहराइयों को चीर कर निकल जाता है तब उस दुःख से वह नहीं निकल पाती। जीवन शब्दहीन, अर्थहीन, महत्वहीन होने लगता है तो जीवन में उसके अन्तः मन की नारी प्रबल होने लगती है तथा उसका आत्मविश्वास तथा साहस उसे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है तो जीवन की सभी उँचाइयों को वह छू लेते हैं। जीवन के यही उतार–चढ़ाव तथा जीवन के पल ही कलम के माध्यम से कागज पर उतरने लगते है। नारी के अन्दर विद्यमान लेखिका, कवयित्री वास्तविक स्वरुप में प्रकट होकर समाज के समक्ष वास्तविकता को प्रकट करने लगती है।

वर्तमान सदी की महिलाओं की स्थितियों में विभिन्न प्रकार की विभिन्नताएं दिखाई देती हैं। एक और जहाँ महिलाओं की स्थिति निम्न स्तर की व दयनीय, पीड़ादायक, कष्टप्रद बनी हुई है, वहीं दूसरी और महिलाएं उच्चतम पदों पर आसीन भी नजर आ रही है जहाँ एक पूर्ण संस्थान का उत्तरदायित्व उन्हीं पर है। ''पुरुषों के क्षेत्रों में पुरुष वर्चस्व को तोड़ती हुई वह पुरुष से भी दो कदम आगे बढ़ चली है। उसकी ऊँचाई का कद निरंतर बढ़ रहा है जबकि मध्यम वर्ग की महिलाओं की स्थिति ना तो बहुत अच्छी है ना ही दयनीय है''[28] परन्तु यदि सभी स्तरों जैसे– निम्न वर्ग, मध्यम वर्ग तथा उच्च वर्ग की महिलाओं की समीक्षा की जाती है तथा संचार माध्यमों, पत्र–पत्रिकाओं आदि से प्राप्त जानकारी द्वारा जो निष्कर्ष निकलकर आता है उससे स्पष्ट होता है कि अधिकांश महिलाएं घरेलू उत्पीड़न का शिकार हो रही है तथा वर्तमान में घरेलू उत्पीड़न का प्रतिशत निरंतर बढ़ रहा है। इसका

प्रमुख कारण हमारा ही सामाजिक वातावरण तथा समाज का दृष्टिकोण है किसी भी समाज में महिलाओं की स्थिति पुरुष वर्ग की मानसिकता तथा उनकी सोच व महिलाओं के प्रति उनके उत्तरदायित्व व महत्त्व के आधार पर होती है।

समाज में रहने के कारण हर समाज की परम्पराएं, मान्यताएं, रीति–रिवाज होती हैं। यही रीति–रिवाज, मान्यताएं, परम्पराएं यदि समयानुसार परिवर्तित नहीं होते है या समयानुसार इनमें किसी प्रकार का बदलाव नहीं होता है तो यह समाज के हित में नहीं होते हैं और तो और इन सब के ठेकेदार पुरुष होते है जबकि इनको उठाने तथा आगे बढ़ाने का उत्तरदायित्व वे महिलाओं पर डालते है। सामाजिक बंधनों के कारण स्त्री का जीवन एक बन्द कालकोठरी के समान हो जाता है जहाँ उसे अकेले ही जीवन का बोझ उठाना पड़ता है वह भी अन्यों के बोझ के साथ।

ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं का जीवन पति के पीछे की ओर होता है, दबा हुआ सा, सहमा हुआ–सा, सामाजिक बंधनों से जकड़ा, जहाँ बोलने तक की आजादी नहीं होती है केवल घूंघट से जीवन के कुछ पलों को वह जी पाते है उसका जीवन घूंघट में ही रहकर निकल जाता है सामाजिक मर्यादाओं व परम्पराओं से वह लिपटी हुई, तड़पती हुई–सी प्रतीत होती है परन्तु समाज व परिवार की मर्यादा उसे किसी भी कार्य को करने से रोकती है। वह स्वयं निर्णय लेने में सक्षम नहीं है। उसे केवल दो ही कार्य जीवन में करने को दिये जाते हैं एक बच्चे पैदा करना, पालना और दूसरा परिवार के खानपान का हमेशा ध्यान रखते हुए पति व बच्चों सहित परिवार की सेवा करना। यह सेवा उसे जीवन भर मुफ्त करनी होती है। जिसका भुगतान भी उसे स्वयं ही अपना जीवन न्योछावर करके चुकाना होता है तथा उसे जीवन में किसी भी वस्तु की लालसा, इच्छा नहीं होती है। यदि होती भी है तो उसकी इच्छाओं का दमन आसानी से कर दिया

जाता है और वह उफ तक नहीं कर पाती है, केवल अपनी जिन्दगी को मूक–बधिर बनकर देखती रहती है।

एक पति गांव में पत्नी के होते हुए भी दूसरी पत्नी ब्याह कर ले आता है तथा ना तो पहली पत्नी में इतनी हिम्मत या ताकत होती है, ना ही आने वाली दूसरी स्त्री में कि वह उसका विरोध कर सके। केवल अपनी भर्त्सना वह स्वयं पर ही निकाल पाती है। इसी प्रकार एक स्त्री का पति रोज या कुछ–कुछ दिनों के अन्तराल पर शराब पीकर आता है, उसे मारता–पीटता है उसके साथ अनैतिक रूप से संभोग कर अपनी काम इच्छा की पूर्ति करता है तथा खुश होता है कि इससे उसकी पत्नी को कितनी पीड़ा हुई। स्त्री की पीड़ा से उसे सन्तोष की प्राप्ति होती है परन्तु उस स्त्री के मन पर क्या गुजरती होगी जिसके साथ उसका स्वयं का पति ही बलात्कार जैसी क्रिया करता हो उसका कोमल मन, उसका अन्तर्मन घृणा संवेगों से अधीर होकर राम की पत्नी सीता की तरह इस धरती में समा जाना चाहता होता होगा कि ऐसा जीवन किस काम का है। यदि स्त्री द्वारा बच्ची पैदा कर दी जाती है तो उसका जीवन नरक जैसा बना दिया जाता है। उसे ना तो भोजन मिलता है, ना ही अच्छे वस्त्र, ना ही परिवार की खुशियों में सहयोग। कैसा होता होगा ऐसी स्त्री का जीवन, सोचकर ही शरीर में एक कपकपी–सी छूटने लगती है। पूरा शरीर कपकपाने लगता है।

कई बार ऐसा देखा जाता है कि एक पुरुष के संबंध अन्य स्त्रियों के साथ भी होते है। पत्नी द्वारा इसकी जानकारी होने के पश्चात् भी पुरुष प्रधान समाज स्त्री को ही इसका दोषी मानता है उसके अनुसार स्त्री इसलिए दोषी है कि वह पति की काम इच्छा की पूर्ति नहीं कर पा रही है।

परिवार में होने वाले किसी भी निर्णय को उसे सिर झुकाकर मानना ही पड़ता है अन्यथा समाज के बड़े या ठेकेदार उसे इस प्रकार की सजा देते है या

उसके साथ ऐसा अत्याचार करते है कि अन्य स्त्री कभी अपना सिर भी ऊँचा करने की सोच भी नहीं सकती है।

आर्थिक परतंत्रता स्वतंत्रता विरोधी

आर्थिक निर्भरता स्त्री के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है। स्त्री के सामाजिक पतन का मूल कारण आर्थिक ही है, जो परिवार आर्थिक रूप से समृद्ध होते हैं वहाँ भी अधिकांशतः स्त्रियों का कार्य परिवार के सदस्यों की देख–रेख और पति को प्रसन्न करना होता है। वे बेबस होती हैं, कुछ कह या कर नहीं पाती है। उन्हें लाचारी में समझौता करना पड़ता है। नारी इसी से कभी भी मुक्त नहीं हो सकी। पेट भरने की लाचारी उसे पुरुष सत्ता का दास बनाए रखती है।

भारतीय समाज में व्यवस्था के स्तर पर प्राथमिकता समूह की रहती है वस्तुतः जब संयुक्त परिवार की रक्षा एक मूल्य के रूप में की जाती है तो उसके पीछे भी यही दृष्टि रहती है। उसमें भी सोपान व्यवस्था निहित है जो व्यक्ति की समानता और स्वतंत्रता के मूल–अधिकार का विरोधी है।

अब बदलते परिवेश के कारण नारी के अन्दर चेतना की लहर आई है और उसके कार्य क्षेत्र का भी काफी विस्तार हो चुका है। उसे अपनी आत्माभिव्यक्ति तथा अस्तित्व के स्वतंत्र निर्माण के लिए संयुक्त परिवार की व्यवस्था अनुकूल नहीं लगती इसलिए संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था का विघटन हो रहा है।

महिलाएं मध्ययुगीन सीमा को तोड़कर बाहर आ चुकी है। वे हर दृष्टि से स्वतंत्रता चाहती है। वह स्वयं को परिवार में स्थापित करना चाहती है। अपनी एक अलग स्वतंत्र पहचान बनाना चाहती है। व्यवस्था द्वारा अपने शोषण को पहचानते हुए वे उसका मुखर प्रतिरोध कर रही है।

पति को परमेश्वर मानकर चलने वाली यह स्त्री पति द्वारा जीवन में जो भी, जितना भी मिलता है उसे अपना भाग्य समझ कर लेना होता है यदि उसका पति

उसे कुछ भी नहीं देता है तब भी उसे उसके साथ जीवन जीना अनिवार्य होता है। स्त्री के स्वयं के माता–पिता ब्याह के पश्चात् मरणासन अवस्था में चले जाते है तथा जीवन जैसा भी हो उसे पति व परिवार के साथ ही मरना होता है। उसकी इच्छाएं व अभिलाषाएं एक सीमित दायरे में सिमटकर ही रह जाती है।

इसी प्रकार से शहरी जीवन की स्त्रियों का जीवन अलग प्रकार का दिखाई देता है। शहरी जीवन में स्त्री को कुछ मान्यताओं, परम्पराओं से छूट मिलती हुई सी दिखाई तो पड़ती है परन्तु इनका जीवन भी ग्रामीण महिलाओं जैसा ही होता है यहाँ भी पति की हुकुमत अपना अस्तित्व रखती है। शहरी जीवन में निम्न वर्ग की स्त्रियों का जीवन प्रतिदिन मेहनत मजदूरी करके निकल जाता है वह पूर्णरूप से पति पर निर्भर नहीं होती है परन्तु सामाजिक मर्यादाओं, अस्तित्व, मान सम्मान उनके लिए महत्त्वपूर्ण होता है परन्तु उनका वैवाहिक जीवन अच्छा नहीं माना जा सकता है इस प्रकार के जीवन में अधिकांश पुरुष शराब पीने के आदी होते हैं तथा अपना गुस्सा व कुण्ठा को अपनी पत्नी को मारकर, पीटकर निकालते हैं अक्सर पति–पत्नी में जीवन भर मारपीट, प्रताड़ना, तिरस्कार चलता रहता है तथा पत्नी फिर भी पति को देवता तुल्य मानकर साथ निभाती रहती है यदि पत्नी नहीं भी चाहती है तो भी सामाजिक मर्यादाओं तथा स्वयं में शक्ति या सामर्थ्य की कमी के कारण वह कोई ठोस कदम उठा पाने में सक्षम नहीं होती है। यदि कोई स्त्री ठोस कदम उठाती भी है तो समाज व लोग उसका तिरस्कार व अपमान ही करते है तथा उसका जीवन जीना दूभर कर देते हैं।

मध्यम परिवार में भी स्त्रियों का जीवन अधिक सुखद नहीं कहा जा सकता है। पति की ओर से उसे सुख–सुविधाएं तो मिल जाती है परन्तु वर्तमान परिदृश्य में मध्यम परिवार सुखी परिवार की भूमिका अदाकर रहे हैं। जहाँ दोनों एक–दूसरे को समझने की चेष्टा कर रहे है तथा जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहे है। पति–पत्नी दोनों की कुछ ख्वाहिशें, सपने होते हैं तथा दोनों जीवन भर उसके

पीछे दौड़ते रहते हैं यहाँ पत्नी व पति में समझौता ज्यादा नजर आता है तथा अक्सर पति–पत्नी को नौकरी आदि करने के लिए प्रेरित व उत्साहित भी करते है परन्तु परिवार के फैसले प्रमुख रूप से पुरुषों द्वारा ही लिए जाते हैं। यहाँ स्त्रियों को समाज द्वारा कुछ सम्मान व प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त होती है तथा स्त्रियां घर की सदस्य भी मानी जाती है। कई घर के कार्यों में स्त्री की भागीदारी प्रमुख होती है परन्तु पति की मानसिकता व सोच स्त्री पर हमेशा हावी नजर आती है। यहाँ अक्सर स्त्रियों में पति के प्रति डर व भय की स्थिति दिखाई देती है। वह किसी भी कार्य को पति की इजाजत के बिना नहीं करती है तथा यदि स्त्री नौकरीपेशा भी है तो भी वह अपना पूरा वेतन पति व परिवार को दे देती है या उससे बलपूर्वक ले लिया जाता है। यहाँ नारी की इच्छाएं, आकांशाएं व सपने एक सीमा से आगे कभी नहीं निकल पाते है। यहाँ स्त्रियां कमजोर दिखाई देती है। आत्मविश्वास व सामर्थ्यता में कमी दिखाई देती है परन्तु बालिका शिक्षा, महिला सशक्तिकरण जैसे शब्दों का प्रभाव अब भारतीय समाज में पुरुष वर्ग पर भी स्पष्ट रुप से नजर आने लगा है शहरी क्षेत्रों में पुरुष वर्ग, स्त्री वर्ग को सहयोग प्रदान करने लगा है तथा सम्मान भी परन्तु फिर भी कहीं ना कहीं पुरुषत्व का स्वभाव हावी नजर आता है।

उच्च कुल की स्त्रियों की अन्दरूनी दशा अच्छी नहीं कही जा सकती है यहाँ की स्त्रियों की मानसिक दशा दयनीय दिखाई देती है, जीवन खोखला व नीरसतापूर्ण होता है तथा एक खालीपन सा दिखाई देता है। इस वर्ग के प्रति अक्सर व्यापार, वाणिज्य के कार्यों में ही संलग्न रहते हैं अतः वह पत्नी को वह प्रेम, प्यार, स्नेह नहीं देते हैं केवल एक औपचारिकता मात्र रिश्ता बना हुआ होता है। जीवन विलासिता पूर्ण होता है तथा दोनों ही सुख भोगतें है परन्तु जीवन की वास्तविकता से दूर होने का ढोंग दोनों करते हैं ये हमेशा अपनी वास्तविकता से दूर भागते रहते हैं। पति–पत्नी की मानसिकता में अक्सर अन्तर दिखाई देता है दोनों केवल एक–दूसरे के साथ वैभव, धन सम्पत्ति के कारण जुड़े रहते हैं।

एक–दूसरे पर विश्वास नहीं होता है तथा दोनों एक दूसरे के जीवन में दखल न करने की चेष्टा करते है अक्सर ऐसी "स्त्रियां सामाजिक कार्यों के नाम पर अपना समय व्यतीत करती है तथा अपनी कुण्ठा आदि को सामाजिक कार्यों में दिखावे के नाम पर निकालती है इस वर्ग में जीवन दूर से ही अच्छा दिखाई देता है परन्तु वास्तविकता में जीवन अन्धकारमय व खालीपन लिए हुए होता है पति को पत्नी से किसी भी प्रकार का लगाव, स्नेह या प्यार नहीं होता है केवल पत्नी भोग–विलास की वस्तु मात्र ही रहती है"[29] इसलिए अक्सर इस वर्ग की नारी ही लेखन में आगे की ओर रहती हैं परन्तु उनमें साहित्यिक प्रतिभा की कमी होती है जबकि जो मध्यम वर्ग की नारी होती है वह वास्तविकता के धरातल पर खड़ी होती है अतः उसकी रचनाओं में वास्तविकता व साहित्यिक प्रतिभा स्पष्ट नजर आती है।

5.2 विश्व के विभिन्न जन आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन :

समाज का लगभग आधा हिस्सा महिलाएं होती हैं। भारत ही नहीं बल्कि विश्व के सभी देशों में नारियों के साथ प्रारम्भिक काल से ही अत्याचार एवं अन्याय किये जाते रहे हैं। अब तक तो महिलाएं अत्याचार सहन करती आयी हैं। परन्तु बीसवीं शताब्दी के मध्य से नारियों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति लगातार बढ़ती जा रही है। नारियों के अधिकारों की लड़ाई में न केवल नारियों का ही योगदान रहा बल्कि पुरुषों द्वारा भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया गया है।

आज भारत में प्रजातांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के तहत् नारियों ने अपने दमन के खिलाफ सशक्त आंदोलन किए और पुरुषों के बराबर समान नागरिक हक प्राप्त करने का प्रयास किया। एक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि जहाँ आजादी से पहले उच्च श्रेणी की महिलाएं ही इस आंदोलन में शामिल होती थीं। वहीं आजादी के बाद ज्यादा से ज्यादा आम महिलाएं इसमें शामिल होने लगी। इस आन्दोलन की कई कड़ियाँ हैं जिन्हें अलग–अलग करके देखा जा सकता है।

आजादी से पहले का आंदोलन

भारत में दुनिया के अन्य भागों के समान जनतांत्रिक चेतना के विकास के साथ महिला आंदोलन का उदय हुआ। आरम्भ में नारियों के लिए सामाजिक न्याय की वकालत करने वाले शिक्षित एवं बौद्धिक पुरुषों ने इसकी शुरुआत की। जिनका संबंध अपेक्षाकृत ऊँचे वर्ग और जाति से था। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी शिक्षा के आगमन से संस्कृतियों का टकराव हुआ और इसके फलस्वरूप नारियों के अधिकारों की बात की जाने लगी। लोग परम्परागत ढाँचे से निकलकर सोचने लगे। राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द विद्यासागर और बंगाल में ब्रह्म समाज में सती प्रथा पर प्रहार किया और सुधारकों ने विधवा विवाह को सामाजिक मान्यता प्रदान किये जाने की मांग की।

स्वतंत्रता आंदोलन

आजादी की लड़ाई के साथ–साथ इस शताब्दी के आरम्भ में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए भी आंदोलन चलाये जाने लगे। 1917, 1926 और 1927 में क्रमशः भारतीय महिला संघ, भारतीय महिला परिषद् और अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना की गई। ये सभी संगठन नारियों की सामाजिक समस्याओं और उन्हें शिक्षित करने के सरोकार से जुड़े थे। महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जब स्वतंत्रता आंदोलन में नारियों ने बड़े पैमाने पर हिस्सा लिया तब सामाजिक आधार की संकीर्णता काफी हद तक टूटी। गाँधी जी ने हिन्दू शब्दावली और कल्पनाशक्ति (उदाहरण के लिए नमक सत्याग्रह) का उपयोग करते हुए नारियों को इस प्रकार लामबंद किया जिसके कारण काँग्रेस नेतृत्व का एक हिस्सा नारियों की समानता की विचारधारा का समर्थन करने लगा और इसके परिणामस्वरूप नारियों को समान अधिकार दिये जाने की बात की जाने लगी। जिसके परिणाम के रूप में भारतीय संविधान में नारियों के लिए विशेष प्रावधान किये गये।

अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में नारी शोषण की स्थिति

विश्व भर के पुरुष प्रधान शिकंजे में नारी पर इतने शर्मनाक, आतंकपूर्ण और अमानुषिक अत्याचार होते रहे हैं कि सोचना पड़ता है कि आदमी नारी से प्यार करता है कि नफरत। वास्तविकता तो यह है कि दुनिया में अब तक नारियों पर जो अमानुषिक अत्याचार हुए है उनका विवरण शब्दों में नहीं किया जा सकता। नारियों के शोषण की कहानी अनन्त है। कई देशों में अब तक नारी शोषण के कई घृणित रूप प्रचलित है। ''खाड़ी देशों में खुलेआम दुनिया भर की औरतों के हरम सजाये जा रहे हैं। पर्दा–प्रथा तथा अनेक प्रकार की वर्जनाओं से उनकी दीन स्थिति का एहसास हो जाता है।''[30] पाकिस्तान में 'जनरल जिया' के इस्लामीकरण की प्रक्रिया के दौरान भेदभावपूर्ण कानून औरतों के भारी विरोध के बावजूद बनाया गया। इस कानून के अनुसार–दो औरतों की गवाही एक पुरुष की गवाही के बराबर बन गई हैं। ख्वातीन महाज के शब्दों में इसका मतलब निकलता है कि ''औरत आधी इंसान है।''[31] ''बांग्लादेश में परिवार में कन्या का जन्म कभी वांछनीय नहीं होता क्योंकि प्रचलित समाज व्यवस्था किसी लड़की को आदमी का दर्जा ही नहीं देती।''[32]

बेटे के जन्म लेने पर बंगाली मुसलमान प्रसवगृह की दुआरी पर खड़ा होकर अजान देता है। मुसलमानों के लिए अजान एक पवित्र पुकार है। बेटी के जन्म लेने पर अजान देने का रिवाज नहीं है। जन्म से इस भेद–भाव के साथ ही बचपन और किशोरावस्था की विषमताएं शुरू होती हैं। मुख्य रूप से लड़कियों के शरीर और मन का घर के काम–काज में लगाने के लिए ही यह व्यवस्था की गई थी।

आज की नारी शिक्षित और अपने अधिकारों के प्रति सजग है। अतः प्रश्न उठता है कि फिर नारी पुरुष की तरह स्वतंत्र क्यों नहीं है? ममता कालिया के अनुसार ''नारी को अपने जीवन से जड़ता को निकाल फेंकना होगा। उनके अनुसार आज महज इतना कि जीवन से जड़ता को निकाल फेंकना उतना ही जरूरी है

जितना रसोई से तिलचट्टे निकाल फेंकना।''[33] आज की चिंतनधारा के अनुसार जो नारी अपने अधिकार की बात नहीं समझती वे बहुत बड़ी भूल करती हैं। क्या आज भी नारी इसलिए जन्म लेती है कि पढ़–लिख कर चिंतन भी न कर सके दो क्षण आराम से बैठ कर अपनी समस्याओं को न सोच सके। नारियों द्वारा मौलिक स्वतंत्रता की पूर्णता संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता है।

महिला अधिकारों की विभिन्न देशों में स्थिति

महिला अधिकारों के हनन के विभिन्न तरीके विभिन्न देशों में देखे जा सकते हैं। जैसे एशियाई देशों भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका में लड़कियों का पैदा होना अभिशाप माना जाता था। इन देशों में यह स्थिति नारियों के प्रति सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अपेक्षापूर्ण रवैया तथा पुत्र प्राप्ति की मानसिकता के कारण लंबे समय से चली आ रही है। अमेरिका में स्त्रियां सबसे अधिक यौन शोषण, मानसिक अत्याचार, बलात्कार का शिकार होती रही है। अधिकांश विकासशील देशों के परम्परागत समाज में नारियों को आर्थिक आत्मनिर्भरता से वंचित रखा जाता रहा है। वहाँ नारी की स्वतंत्रता को पारिवारिक जीवन के विघटन के रूप में देखा जाता है।

बांग्लादेश में सबसे ज्यादा लड़कियों की मौत गर्भ के समय, जन्म के बाद और दहेज के कारण होती है। श्रीलंका में नारियों को भोग की वस्तु समझा जाता रहा है।

आज विश्व के मुखर देशों में जो कि मानव अधिकार विकास की बात करते हैं, जिसमें पश्चिमी यूरोप व अमेरिकन देश है, नारियों के प्रति इन देशों में अनुदार दृष्टिकोण ही हावी रहा है। अमेरिका ने अपने स्वतंत्रता के संदेश में यह बात सर्वप्रथम स्वीकार की थी कि ''मनुष्य स्वतंत्र व समान पैदा हुआ है'' किन्तु उसी अमेरिका ने नारियों को अस्सी वर्ष बाद मत देने का राजनीतिक अधिकार दिया।

विश्व के सम्मुख प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का अनूठा उदाहरण पेश करने वाले स्विट्जरलैण्ड ने 1971 में नारियों को मताधिकार दिया।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व स्तर पर नारियों की स्थिति को ऊपर उठाने की दिशा में विश्व स्तरीय प्रयास किये गये तथा नारी स्वतंत्रता, सहभागिता, शक्तिवाद, मुक्ति की बात की गई। इससे एक उत्तर औपनिवेशिकता की विवधता से युक्त विश्व का उदय हुआ। इसके बाद भी केवल इकतीस देशों ने नारियों को मतदान का अधिकार दिया। ब्रिटेन जैसे देश में 1948 में नारियों को मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ। नारी को अधिकार देकर शक्तिशाली बनाने की बात का प्रारंभ U.N.O. ने किया। इस दिशा में पहल करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1946 में 'संयुक्त राष्ट्र महिला हैसियत आयोग' की स्थापना की।

विश्व पटल पर आज राजनीतिक उपनिवेशवाद का पटाक्षेप हो रहा है और उसके स्थान पर आर्थिक उपनिवेशवाद अपनी जड़े मजबूत कर रहा है, भारत भी इस स्थिति से अछूता नहीं है। तब प्रश्न यह उठता है कि नारियों को अधिकार कैसे और कब दिये जाये तथा कितनी हद तक दिये जायें ? इस पर भी मतैक्य की स्थिति नहीं है। आज का परिवेश बताता है कि शिक्षा व नियोजन के क्षेत्र में नारियों का जो पिछड़ापन है, राजनीतिक आरक्षण के लिए जो अवरोध है, वे पुरुष की संकीर्ण मानसिकता के कारण है।

नारियों को सशक्तिकृत करने की दिशा में उनको आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करना एक महती आवश्यकता है, क्योंकि जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा होने के कारण किसी भी देश की आर्थिक संरचना को वे प्रभावित करती हैं। नारियों की क्षमताओं को पूर्ण विकसित किए बिना किसी भी आर्थिक व्यवस्था का विकास संभव नहीं है और राष्ट्रीय विकास भी तब तक अपूर्ण है, जब तक उसमें नारियों का विकास और विकास का लाभ नारियों तक पहुँचाने की व्यवस्था नहीं हो। तृतीय

विश्व के देशों की कमजोर आर्थिक स्थिति और विश्व–अर्थव्यवस्था में उनकी स्तरीय अवस्थिति महिला के प्रति भेदभाव को और बढ़ावा देती है।

समाज की आधारशिला वस्तुतः आदर्श जीवन व्यवस्था पर आधारित है। यह व्यवस्था नैतिक व्यवस्था कहलाती है, जो वास्तविकता के धरातल पर मानव हिताय सम्यक व्यवस्था होनी चाहिये। उसके आधार पर विधान बनाकर अपना संचालन करता है। इस आदर्श व्यवस्था के नैतिक संविधान के कारण जो सामाजिक व्यवस्था बनी उसके अनुसार जीवन जीना चाहिये था, किन्तु सशक्त मानव समुदाय ने ऐसा होने दिया और अधिकारों का केन्द्रीकरण कर लिया।

मूलतः मानवाधिकार की अवधारणा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को घोषित उस सार्वभौमिक घोषणा पत्र से संबंधित है जिसमें सम्पूर्ण विश्व के समस्त राष्ट्रों के प्रत्येक नागरिक को सम्मानपूर्वक जीवन यापन करने का अधिकार दिया गया । इसके अन्तर्गत जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, जन्म अथवा अन्य किसी प्रकार के भेदभाव के बिना सभी व्यक्तियों को जीवन जीने का अधिकार व स्वतंत्रता दी गई है। अधिकाधिक तौर पर संयुक्त राष्ट्र ने 1948 में जो मानवाधिकार की घोषणा की जिसे हासिल करने के लिए सदियों से संघर्ष चल रहा था। दासता, नस्ल, उपनिवेशवाद के विरुद्ध और मानव द्वारा श्रेष्ठ तथा सभ्य अस्तित्व को बनाये रखने के लिए अधिकारों हेतु संघर्ष जारी रहा। मानवाधिकार बीसवीं सदी में दिया गया नाम है जिसकी आधुनिक संकल्पना 1945 के अंत में प्रकट हुई।

यद्यपि मानवाधिकार पुरुष व महिला दोनों वर्गों की दृष्टि से एक ही हैं, नारियों के परिपेक्ष्य में मानवाधिकारों का प्रश्न इसलिये अलग से विचारणीय और महत्त्पूर्ण हो जाता है कि पुरुषसत्तात्मक विश्व में लिंग भेद की परम्परा सदियों से चली आ रही है। वस्तुतः मानव जगत में यदि कोई सबसे प्राचीन असमानता अथवा विभाजक रेखा है तो वह लिंग भेद ही है। जाति, धर्म, सम्प्रदाय, रंग आदि सभी विभाजक तथा भेदभावात्मक प्रक्रियाओं का जन्म इसके बाद ही हुआ है। लिंग भेद

की अवधारणा ने मानव जीवन को दो ध्रुवों में बाँटकर स्त्री व पुरुष को परस्पर पूरक होने का अवसर न देकर स्त्री को पुरुष का अनुगामी घोषित किया।

मानव सभ्यता के विकास, साम्यवाद एवं समाजवाद की अवधारणा की व्यापक स्वीकृति, शिक्षा एवं विज्ञान के प्रचार–प्रसार के द्वारा बीसवीं शताब्दी में महिलाओं की समानता तथा भूमिका के मुद्दे पर जागृति के स्वर लगभग प्रत्येक देश में उठे हैं। धर्म, राजनीति व सत्ता सभी महत्त्वपूर्ण बुनियादी पक्षों को इस सदी में यह स्वीकारना पड़ा है कि महिला का स्थान पुरुष के समान है और कोई भी ऐसा अधिकार, कानून या विधान नहीं हो सकता जो लिंग भेद के आधार पर स्त्रियों को द्वितीय श्रेणी का नागरिक करार दे सके। नारियों के मानव अधिकार सर्वव्यापी मानव अधिकारों के अभिन्न अंतरंग और अविभाज्य अंग है। इनको मानव अधिकार के मुद्दों से पृथक, विभाजित या अलग नहीं किया जा सकता। नारियों के मानव अधिकार अभिन्न और अविभाज्य है क्योंकि महिलाएं, महिलाएं होने के नाते और मानव होने के नाते, भेदभाव विशिष्ट रूप में और समान तौर से संसार की विभिन्न जनसंख्या का अंग होने के नाते हर क्षेत्र के मानवाधिकार के मुद्दों से प्रभावित होती हैं। नारियों द्वारा मौलिक स्वतंत्रता की पूर्णता संयुक्त राष्ट्र की प्राथमिकता है। अतः संयुक्त राष्ट्र ने महिला अधिकारों हेतु अनेक उपबंध किये हैं–

संयुक्त राष्ट्र एवं महिला अधिकार

संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के प्रस्तावना में कहा गया है कि ''हम संयुक्त राष्ट्रों के लोग मूलभूत मानवाधिकारों में मानव की गरिमा और महत्त्व व मूल्य में तथा स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं। साथ ही चार्टर में नारियों की समानता के अधिकार की घोषणा की गई। मानवाधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा पत्र 1948 को सभी सदस्य राष्ट्रों द्वारा इसका सम्मान करने के लिए बाध्य किया गया। घोषणा पत्र के अनुच्छेद–दो के अन्तर्गत– प्रत्येक घोषणा पत्र में तय किये गये अधिकारों और स्वतंत्रता हेतु अधिकृत है। बिना प्रजाति, रंग, भाषा, धर्म,

सामाजिक उद्‌भव, सम्पत्ति के आधार पर विभेद नहीं किया जायेगा।'' इस प्रकार पत्र में नारियों को बिना भेदभाव के अधिकारों की प्राप्ति का अधिकारी माना गया।

अनुच्छेद–16(1) के अनुसार वयस्क पुरुष व स्त्रियों को मूलवंश, राष्ट्रीयता या धर्म के कारण किसी भी सीमा के बिना विवाह करने और कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार हैं इसके माध्यम से नारियों को अपनी पसन्द एवं इच्छा के अनुसार विवाह करने का अधिकार प्राप्त होता है। विवाह करने एवं परिवार स्थापित करने में, धर्म एवं राष्ट्रीयता के बन्धन को तोड़ देने के कारण ही नारियों को अन्तर्जातीय विवाह करने एवं अपना मन पसन्द जीवन साथी चुनने का अधिकार प्राप्त होता है जो कि सभी मनुष्यों को प्राप्त होता है।

अनुच्छेद–23(2) के अन्तर्गत बिना भेदभाव के समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है अर्थात् समान कार्य के लिए स्त्रियां एवं पुरुष दोनों को समान वेतन दिया जाना अनिवार्य कर दिया गया है।

अनुच्छेद–26(1) के अनुसार सभी व्यक्तियों को शिक्षा पाने का अधिकार है। महिला शिक्षा का प्रतिशत जो कि विश्व के सभी देशों में पुरुषों की अपेक्षा बहुत कम रहा है। इस कमी को दूर करने के लिए ही मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा में यह प्रावधान किया गया है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएँ एवं महिला अधिकार

''सिविल और राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय करार'' 1966 का अनुच्छेद–2(1) के अनुसार सभी राज्य अपने क्षेत्र में इस करार में स्वीकृत अधिकारों को बिना प्रजाति रंग, लिंग, भाषा, धर्म के आधार पर बिना भेदभाव अधिकारों का सम्मान और सुनिश्चित करने का वचन देता है। अनुच्छेद–3 के अनुसार करार में दिये गये सभी सिविल और राजनीतिक अधिकारों का लाभ उठाने के लिए पुरुष व

स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त होंगे। इसी प्रकार का प्रावधान आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय करार में भी किया गया है।

महिला अधिकारों के विशेष प्रावधान

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकार घोषणा पत्र में अधिकार संरक्षण और संवर्धन के उद्देश्यों को स्पष्ट कर स्त्री–पुरुष दोनों को एक पूर्ण इकाई मानकर अग्रिम विकास का श्रीगणेश किया। नारियों के अधिकार के प्रश्न को सुलझाने हेतु संयुक्त राष्ट्र को एक महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करना था। इस दिशा में पहल करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ ने CSW की स्थापना की।

महिला हैसियत आयोग (CSW) 1946

महिलाओं के प्रश्न पर लोगों को जागृत करने के लिए और राजनीतिक विचार विमर्श की ओर अग्रसर करने के लिए व महिला हितों के रक्षार्थ CSW की स्थापना की। आयोग ने प्रत्येक व्यक्ति को घोषणा पत्र में प्रकाशित समस्त अधिकारों व स्वतंत्रताओं के बिना किसी भेदभाव के अधिकृत करते हुए सभी को समान अधिकार दिया। नारियों के राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को बढ़ावा देने तथा नारियों के लिए विश्वव्यापी नीतियों का निर्माण करने हेतु व नारियों को उन्नति और विकास के उचित अवसर देने के लिए आयोग ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आयोग ने समस्त विश्व में नारियों की स्थिति के संबंध में आँकड़े एकत्रित किए तथा सार्वभौम मानव अधिकार उद्घोषणा का मसौदा तैयार करने में मदद की। तथा वैधानिक दृष्टि से नारियों को 'स्पष्ट समानता' प्राप्त हो। इसके अतिरिक्त शारीरिक व्यापार और वेश्यावृति को दबाने के लिये 1949 में भी नीति का निर्माण किया गया।

1952 में नारियों के राजनीतिक अधिकारों पर आम सभा में समझौता हुआ जिसमें कानून के अन्तर्गत समान राजनीतिक अधिकारों का प्रथम विश्वव्यापी

अनुमोदन किया गया। 1957 में शादीशुदा नारियों की राष्ट्रीयता के संबंध में करार घोषित किया गया।

1967 में अंगीकृत ''नारियों के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन की उद्‌घोषणा''[34] नारियों के विषय में आरंभिक और दूरगामी उपलब्धि थी। इसके अन्तर्गत जीवन और कानून में नारियों के लिए समानता का आह्वान किया गया और समानता की संकल्पना को नागरिक और राजनीतिक क्षेत्रों से परे अधिकारों के लिए विस्तृत किया जैसे– शिक्षा, रोजगार के अवसर तथा स्वास्थ्य की देखभाल। साथ ही साथ विवाह या विवाह विच्छेद, शैक्षणिक या व्यवसायिक, किसी भी क्षेत्र में महिला–पुरुष में भेदभाव वर्जित है।

इसी क्रम में 1970 में पुनः प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें घोषणा की गई कि 'नारियों के उत्थान में विकास के सभी साधनों का प्रयोग किया जाए।'

महिलाएं एवं अंतर्राष्ट्रीय वर्ष व दशक की घोषणा

नारियों के विकास के संदर्भ में सम्पूर्ण विश्व में नारी उत्थान और विकास के प्रति चेतना जगाने के लिए महासभा ने 18 दिसम्बर 1972 की बैठक में 1975 को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' घोषित करने के लिए निर्णय किया गया। इसके तीन उद्देश्य स्पष्ट किये–

1. पुरुष और नारियों को समानता का दर्जा देना।
2. विकास कार्यों में स्त्रियों का योगदान।
3. विश्व शांति स्थापना की दिशा में महिला सहयोग प्राप्त करना।

अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष को 'ट्रिब्यून' के नाम से जाना जाता है। इसमें प्रथम विश्व कार्य योजना बनाई गई और महिला समानता विकास तथा शांति के लिए प्रथम

दशक (1975–1984) की घोषणा की। महिला वर्ष के कार्यक्रमों को नवीन दिशा और सहयोग के बिन्दु पर बल देते हुए इसके निम्न कार्यक्रम बनाए गए–

1. सामाजिक अन्याय समाप्त होना चाहिये।
2. नारियों को द्वितीय श्रेणी का मानव न समझकर एक समान मानव समझना चाहिये।
3. देश व समाज के निर्माण में नारियों की अधिकाधिक साझेदारी।
4. विश्व शांति में नारियों की अधिकाधिक साझेदारी सुनिश्चित हो तथा महिला विकास व सहयोग की अपेक्षा की जानी चाहिये।
5. नारियों के समान वैधानिकता को समान सामाजिक दर्जे में बदला जाना चाहिये।
6. नारी के साथ जन्मजात, जातिगत, धर्म राष्ट्रगत भेदभाव नहीं होना चाहिये।

अतः महिला के व्यक्तित्व विकास में सकारात्मक, रचनात्मक जीवन शैली, दिशा तथा दृष्टिकोण बदलने में शिक्षा महत्वपूर्ण साधन है। इस तथ्यों पर 1975 में सर्वाधिक बल दिया गया।

महिला अधिकारों से संबंधित घोषणा

1967 में अंगीकृत उद्घोषणा के घोषणा पत्र के सिद्धांत के बाद एक अनिवार्य अन्तर्राष्ट्रीय समझौता 1979 में आम सभा द्वारा अपनाया गया जिसे 'नारियों के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन उद्घोषणा' के नाम से जाना जाता है। इसमें प्रस्तावना तथा 30 धाराएँ हैं। यह समझौता विश्व व्यापी मानव अधिकार दस्तावेजों में सबसे आधुनिक है और व्यक्ति व समूह के प्रति अन्तर्राष्ट्रीय नियमों को परिभाषित करता है। यह समझौता परिभाषित करता है कि नारियों के विरुद्ध

भेदभाव किससे निर्मित होता है और इस प्रकार के विभेद को मिटाने के लिए कार्यसूची तैयार करता है। अनुच्छेद–1 के अनुसार 'नारियों के विरुद्ध भेदभाव' मानव अधिकार और आर्थिक, सामाजिक, नागरिक, राजनीतिक या अन्य किसी क्षेत्र में मौलिक स्वतंत्रताओं का उल्लंघन है। यह पुरुष महिला समानता पर आधारित है। समझौते को मान्यता देते हुए विश्व के स्वाधीन देशों ने नारियों पर होने वाले भेदभाव को समाप्त करने के लिए सहमति व्यक्त की–

* नारियों को राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन, शिक्षा और रोजगार में समानता तथा अवसर की सुनिश्चितता कराने का आधार प्रदान करता है।

* नारियों के संतानोत्पत्ति अधिकार स्वयं की और उनके बच्चों के लिए राष्ट्रीयता प्राप्त करने, बदलने की स्वीकृति देता है।

* स्वतंत्र राष्ट्र नारियों के देह व्यापार और उत्पीड़न के समस्त स्वरूपों के विरुद्ध कदम उठाने पर सहमति देता है।

* राष्ट्र विधान सहित सभी उपायों पर सहमत है जिससे महिलाएं अपने समस्त मानवाधिकारों और स्वतंत्रताओं को प्राप्त कर सके।

अनुच्छेद–18 व्यवस्था करता है कि जिन्होंने समझौते को माना है वे कानूनी रूप में इसके विधानों को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध है तथा संधि के अनुरूप कार्य करने के लिए किये गये उपायों पर राष्ट्रीय रिपोर्ट चार साल में कम से कम एक बार अवश्य प्रस्तुत करेंगे। यह समझौता 3 सितम्बर 1981 को प्रवृत्त हुआ।''[35]

महिलाएं तथा विश्व मानवाधिकार सम्मेलन 1993

नारियों के मानवाधिकार की दिशा में दूसरा चरण 1993 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अपनाया गया नारियों के विरुद्ध हिंसा की समाप्ति पर घोषणा पत्र है। 1993 में वियना में हुए विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में उन सभी मानवाधिकारों की पुनः

पुष्टि की जो 1948 के घोषणा पत्र में शामिल है। 25 जून 1993 को, 171 राज्यों के प्रतिनिधियों ने सर्वसम्मति से मानवाधिकार पर विश्व सम्मेलन के लिए कार्य योजना और वियना उद्घोषणा को अपनाया। इसके अन्तर्गत नारियों और बच्चों के मानव अधिकार सार्वभौमिक मानव अधिकारों का एक अभिन्न, आंतरिक और अविभाज्य अंग है। राष्ट्रीय, क्षेत्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर राजनीतिक, नागरिक, आर्थिक और सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में नारियों की पूर्ण और समान भागीदारी, स्त्री–पुरुष के आधार पर हर प्रकार के भेदभाव का उन्मूलन, अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के प्राथमिक उद्देश्य हैं। भेदभावपरक हिंसा, हर प्रकार का यौन दुर्व्यवहार और उत्पीड़न, सांस्कृतिक पक्षपातों और अंतर्राष्ट्रीय देह–व्यापार का उन्मूलन होना चाहिये। नारियों के मानव अधिकार संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार गतिविधियों का, अभिन्न हिस्सा होना चाहिये। मानवाधिकारों पर हुए विश्व सम्मेलन में सरकारों, संस्थाओं, अन्तर–सरकारी और गैर सरकारी संगठनों से नारियों और बच्चियों के मानवाधिकारों की संरक्षण और संवर्धन के प्रयासों को तेज करने का आह्वान किया गया।

विश्व मानवाधिकार सम्मेलन में एक नई व्यवस्था बनाई जो नारियों के विरुद्ध हिंसा पर रिपोर्ट करने के लिए एक रिपोर्टकर्ता की नियुक्ति की गई और नारियों के अधिकारों की उन्नति और रक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कदम उठाया तथा हिंसा के उन्मूलन पर घोषणा पत्र अपनाया गया। इसके अनुसार हिंसा का अर्थ भेदभावपरक हिंसा के उस कार्य से है जिसका परिणाम नारियों को शारीरिक, मनोवैज्ञानिक कष्ट हो। घोषणा पत्र में 6 अनुच्छेद शामिल हैं। इसके अनुसार नारियों को किसी कार्य की धमकी, क्रूरता चाहे वह सार्वजनिक जीवन में या निजी जीवन में नहीं दी जा सकती है।

1994 में काहिरा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय जनसंख्या और विकास सम्मेलन में नारियों के संतानोत्पत्ति अधिकार और विकास के अधिकार की पुनर्पुष्टि की गई।

विश्व में 1990 से 2000 का दशक महिला दशक के रूप में मनाया गया तथा 8 मार्च को सारी दुनिया में महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है।

महिला अधिकारों की जागृति हेतु किये गये प्रयास

यह सत्य है कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला के समुचित विकास पर संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय किया ताकि महिलाएं स्वयं के विकास के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त कर सके तथा नीति–निर्धारण में उनके विचारों को प्रमुखता दी जा सके। इस परम्परा में अभी तक विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हो चुके हैं।

1. प्रथम विश्व महिला सम्मेलन 1975 मैक्सिको
2. दूसरा विश्व महिला सम्मेलन 1980 कोपेनहेगन
3. तीसरा विश्व महिला सम्मेलन 1985 नैरोबी
4. चौथा विश्व महिला सम्मेलन 1995 बीजिंग (पेइचिंग)

मैक्सिकों सम्मेलन– वर्ष 1975 में 19 जून से 2 जुलाई तक प्रथम अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन प्रथम प्रयास के रूप में महिला कल्याण हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ ने आयोजित किया और 1975 से 1984 दशक घोषित किया। नारियों के लिए इसमें पंचवर्षीय योजना बनाई गई जिसमें निम्नलिखित बातों पर बल दिया गया–

* स्त्री शिक्षा पर बल
* लिंग भेदभाव मिटाना
* नारियों के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाना
* नीति–निर्धारण में नारियों को शामिल करना
* समान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, नागरिक अधिकार देने की

घोषणा करना शामिल है।

इस सम्मेलन में संघ के 133 सदस्य राज्य से प्रतिनिधि मंडलों ने हिस्सा लिया तथा अलग से 6000 गैर सरकारी संगठन के प्रतिनिधि भी एकत्रित हुए। इस सम्मेलन में 75 से 85 के दशक के लिए विश्व योजना बनाई तथा नारियों के विकास हेतु दिशा निर्देश तय किये। सम्मेलन की समाप्ति पर विश्व कार्य योजना बनाई गई जिसे मैक्सिको उद्घोषणा के नाम से जाना जाता है। इसमें मुख्य रूप से समानता, भागीदारी और विश्व शांति में योगदान मुख्य उद्देश्य थे। सम्मेलन का प्रमुख आधार था कि महिलाएं न केवल राजनीतिक और वैधानिक क्षेत्र में बल्कि घरेलू और पारिवारिक स्तर में भी पुरुषों के समान हैं। इसके तहत दो ऐजेन्सी बनाने का निर्णय लिया गया–

(a) **संयुक्त राष्ट्रीय विकास फण्ड**– इसकी स्थापना 1976 में महासभा द्वारा की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य नारियों को विकास कार्यक्रम में भागीदारी बनाना था।

(b) **अंतर्राष्ट्रीय शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान**– नारियों के उत्थान हेतु 1975 में महासभा द्वारा इसकी सिफारिश की। इसका प्रमुख उद्देश्य नारियों से संबंधित समस्याओं का शोध करना था।

कोपेनहेगन सम्मेलन– वर्ष 1980 में द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन कोपेनहेगन में 14 जुलाई से 31 जुलाई तक आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में निम्न लक्ष्य रखे गये –

* राजनीति व निर्णय प्रक्रिया में नारियों को कानूनन भागीदारी।
* नारियों के लिए ऐसे कार्यालय कक्ष या आयोग बनाना जो नारियों से संबंधित है।
* सरकारी और गैर सरकारी संगठन में सहयोग स्थापित करना।

* सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए सभी को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी सेवाएं उपलब्ध कराना।
* शिक्षा और प्रशिक्षण में सभी को समानता का दर्जा देना।
* रोजगार के संदर्भ में समानता।

इस सम्मेलन में मैक्सिको सम्मेलन के परिणामों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करते हुए माना कि नारियों की प्रतिष्ठा में सुधार लाने के लिए राजनीतिक इच्छा शक्ति की कमी है तथा नारियों की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया जा रहा तथा बहुत कम महिलाएं निर्णय लेने के पद पर विराजमान है। अतः इस सम्मेलन में जोर दिया गया कि उक्त लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उचित वातावरण तैयार किया जाये।

नैरोबी सम्मेलन– नैरोबी में 1985 में 15 से 26 जुलाई के बीच तीसरा विश्व महिला सम्मेलन आयोजित हुआ। इस सम्मेलन में 124 देशों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि महिला दशक में निश्चित किए गए लक्ष्यों को प्राप्त करने में आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई तथा यह तथ्य प्रत्यक्ष रूप से सामने आया कि अभी भी नारियों का दर्जा पुरुषों की अपेक्षा निम्न है।

इस सम्मेलन में महिला विकास के लिए प्रगतिशील रणनीति तैयार की गई तथा मैक्सिको कार्य–योजना में सुधार किया गया। विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर समानता स्थापित करना प्रमुख रणनीति के रूप में शामिल किया गया तथा प्रत्येक देश को अपनी विकासात्मक नीतियों के अनुसार अपनी प्राथमिकताएं तय करने का अधिकार दिया गया।

बीजिंग सम्मेलन– बीजिंग में 1995 में 4 से 15 सितम्बर तक चौथा विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त

गैर सरकारी संगठनों ने भी भाग लिया। इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के 185 सदस्य देशों ने भाग लिया। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित निर्धारित किये गये–

* नारियों को समर्थ बनाने के लिए योजनाएं बनाना।
* प्रतिनिधि मंडलों की प्रगतिशील उपलब्धियों का पुनरावलोकन करना।
* ऐसी कार्य योजना की रूपरेखा बनाना जिससे प्रगतिशील नीतियों का क्रियान्वयन किया जा सके।
* इक्कीसवीं शताब्दी की वैज्ञानिक, तकनीकी, आर्थिक और सामाजिक विकास संबंधी आवश्यकताओं का सामना करने के लिए साधन उपलब्ध कराना।
* ऐसी सामाजिक स्थिति का निर्माण करना जिसमें नारियों की प्रगति को प्रोत्साहन मिले।

इसके आतिरिक्त सम्मेलन में संभावना व्यक्त की गई कि विकासशील देशों में अंतर्राष्ट्रीय दबाव के कारण अपनायी जा रही नीतियों में जनसंख्या नीति, घरेलू जीवन में नारियों की स्थिति में सुधार आदि पर भी प्रभाव पड़ेगा। सम्मेलन में अगले पन्द्रह वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय समुदाय द्वारा किये जाने वाले बारह प्राथमिकता वाले क्षेत्रों की घोषणा की गई। ये बारह क्षेत्र इस प्रकार है–

1. गरीबी से उभरने में महिला की सहायता करना।
2. स्वास्थ्य रक्षा का स्तर सुधारना।
3. हिंसा को समाप्त करना।
4. स्तरीय शिक्षा सुनिश्चित करना।

5. महिला के मानवाधिकारों में वृद्धि करना।
6. राजनीति में नारियों को प्रोत्साहन देना।
7. सैन्य संघर्षों से नारियों की रक्षा करना।
8. पर्यावरण विकास में नारियों की भागीदारी।
9. सामाजिक नीति–निर्धारण में लिंग भेद समाप्त करना।
10. सूचना और संचार माध्यमों तक पहुँच में समानता।
11. अर्थ और संचार माध्यमों तक पहुँच में समानता।
12. बालिकाओं के विरुद्ध भेदभाव और दुर्व्यवहार समाप्त करना।

नई दिल्ली सम्मेलन 1997

इन सम्मेलन के अतिरिक्त 1997 में 29 सितम्बर से 1 अक्टूबर तक ''वीमेन्स पॉलिटिकल वाच'' नामक गैर सरकारी संगठन ने 'संयुक्त राष्ट्र संघ' और 'राष्ट्रीय महिला आयोग' के सहयोग से 'विश्व सांसद सम्मेलन' नई दिल्ली में आयोजित किया। इसका उद्देश्य नारियों की सत्ता में भागीदारी बढ़ाना था तथा इस भागीदारी को कैसे सुनिश्चित किया जाए और इसे कैसे उत्तरोत्तर बढ़ाया जाए?

इसी संदर्भ में 10 फरवरी से 14 फरवरी 1997 को भारत की राजधानी दिल्ली में अंतर संसदीय सम्मेलन व महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के संदर्भ में सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में अस्सी देशों के दो सौ पचास प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें स्त्री–पुरुष भेदभाव समाप्त करने और नारी को सत्ता में भागीदारी देने की वकालत की गई।

महिला अधिकारों हेतु विभिन्न देशों द्वारा समय–समय पर किये गये प्रयास

आज वर्तमान समय में विश्व में नारियों के समुचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण बनता जा रहा है। इसी आधार पर इक्कीसवीं शताब्दी को नारियों की

शताब्दी के नाम से भी पुकारा जाने लगा है। चाहे विकसित देश हो या विकासशील महिलाएं पुरुषों के साथ कदम मिलाकर अपनी अन्तर्निहित क्षमता व आत्मविश्वास और साहस के साथ पुरुष प्रधान समाज में अपने अस्तित्व हेतु सफल प्रयास कर रही है। नारियों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति में सुधार करने के लिए विश्व में सभी जगह प्रयास किये जा रहे हैं। इसी संदर्भ में रूस में 1993 में ''वीमेन ऑफ एशिया'' नामक राजनीतिक संगठन बनाया गया। 1997 में बोरिस येल्तसिन नारियों को राजनीति तथा प्रशासन में अधिक प्रतिनिधित्व के लिए अध्यादेश जारी किया गया। हमेशा से नारियों के लिए राजनीति और प्रशासन ने, प्रतिबंध लगाने वाले देश ईरान ने भी अमेरिका, कनाडा में सर्वेक्षण के अनुसार महिलाएं अच्छी अधिकारी सिद्ध पाई गई। जापान में भी नारियों की स्थिति सुदृढ़ करने हेतु तथा सभी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी में वृद्धि करने के प्रयत्न किये गए। यद्यपि नारियों को प्रशासन और राजनीति में समान अधिकार प्रदान करने के पहले प्रयास फ्रांस, ब्रिटेन, जापान आदि देशों में शुरू किये गये परंतु अब यह लगभग विश्वव्यापी है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला अधिकारों के विकास से सम्बन्धित घटनाक्रम—

1611 में संयुक्त राज्य अमेरिका के मैसाच्युसेट्स राज्य में नारियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1780, संयुक्त राज्य अमेरिका मैसाच्युसेट्स राज्य में नारियों को वोट देने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1788, फ्रांस में फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ कांडसैंट ने नारियों को शिक्षा, नौकरी प्रदान करने तथा राजनीति में भाग लेने की स्वीकृति की मांग की थी। 1840, संयुक्त राज्य अमेरिका में लुक्रीशिया ने ईक्वल राइट एसोसिएशन अर्थात् 'समान अधिकार संगठन' की स्थापना करके अन्य नारियों की भाँति नेग्रो नारियों के समान अधिकारों की जोरदार मांग की थी। 1840, संयुक्त राज्य अमेरिका लुक्रीशिया ने ईक्वल राइट एसोसिएशन अर्थात् 'समान अधिकार संगठन' की स्थापना करके अन्य नारियों की भाँति नेग्रो नारियों के समान अधिकारों

की जोरदार मांग की थी। 1857, संयुक्त राज्य अमेरिका ने 8 मार्च, 1857 को न्यूयार्क के सिलाई उद्योग और वस्त्र उद्योग में कार्यरत नारियों ने पुरुषों के समान वेतन एवं दस घंटे के कार्य दिवस के निर्धारण हेतु हड़ताल की थी। इसी दिवस को विश्व भर में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। 1859, सोवियत संघ के सेंट पीटर्सबर्ग में महिला मुक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था। 1869, संयुक्त राज्य अमेरिका, में 'राष्ट्रीय महिला मताधिकार संगठन' की स्थापना की गई। 1882, फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक विक्टर ह्यूगो के संरक्षण में महिला अधिकार संगठन की स्थापना की गई। 1893, न्यूजीलैण्ड यहाँ नारियों को पहली बार मत देने का अधिकार दिया गया। 1904, न्यूजीलैण्ड यहाँ नारियों को पहली बार मत देने का अधिकार दिया गया। 1904, संयुक्त राज्य अमेरिका में 'इन्टरनेशनल वीमेन्स राइट एलाइन्स' अर्थात् अंतर्राष्ट्रीय महिला मताधिकार समिति की स्थापना की गई। 1906, फिनलैण्ड यहाँ पहली बार नारियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। 1908, ब्रिटेन 'वीमेन्स फ्रीडम लीग' अर्थात् महिला मुक्ति संगठन की ब्रिटेन में स्थापना हुई। 1911, जापान में पहला महिला मुक्ति आंदोलन प्रारंभ हुआ। 1912, चीन नारियों की मताधिकार की मांग को लेकर नानकिंग में कई महिला संगठनों की जोरदार बहस हुई। 1913, नार्वे यहाँ नारियों को प्रथम बार मताधिकार दिया गया। 1913 आस्ट्रेलिया व डेनमार्क में प्रथम महिला दिवस मनाया गया। 1936, फ्रांस (1) नारियों को पहली बार फ्रांस में मताधिकार दिया गया। (2) नोबेल पुरस्कार से सम्मानित मैडम क्यूरी सहित तीन महिलाएं पहली बार फ्रांस में मंत्री बनीं। 1945, इटली नारियों को इटली में मताधिकार दिया गया। 1951, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने नारियों को पुरुषों के समान वेतन दिलाने हेतु समान श्रम के लिए समान वेतन संबंधी नियम पारित किया। 1952, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने भारी बहुमत से नारियों के राजनीतिक अधिकारों को नियम पारित किया। 1957, ट्यूनीशिया यहाँ स्त्री–पुरुष समानता का

कानून पास किया गया। 1959, श्रीलंका में विश्व की 'प्रथम महिला प्रधानमंत्री' के रूप में भंडारनायके चुनी गई।

1968, ईरान यहाँ नारियों को अपने पति की आज्ञा के बिना नौकरी का अधिकार प्रदान किया गया। 1975, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस वर्ष पूरे विश्व में अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। 1975, अंतर्राष्ट्रीय स्तर 'कोपेनहेगन' में 'पहला अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन' आयोजित किया गया। 1985 अंतर्राष्ट्रीय स्तर 'नैरोबी' में दूसरा अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। 1993, रूस 'वीमेन ऑफ एशिया' नामक राजनीतिक आंदोलन की नींव रखी गई और इस आंदोलन की 21 सदस्या 1993 के संसदीय चुनाव में विजयी हुई। 1993, भारत नारियों की सेना के साथ–साथ नौ–सेना और वायुसेना में भी नियुक्तियाँ की गई। 1995, चीन 'शंघाई' में तीसरा अंतर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन आयोजित किया गया। 1997, ईरान पहली बार चार महिला न्यायाधीशों की नियुक्तियाँ की गई।''[36] 2017, सउदी अरब पहली बार नारियों को कार चलाने की वैधानिक अनुमति मिली।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति सचेत एवं जागरुक बनी रहती हैं।

आत्मकथा लेखन और महिला अधिकार

महिलाओं की अपने अधिकारों के प्रति चेतना एवं जागरुकता आत्मकथा लेखन के रूप में मुखरित होने लगी। 'कस्तूरी कुंडल बसै' में मैत्रेयी जी सामाजिक कार्यकता के तौर पर कार्य भी करती रही है तथा महिलाओं के उत्थान, स्वावलम्बन के लिए उन्हें प्रेरणा देती रहती है। उनकी माँ जीवन के अन्तिम पड़ाव पर भी संघर्षरत है तथा मुख्यमंत्री के 'महिला मण्डल योजना' को खत्म करने के निर्णय के विरूद्ध आन्दोलन चलाती है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू जी आपातकाल की घोषणा तथा उसे सही ठहराने वालों के प्रति कठोर रवैया अपनाते हुए अपना विरोध प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार से सिक्ख दंगों के दर्दनाक मंजर को स्वयं देखकर द्रवित होकर उनकी सहायता हेतु जाकर सहयोग प्रदान कर उनकी भावनाओं तथा मानव द्वारा मानव पर किये जाने वाले अत्याचार को उजागर करती है।

नाट्य रूपान्तरण तथा धारावाहिकों की पठकथा द्वारा जन–आन्दोलन पर अपनी भावनाओं व विचारों को पहुँचाती हैं जिससे समाज नारी को सम्मान प्रदान कर सके तथा वह स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बन सके।

'अन्या से अनन्या' में प्रभा जी निर्यात का व्यापार प्रारम्भ कर पुरुष व्यवसाय की सत्ता व वर्चस्व को चुनौती प्रदान करती है तथा सफलता प्राप्त करती है। आत्मनिर्भरता तथा व्यवसाय की सफलता ने ही उन्हें मारवाड़ियों का नेतृत्व करने का मौका प्रदान किया।

अपना निर्णय अपने हाथ

''इस पार्टी में वह डॉ. सिद्धार्थ के साथ डांस करने लगती है तो पति की त्योरियां चढ़ जाती हैं। डॉ. सिद्धार्थ के प्रति मैत्रेयी का आकर्षण बढ़ता ही जाता है। अपने पक्ष में वे तर्क देती है– नाचना मेरी इच्छा का नतीजा था, मेरी अपनी इच्छा, नाचकर मैं उस 'गंवार' शब्द से शहरी हथियार का साहस के साथ सामना कर रही थी। जिसने अभी तक मुझे नीचा दिखाने के लिये अपना इस्तेमाल कराया है...मैंने अनुमति के लिये पति की ओर देखा नहीं। अपना निर्णय अपने हाथ में ले लिया। खतरों के बारे में सोचा नहीं।''[37]

उन्मुक्तता बनाम हठधर्मिता

मैत्रेयी में एक उन्मुक्तता है। जिस पर माँ और पति दोनों बंधन लगाने की फिराक में रहते हैं। मैत्रेयी भी हठधर्मिता से बाज नहीं आती है–''यदि कोई पति

पत्नी की कोमल भावनाओं को कुचलकर खत्म करता है तो पत्नी को पतिव्रत के नियमों का उल्लंघन हर हालत में करना होगा।'' नियंत्रण की कसावट उन्मुक्तता को और गति प्रदान करती है तभी मैत्रेयी लिखती है–''मेरा दिल प्रेम से लवरेज था और मुझे अपने हृदय को कसने की हिदायत दी। हृदयघट कसावट से तड़क गया। प्रेम रिसने लगा।''[38] आत्मकथा लेखिकाएं जब जीवन के खट्टे–मीठे अनुभव तथा सामाजिक परिवेश के साथ जुड़ती हैं तो उन्हें नित नये अनुभव दिखाई देते हैं जो उनकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति को प्रेरित करते हैं। सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष उनके दृष्टिकोण व आयाम को नवीनता प्रदान करती है जो लेखन के लिए आवश्यक भाग होता है। लेखक समाज की वास्तविकता तथा उसके वास्तविक आधार स्तम्भ को समझने की चेष्टा करता हुआ अपना दृष्टिकोण व विचारों को अभिव्यक्ति करता है।

लेखन समाज का प्रतिबिम्ब होता है। जन–आन्दोलन के दौरान अन्य नारियों के साथ होने वाली घटनाओं, अत्याचार, दुःख–दर्द में लेखिका स्वयं के अस्तित्व को ढूँढने तथा समानान्तर भावनाओं को समझने की कोशिश करती है जो उसके अर्न्तद्वन्द्व को उजागर करने की कोशिश करती है।

5.3 प्रतिरोध की स्थितियाँ और महिला आत्मकथा लेखन :

'कस्तूरी कुंडल बसै' में लेखिका तथा उनकी माँ के मध्य का संवाद विवादास्पद तथा द्वन्द्व की स्थितियों को बताता है। कस्तूरी द्वारा घर की भुखमरी की स्थिति को देखते हुए ब्याह न करने की केवल कहना ही उनका मर्यादा तोड़ना माना गया। परिवार के सभी सदस्यों द्वारा तीव्र आक्रोष व क्रोध उन्होंने देखा। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि घर की ऐसी स्थिति में भी कोई ब्याह करने की कैसे सोच सकता है कस्तूरी के पिता माँ को छोड़कर भाग गये तथा भाई भी भाग जाने की स्थिति में है। माँ उन्हें सतमासी मानती है तथा बेटी होने के दुःख को हमेशा जताती है।

कस्तूरी के पति द्वारा छोड़कर जाने तथा उसके विधवा हो जाने पर समाज की परवाह न करते हुए वह रेशमी वस्त्र व गहने पहनती है। अपनी जमीन की रक्षा के लिए स्वयं अपने को तैयार करती है।

कस्तूरी रोज–रोज का झोला लेकर मीरांबाई बनकर फिरती है। माँ उसका विरोध करती है। वह माँ को सबसे बड़ा दुश्मन मानती है। मायके का रिश्ता काट देती है। वह अपनी परम्परा से दूर जाती है। मैत्रेयी द्वारा संगीत की ओर रूझान का वह विरोध करती है। मैत्रेयी के कुछ बड़ी होने पर वह उसकी चोटी काट देती है इस समय मैत्रेयी माँ को दुश्मन समझती है। मैत्रेयी द्वारा बी.ए. में पढ़ते हुए सोलह साल की उम्र में ब्याह करने की कहना माँ के सपनों पर चोट करने जैसा था परन्तु कस्तूरी उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपहास में बदल देना चाहती है। माँ को उसकी साधारण गृहस्थी से चिढ़ हो रही है। माँ मैत्रेयी से कहती है, ''स्त्रीत्व माने स्त्री शक्ति तू उस स्त्री शक्ति को गंवाने पर तुली है, मुसीबत तो यही है''। कस्तूरी मैत्रेयी को नौकरी लगाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती है परन्तु मैत्रेयी ब्याह करना चाहती है। गाँव का मुखिया भी मैत्रेयी के विवाह की बात करता है परन्तु कस्तूरी उसका विरोध करती है। एक दिन दर्जी का बेटा मैत्रेयी को प्रेमपत्र लिखता है और माँ उसकी औकात बताकर उसका विरोध प्रकट करती है।

कस्तूरी दहेज न देने की कसम से बंधी होने पर समाज व परिवार का विरोध करती है तथा किसी की भी बात नहीं सुनती। शादी के ऐसे समय पर मैत्रेयी को उसकी माँ कस्तूरी थप्पड़ तक मार देती है ऐसे समय पर मैत्रेयी को माँ सबसे बड़ी दुश्मन लगती है। शादी के पश्चात् पति द्वारा उसका निरादर व तिरस्कार करने पर एक दिन वह उसका विरोध प्रदर्शन भी करती है क्योंकि जिस विवाह सुख की उसने कल्पना की थी। पति उसे उससे वंचित कर रहा था जिसके कारण पति–पत्नी के रिश्ते में प्रतिरोध की स्थिति बन गयी थी।

पति का शीत युद्ध

पति द्वारा मैत्रेयी पर थोपी गई आधुनिकता, दिखावटी और सीमित है। घर पर आये यूपीएससी के चैयरमेन से पत्नी को अभिवादन करने का भी अवसर नहीं दिया गया। रसोई में सिकुड़कर रहने को कहा गया। हिन्दी में एम.ए. के बाद मैत्रेयी ने पीएच.डी. उपाधि करने की सोची। वह डॉ. रेखा अग्रवाल से मिलने गई। उन्होंने गाइड ढूँढ़ देने का वादा किया। गाइड न दिला पाई तो 'लिग्विस्टिक' के कोर्स में प्रवेश लेने की सलाह दीं। उन्होंने फार्म भरा। इण्टरव्यू काल भी आया। लेकिन पति ने उसे छिपा दिया। पति ने अपना बचाव करते हुए कहा–''जानता हूँ कि मैं तुम मुझसे नाराज हो। पर इतना जरूर कहना चाहूँगा कि मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह तुम्हारे भले के लिए करता हूँ। तुम परेशान होती फिरोगी, मुझे चैन नहीं आयेगा।''[39]

जलकुक्कड़ आदमी की शिकार

मैत्रेयी घर–गृहस्थी के पिंजरे में बंद मैना–सी जिन्दगी नहीं जीना चाहती। वह उन्मुक्त होकर उड़ान भरना चाहती है। बाह्य जगत में अपनी क्षमताओं का विकास करना चाहती है। छात्र जीवन में वह निरन्तर सक्रिय रही है जो भी उनकी उड़ान में बाधा पैदा करना चाहता है। उससे मैत्रेयी की टकराहट होती है। आत्मकथा के इस भाग में पति निशाने पर है–''मेरा जीवन साथी, साथी के नाम पर जलकुक्कड़ आदमी है। दिशाओं में जब रंग बिखरने शुरू होते है, वह कालिख पोतने आ जाता है।''[40]

नारी उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध

पति–पत्नी के बीच इस द्वन्द्व को सही परिपेक्ष्य में समझने की जरूरत है। उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगने पर मैत्रेयी पति को जलकुक्कड़ के रूप में देखती है, लेकिन पति को चिन्ता है कि पुरुष नामधारी लेखकों, सम्पादकों के छल छद्म में फँसकर उसका शोषण न करे। पत्नी और सन्तान के प्रति इस

प्रकार की चिन्ता वाजिब है। छोटी बेटी सुजाता जब छोटी जाति के लड़के से विवाह करना चाहती है तो मैत्रेयी सोच विचार में पड़ जाती है और खुशी से स्वीकृति नहीं देती है। इसका कारण संतान के भविष्य की चिन्ता ही है।

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव ने इस कृति की समीक्षा में लिखा है कि ''गुड़िया भीतर गुड़िया रचना प्रक्रिया या संघर्ष के सफरनामें सरीखी कृति है। और सच झूठ का कोलाज है।''[41]

'मंगलसूत्र' एक घरमल्ल

समीक्षक ने इस कथन की जाँच पड़ताल न करते हुए उसे आत्मकथा से अधिक सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैत्रेयी विवाह संस्था और पति के खिलाफ बहुत कुछ लिखती है, जो कुछ लिखा गया है, उसे सत्य की कसौटी पर कसने की जरूरत है। मैत्रेयी विवाह संस्था, तत्सम्बन्धित परम्पराओं और पति के विरोध का चीत्कार फुत्कारपरक वर्णन करती है 'मंगलसूत्र' उसकी दृष्टि में 'घरमल्ल' है।''[42]

करवा चौथ पर सवालिया दृष्टि

अपनी मित्र इल्माना से वह कहती है–''हमें अपनी निष्ठा और प्रीति भरी वफादारी को भूखे रहकर निभाना होता है। करवा चौथ के साथ पति की उम्र का चक्कर तो बेकार लगा दिया है।''[43]

'एक कहानी–यह भी' में मन्नू भंडारी द्वारा अपने प्रेमी लेखन से की गई शादी के पश्चात् पत्नी होने पर भी पत्नी का सम्मान व दर्जा प्रदान न करना तथा अन्य के साथ संबंध को पत्नी जैसा सम्मान देना मन्नू जी के लिए असहनीय था।

जिसे जीवन समझा उसने ही जीवन अर्थहीन तथा महत्त्वहीन बना दिया। उन्होंने उसका प्रतिरोध भी करना चाहा परन्तु पुरुष की कायरतापूर्ण याचना उसके प्रेम पर भारी पड़ी। वह अपने ही निर्णय का स्वयं विरोध करती हुई कहती है कि

''क्या मेरी जिन रंगो में एक समय खून की जगह लावा बहा करता था, अब पानी बहने लगा है''? आपातकाल की घोषणा तथा विरोधी दंगों के समय धर्मवीर भारती की कविताओं तथा रघुवीर सहाय द्वारा आपातकाल का समर्थन करने पर लेखिका द्वारा उसका प्रतिरोध भी किया जाता है जो उनकी स्पष्टवादिता को व्यक्त करता है।

'अन्या से अनन्या' में मारवाड़ियों पर कोई व्यंग्य कहे जाते या अपशब्द कहे जाते तो वह उसका विरोध करती। नक्सलवाद के घटनाचक्र पर लेखिका द्वारा निर्दोष लोगों को मारा जाना, परम्पराओं को तोड़े जाने का विरोध किया।

'उत्पीड़न व जेल भरो नीति' का विरोध उनकी निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है–''रात–दिन कलकत्ता की सड़कों पर पिशाच लीला चलती रही और लोग घरों में दुबककर आँखों ही आँखों में रात बिताते। भय से कांपते रहते, न जाने कब क्या होगा।''

डॉ. सर्राफ के साथ जो जीवन अनुभवहीनता तथा यौवनारम्भ के आकर्षण के कारण जिया उसका प्रतिरोध वह इस प्रकार करती है– ''हिसाब लगाऊं तो एक महीने में चौबीस घंटे से अधिक समय में और डॉक्टर साथ नहीं रहते, फिर भी उनके प्रति कैसा पुर्निवार आकर्षण है जो खत्म नहीं हो रहा एवं ऐसा नहीं है कि मुझे उनसे कुछ नहीं मिला था, लेकिन उस कुछ के सहारे जिंदगी बिताना संभव नहीं था।

लेखिका अपनी पीड़ा व दर्द को प्रतिरोध स्वरूप इस प्रकार से व्यक्त करती है। लेखिका के अनुसार प्रेम तो भावनाओं से होता है देह से प्रेम करना तो पशु के समान है। उनके अनुसार मानसिक लगाव के लिए देह का होना आवश्यक नहीं इस प्रकार लेखिका अपनी मानसिक पीड़ा की अभिव्यक्ति करती है।

'मेरी कहानी' में मेरीकॉम को ऑनलर द्वारा शादी का प्रस्ताव दिया और मेरी के पिता द्वारा उस रिश्ते को ना कहा गया तो मेरी ने प्रतिरोध स्वरूप ऑनलर से कहा कि हम दोनों भाग चलते है परन्तु ऑनलर द्वारा मना कर दिया गया।

भारत का सबसे बडा खेल सम्मान प्रतिष्ठित राजीव गांधी खेल रत्न सम्मान की अर्जी खारिज होने पर उनकी प्रतिक्रिया इस प्रकार थी–''देश को यह यकीन दिलाने के लिए कि मैं इस सम्मान के योग्य हूँ, मुझे कितने और खिताब जीतने होंगे?''

2009 के जमशेदपुर के मुकाबले में हरियाणा की पिंकी को विजेता घोषित किया गया। 15–15 अंक बराबर होने पर इस निर्णय का उन्होंने विरोध भी किया जिसके कारण उन्हें निलम्बित भी किया गया।

मेरीकॉम की आत्मकथा में केवल कुछ ही प्रसंग इस प्रकार से है जो प्रतिरोध को व्यक्त करते हैं।

उपर्युक्त आत्मकथाओं में स्त्री द्वारा किये जाने वाले संघर्ष को दर्शाया गया है जो समाज में नारी की वास्तविकता को प्रकट करता है, इस प्रकार बिना किसी पुरुष के सहारे नारी ने अपने जीवन को एक नयी दिशा प्रदान कर मुकाम हासिल किया। अतः उनकी सृजनात्मकता, संवेदनाओं व भावनात्मक रूप से आत्मकथा के रूप में अभिव्यक्ति की गई।

5.4 शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन अनवरत अश्रुमोचन

मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती। क्या एक बूंद आँसू में स्त्री का सारा ब्रह्माण्ड समा जाये?

''क्यों?

किसलिए?

रोना और केवल रोना,

आँसुओं का समन्दर,

आँसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम।

अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ

क्या सभी रोने के लिए पैदा हुई।''[44]

यहाँ तक कि स्कूल की मेरी शिक्षिकाएँ जिनकी और कभी मैंने कभी बड़ी ललक से देखा था। जो मेरे जीवन में प्रेरणा स्रोत रही थी, वे भी तो आँसुओं से इसी समन्दर को भरे चली जा रही थी। स्कूल की हैडमिस्ट्रेस पुष्पमयी बसु को मैंने प्रायः उदास और दुःखी पाया। वे अकेली थी लेकिन मन्नू भण्डारी, जिन्होंने मुझे चौथी से ग्याहरवीं तक पढ़ाया, साहित्य की दुनिया में जिनके कदमों की छाप पर मैंने चलना चाहा वे भी कहाँ इन आँसुओं की नियति से मुक्त हो पा रही थी? राजेन्द्र यादव को उन्होंने जीवनसाथी के रूप में स्वीकारा था। लेकिन शादी के बाद एक दिन मन्नूजी ने रोते–रोते अपने पति परमेश्वर के कारनामें सुनाये। ऐसे दगाबाज आदमी पर मुझे बेहद गुस्सा आया था। अपनी इस माँ जैसी शिक्षिका को मैंने पहली बार रोते हुए देखा था। गलत पुरुष के हाथ पड़कर औरत कितनी असहाय हो जाती है, यह भी उसी दिन समझा था।''[45] ''मुझे लगता–स्त्री होना मात्र अम्मा की नजर में पाप है, एक हीन स्थिति है, गुलामों का जत्था है, जो बिना मालिक के जी नहीं पायेगा।''[46]

आत्महत्या के प्रयास तक

मुझे आज भी याद है। अम्मा की पानी पीने की एक काँच की केटली थी, बड़ी नफीस सी ... जो मेरे हाथों गिरकर टूट गई। उनका चिल्लाकर पूछना–

"अरे क्या तोड़ा?

और तब तक मैं भागकर पीछे वाले बरामदे में,

एकदम रेलिंग के ऊपर चढ़ गई।

रेलिंग के इस ओर एक पैर तथा दूसरा पैर उठने की तैयारी में।

मैंने नीचे झाँककर देखा।

पथरीली जमीन थी। मैं मर जाऊँगी।

अच्छा होगा...लेकिन मेरे मरने पर कौन रोयेगा?

केवल दाई माँ और शायद गीता और पुष्पा...नहीं किशन भी।

बाबूजी रहे नहीं और अम्मा, वे तो मेरे मरने पर बेहद खुश होगी।

बरामदे की रेलिंग पर बैठी एक पैर बाहर की ओर झुलाए हुए सोचे

चली जा रही थी।

अच्छा मैं जाऊँगी कहाँ? किस लोक में, क्या बाबूजी के पास?

बाबूजी तो स्वर्ग में है, और दाई माँ कहती है कि जो आत्महत्या करते

है,

वे ही प्रेत हो जाते है...आज सोचती हूँ कि कैसा अनाथ और असहाय

बचपन था।''[47]

"ऐसी परिस्थिति में मैं अपने ही बाल नोंचने लगती, चप्पलों से अपना सर पीटने लगती थी। उस वक्त मुझे अपने आपसे इतनी घृणा होती कि अपनी–अपनी चिन्दी बिखेर देना चाहती, चीखते हुए कहने लगती कि मैं मर क्यों नहीं जाती, खतम क्यों नहीं हो जाती।''[48]

हर कदम पर शारीरिक शोषण

'कस्तूरी कुडंल बसै' के निम्न दृष्टान्त शोषण के विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करते हैं, ''कस्तूरी के पिता माँ को भरी जवानी में छोड़कर भाग गया है। यह वह समय है जब इस देश पर अंग्रेजों का शासन था। गोरे जितनी जमीन उतनी सरकारी लगान वसूल करते थे। इसी कारण कस्तूरी के बाप भागे, भाई भी भाग जाने की हालत में है।

माँ कहती है कि भगवान क्यों जन्म देता लड़कियों को? लड़कियाँ पाप का फल होती है। ये फल विषफल होते हैं। जमींदार भी इसी तरह अन्याय अत्याचार करते रहते हैं। भाभी कहती है कि जवानी में औरत को रोटी–कपड़ा वहीं देता है जो उसके संग सोए।

लड़की खरीदी हुई घोड़ी से ज्यादा नहीं है, लड़की बेची हुई गाय होती है। ब्याह गौने के नाम पर खरीदने बेचने का धन्धा है। खेती नहीं हुई, तो बेटी काम आ जाती है। कस्तूरी को उसके पति ने आठ सौ रुपये में लिया था। यह रूपया जमींदार और साहूकार से लिए थे, जिनके डर से वह दिल्ली भाग गया था।

जाट के लड़के एदलसिंह पर चमार होने के कारण अन्याय, अत्याचार करते हैं। मैत्रेयी बताती है कि स्कूल के लिए जो लड़का जगदीश उसे साइकिल पर बैठाकर ले जाता है वह एक दिन पेड़ की छाया में आराम करने के लिए रुकते हैं। मैत्रेयी अचानक चौकती है, अरे ! लड़के का हाथ उसकी फ्रॉक को पार करता हुआ जाघों तक आ गया।''

अलीगढ़ में मैत्रेयी को पढ़ने के लिए जिस संयोजिका के घर पर रखा जाता है उनका छोटा बेटा जिसका ब्याह भी हो चुका है। वह मैत्रेयी को रात भर सोने नहीं देता। रात में पेट पर हाथ धरते हैं। छाती नोंचते बनोटते हैं।

एक बार घर पर भैया–भाभी के घर उनके न होने पर तन्दुरुस्त बूढ़ा आदमी–उनके साथ अश्लील हरकतें करता है जिससे मैत्रेयी डर जाती है। इतना होने पर भी भाभी बूढ़े को माफ कर देती है।

''लड़की होने की सजा वह जगह–जगह भोगती है। डी.बी. इन्टर कॉलेज के प्रिंसिपल ने एक दिन मैत्रेयी को बाँहों में कस लिया था। चुम्बन और मनुहार से मैत्रेयी सिटपिटा जाती है। प्रिंसिपल को हटाने के लिए आंदोलन भी होता है तथा मैत्रेयी को रेस्टीकेशन करने की बात आते ही माँ प्रिसिपल से माफी मांगने के लिए कहती है।

एक दिन ड्राइवर मैत्रेयी के साथ जबरदस्ती करता है परन्तु बाज बहादुर उसे बचा लेता है।

मैत्रेयी में शहरी सभ्यता व औपचारिकताओं का अभाव होने से शादी के पश्चात् ही पति उससे अछूतों जैसा व्यवहार करने लगता है। शारीरिक संबंध को अनदेखा करने लगता है उसे चिड़ियाघर का जानवर कहता है।

कस्तूरी कहती है कि पुरुष के कारण ही नारी की जिन्दगी नरक बनी हुई है। यह समाज की वास्तविक सच्चाई को बयां करती है कि नारी की किसी भी स्थिति के लिए पुरुष ही उत्तरदायी होता है।

असुरक्षित नारी पुरुष की कामलिप्सा और नारी को भोगने की इच्छा के कारण नारी असुरक्षित है। ''अकेली रहने वाली महिला पर प्रत्येक पुरुष अपना अधिकार जमाना चाहता है। किसी की दृष्टि उसके रुपये, जायजाद पर तो किसी की नजर उसके शरीर पर होती है। प्रगति के नंगाड़े बजाकर इक्कीसवीं सदी तक पहुँचने वाला भारतीय पुरुष समाज अब भी बुद्धिजीवी कलाकार प्रतिभाशाली महिला और साहित्यकार को वास्तविक सम्माननीय दृष्टि से नहीं देखता। उसके लिए वह

इस्तेमाल की वस्तु है। नाटक, प्रेम, बहकावा और जोर–जबरदस्ती से वह उसे अपने अधीन करना चाहता है।''[49]

नारी योनि खतरे में

पति पर निर्भर पत्नी का जीवन दुःख का अध्याय होता है। पति के साथ उसकी खुशी जुड़ी हुई होती है। पति के बिना उसका जीवन दुःख यातना से भर जाता है। 'एक अनपढ़ कहानी' में चम्पा के पति की मृत्यु से उसका जीवन दुःखों से भर जाता है। वह तीन बच्चों की परवरिश करने की कल्पना से दुःखी होती है। विधवा नारी का जीवन असुरक्षित बनता है। बच्चों की चिन्ता, और स्वयं की रक्षा के पाटों में उसकी जिन्दगी पिस जाती है।

पुरुष की वासनांध दृष्टि से नारी योनि ही खतरे में है। कृष्णा अग्निहोत्री इसकी ओर ध्यान आकर्षित करती हुई कहती है–''लड़की का कोमल भोला बचपना भी क्या पुरुष से सहन नहीं होता। वह उसे भी अपने गन्दे सुख हेतु चीर देने को आतुर रहता है।''[50]

लालकुंवर नाम के पुलिस कांस्टेबल पर कृष्णा के घर वाले भरोसा करते है। बच्चे भी उसे लालू मामा कहकर उसे कहानियाँ सुनाने का अनुरोध करते है।वह छोटी लड़कियों के साथ गन्दी हरकते करता है। कृष्णा अग्निहोत्री बचपन की यादे सुनाती हुई कहती है– ''लालकुंवर की नीयत ठीक नहीं थी। वह दूध पिलाकर हमें सुला देता और हमारे हाथों में अपने गुप्तांग को पकड़ा देता। एक बार अर्द्ध निद्रा में मैंने उसे झटक दिया। जब उसने शकुन्तला को दूसरे कमरे में ले जाकर कुछ करना चाहा...वह चिल्लाई। मैंने लालकुंवर को उस पर झुका देखा तो लालकुंवर के बाल पकड़कर खींचना शुरु कर दिया और चिल्लाई।''[51]

'भ' नामक उनका एक रिश्तेदार कृष्णा को तंग कर उसके साथ नाजायज रिश्ता बनाने की कोशिश करता है। वह ''एकान्त पाते ही कृष्णा को आलिंगनबद्ध

करता है।'' घर–परिवार और समाज में नारी की जवानी, शरीर भोगने की कोशिश की जाती है। कृष्णा जी ने अपनी आत्मकथा में रिश्तेदारों, परिचितों, नौकरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को चित्रित करते हुए स्पष्ट किया है कि ''नारी की इज्जत हमेशा खतरे में होती है। पिता के मित्र, बेटी समान लड़की को खसोटने की मुद्रा में। कितने विश्वास से मेरे पिता मुझे उन्हें सौप आए थे। कृष्णा ने बचपन से पुरुष से असुरक्षितता अनुभव की है। उसके रिश्ते के चाचा उनके साथ घिनौना कर्म करने की ताक में रहते थे।''[52]

बाल्यकाल के दंश

'एक कहानी यह भी' मन्नू भंडारी बताती है कि पिता का व्यक्तित्व कैसा था– ''नवाबी आदतें, अधूरी महत्त्वाकांक्षाएं, हमेशा शीर्ष पर रहने के बाद हाशिए पर सरकते जाने की भावना क्रोध बनकर हमेशा माँ को कंपाती थरथराती रहती थी।'' मन्नू जी बताती है कि मैं काली, दुबली, मरियल थी जब कि गोरा रंग पिताजी की कमजोरी जिसका पूरा लाभ व प्यार बहिन सुशीला को ही मिला। अतः ऐसे गहरे हीनभाव के कारण नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के बावजूद आज तक मैं उससे उभर नहीं पाई। यही उनकी बचपन के शोषण के मानचित्र को रेखांकित करती है जो बचपन की कच्ची मिट्टी पर पक्के रंग से हमेशा के लिए छप गये थे।

भावनात्मक प्रहार

जब प्रेम विवाह करने के पश्चात् पति द्वारा यह शब्द कहे गये तो आघात की अंतिम अभिव्यक्ति थी– ''देखो छत जरूर हमारी एक होगी लेकिन जिन्दगियां अपनी–अपनी होंगी। बिना एक दूसरे के जिदंगी में हस्तक्षेप किये बिल्कुल स्वतंत्र, मुक्त और अलग''। इसी प्रकार से लेखिका बताती है कि पति संवेदनहीन व भावनाहीन भी थे। बेटी टिंकू को खसरा हुआ तो डॉक्टर के पास जाकर दवा लाने

का बहाना बताकर कहीं और चले जाते। इस प्रकार अनेक बार भावनात्मक प्रहार सहे हैं।

आर्थिक ब्लैकमेल का शिकार

'अन्या से अनन्या' में लेखिका का सम्पूर्ण जीवन ही शोषित रहा। कम उम्र होते हुए विवाहित पुरुष के साथ लिव इन रिलेशन में सारी उम्र साथ निभाया वह भी स्वयं द्वारा आत्मनिर्भर होकर समाज में उच्च पद प्राप्त कर, फिर भी डॉ. सर्राफ इन्हें प्रेम न दे पाये। हमेशा ताने देते तथा औरों द्वारा किये गये तानों या कटाक्ष या व्यंग्य पर भी टिप्पणी नहीं करते थे। वह केवल शारीरिक संबंध को ही मानते थे। भावात्मक सम्बन्ध उनके लिए शून्य रहा। डॉ. सर्राफ ने अपने जीवन व परिवार में भी उन्हें महत्व प्रदान नहीं किया बल्कि आर्थिक रूप से सक्षम होने पर उन्हें ब्लैकमेल भी करते थे।

अश्लील आचरण : पुरुष मानसिकता

"आम तौर पर स्त्रियों के साथ पुरुषों के अश्लील आचरण के प्रति आम पुरुषों की भी तब तक ऐसी ही मानसिकता होती है जब तक उनकी बेटी या पत्नी के साथ ऐसा आचरण न हो। मैं लम्पट की लम्पटता खत्म करने पर तुल जाती रही हूँ चाहे जिस हद तक जाना पड़े क्योंकि चुप्पी को स्वीकृति या भय मानकर वह दूसरों के साथ फिर वैसी ही हरकत कर सकता है। मेरे साथ भी बचपन में ऐसा ही होता रहा, इसलिए "मैं औरत हूँ डर जाऊँगी" जैसा निष्कर्ष निकालने का मौका राजनीति में आने के बाद प्रायः मैंने पुरुषों को दिया ही नहीं। हो सकता है इसके पीछे मेरी खुद की असुरक्षा की भावना हो। स्त्री सुलभ लज्जा भी एक तथ्य है जो पलायन की मानसिकता को प्रोत्साहित करता है। मेरा मानना है कि लम्पटों, धूर्तों से पाला पड़े तो लज्जा त्यागकर डटना चाहिए अन्यथा वह अपनी क्रूरता का आतंक कायम कर लेता है।''[53]

वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति

भारतीय समाज व्यवस्था में नारी को गौण, हीन स्थान दिया जाता है। उसके श्रम, धन, शरीर, जान का स्वामी बनकर पुरुष उसका शोषण करता है। पुरुष उसे केवल दासी मानकर उसे भोगने का षड़यन्त्र रचता है। पुरुष की वासना से घर, परिवार, समाज में नारी सुरक्षित नहीं है। पुरुष के अत्याचार भोगवादी मानसिकता, अत्याचारमूलक विचार का साथ देने का काम परिवार के सदस्य करते हैं।

समाज में पुरुष की वासनांध दृष्टि से नारी की अस्मत हमेशा खतरे में होती है। कौसल्या बैसंत्री (दोहरा अभिशाप) ने इसका उदाहरण देते हुए एक प्रसंग का चित्रण किया है। उनकी बस्ती में सखाराम नाम का मजदूर रहता था। उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। वह दिहाड़ी पर मजदूरी करती थी। वह इमारत बनवाने के काम पर मजदूरी करती थी। उसका काम था सीमेन्ट, ईंटे ढोकर मिस्तरी को देना। वहाँ काम करने वाला मिस्तरी बड़ा बदमाश था। वह आते–जाते सखाराम की पत्नी को छेड़ता था। एक दिन मिस्तरी ने सीमेन्ट का गोला बनाकर सखाराम की पत्नी की छाती पर मारा। सखाराम की पत्नी मिस्तरी को गालियाँ देने लगी। तब मिस्तरी और बाकी मजदूर उसकी खिल्ली उड़ाते हुए हँसने लगे। तब उसका पति सखाराम मिस्तरी का विरोध करने के बजाय उसकी पत्नी को ही दोष देने लगा–"बाकी औरतें भी यहाँ काम करती हैं। उन्हें वह कुछ नहीं कहता है। तुम्हें ही वो क्यों छेड़ता है। तुम ही बदचलन हो।" इतना ही नहीं पत्नी की रक्षा करने में असमर्थ पति ने पत्नी को बदचलन सिद्ध कर रात भर घर के बाहर रखा। वह रात भर डर के कारण सो नहीं सकी। सवेरे उसे छोटा कपड़ा और चोली पहनने को दी। उसके माथे पर सफेद रंग की बिंदिया लगाकर और गले में चप्पलों की माला डालकर उसे गधे पर बैठाकर पूरी बस्ती में घुमाया। पति के अत्याचार और समाज से तिरस्कृत होने पर उस औरत ने कुएं में कूदकर अपनी जान दे दी। उसके माँ–बाप ने मरने के बाद भी उसका साथ न देकर कहा– "इसने हमारी नाक कटवाई है।

अच्छा हुआ यह कुलटा मर गई।" उस औरत का कुछ दोष न होते हुए भी उसे पुरुष की वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति का शिकार होना पड़ा।

विषम सामाजिक परिवेश, पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था, नारी का परावलम्बन, प्रथा–परम्पराओं का प्रभाव आदि के बल पर नारी को अन्याय, अत्याचार का शिकार बनाया जाता है।

सामाजिक अन्याय और अत्याचार

कौसल्या बैसंत्री को सामाजिक अन्याय–अत्याचार का शिकार होना पड़ा है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनके अपने समाज के लोगों ने ही निर्माण की थी। उनके बिरादरी के लोगों ने ही उन्हें पढ़ने से रोका था। इतना ही नहीं बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा से काम करने वाले सहयोगियों ने जबरन यौनाचार करना चाहा था। बस्ती के लोगों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया था। कृष्णा अग्निहोत्री को भोग्या बनना या सौदा करना रास नहीं। उसने दो बार शादी कर संतुलित एवं संस्कारबद्ध जीवन जीने की कोशिश की थी।

शाब्दिक आघात

व्यवसाय प्रारम्भ करने के पश्चात् व्यवसाय पुरुष प्रधान समझा जाता था जिससे उन्हें बहुत कठिनाइयां आयी। पुरुष वर्ग उन्हें आगे बढ़ने से हमेशा रोकते थे। समाज में जाने पर लोग उन्हें ताने देते तथा कई बार अपशब्द भी कहते थे। बंगाल में मारवाड़ियों की उपेक्षा की जाती थी तथा मानसिक प्रताड़ना भी सहनी पड़ती थी।

5.5 निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्याय में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण प्रस्तुत व रेखांकित किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि पुरुष की नजरों में महिला की

स्थिति शायद कुछ भी नहीं है वह केवल उसका शोषण करके संतुष्टि प्राप्त करने की कोशिश ही करता है। उसके लिए संबंध व रिश्ते खोखले होते हैं केवल शारीरिक शोषण व आर्थिक शोषण के लिए ही पुरुष का जन्म हुआ है।

एक नारी की यह कैसी विडंबना है कि वह स्वयं की इच्छा से न तो शादी कर सकती है न ही प्रेम। यदि कर लिया तो उसके लिए समाज व परिवार सभी से संबंध विच्छेद कर दिये जाते है। चाहे उसकी स्थिति मरणासन की क्यों न हो जाये। समाज में एक नारी के लिए नियम कुछ और हैं तो पुरुष के लिए कुछ और, समानता तो है ही नहीं क्योंकि यदि एक नारी का बलात्कार होता है तो भी उसकी सजा नारी ही जीवन भर भुगतती है पुरुष नहीं और फिर भी नारी को ही किसी न किसी प्रकार से दोषी ठहराया जाता है।

समाज का धनी वर्ग कमजोर का, प्रतिष्ठित वर्ग गरीब का, शिक्षित वर्ग अशिक्षित का हमेशा से शोषण करता आया है तथा पुरुष व समाज की मानसिकता में बहुत ही कम परिवर्तन नजर आ रहा है। परन्तु वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण, जागरुकता तथा अधिकारों के कारण समाज में महिलाओं की स्थिति में बदलाव आने लगा है। संबंधों में जहाँ सुधार, प्रेम व प्यार देखा जा रहा है वहाँ रिश्तों में कटुता, विच्छेदन भी देखा जा रहा है। जातिगत भावनाएं गौण होती जा रही है तथा आर्थिक व सामाजिक स्तर को प्राथमिकता प्रदान की जाने लगी है परन्तु समाज की जड़ों में जो दीमक लगी हुई है उसे हटाने में तथा नारी का पूर्ण सम्मान तथा स्वतंत्रता मिलने में व मानसिक परिवर्तन होने में शायद कुछ सदियाँ ओर लगे।

मैं स्वयं एक नारी होने के नाते यह महसूस करती हूँ कि एक नारी कितनी ही आत्मनिर्भर व सक्षम क्यों न हो जाये वह पुरुष के सानिध्य के बिना अधूरी है तथा असुरक्षित भी। अतः पुरुष रूप का प्रतीक कहीं ना कहीं उसकी (नारी) भी सुरक्षा का कुछ तो प्रतीक रूप में होता ही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी आत्मकथाएंः संदर्भ और प्रकृति –संपादक श्याम सुंदर पांडेय पृ. 230–233
2. सुनो मालिक सुनो– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 140
3. वही
4. वही
5. गुड़िया भीतर गुड़िया–मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 34
6. वही, पृ. 123
7. वही, पृ. 35
8. वही, पृ. 124
9. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 16
10. अन्या से अनन्या'– प्रभा खेतान, पृ. 3
11. एक जमीन अपनी– चित्रा मुद्गल, पृ. 44
12. बेतवा बहती रही– मैत्रेयी पुष्पा पृ. 35
13. अपनी सलीके– चित्रा मुद्गल, पृ. 28
14. कीर्तिकया– कश्मीरी लाल, पृ. 53
15. कीर्तिकया– कश्मीरी लाल, पृ. 53
16. ध्रुवस्वामिनि–जयशंकर प्रसाद, पृ. 38
17. एक जमीन अपनी– चित्रा मुद्गल, पृ. 44
18. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 20–21
19. वही
20. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी, पृ. 18
21. अन्या से अनन्या'– प्रभा खेतान, पृ. 29
22. वही, पृ. 33

23. सुनो मालिक सुनो— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 122
24. कस्तूरी कुण्डल बसै— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 17
25. एक कहानी यह भी— मन्नू भंडारी, पृ. 16
26. वही, पृ. 43
27. मेरी कहानी— मैरीकॉम, पृ. 18
28. वही, पृ. 39
29. सुनो मालिक सुनो— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 82
30. महिला सशक्तिकरण— गुप्ता कमलेश कुमार, पृ. 67
31. भारतीय संविधान अनुच्छेद— 14, 15, 16, 19, 21, 23, 39
32. मध्यकालीन भारत का इतिहास— वी.डी. महाजन, पृ. 24
33. वोमेन्स राइड्स, ए.डी.वी. पब्लिशर्स— शैलजा नागेन्द्र, पृ. 44
34. वही
35. वही
36. मानव अधिकार और कर्तव्य— संपादक प्रोफेसर आर. पी. जोशी, पृ. 129
37. गुड़िया भीतर गुड़िया— मैत्रेयी पुष्पा, पृ. 14
38. वही, पृ. 15
39. वही
40. वही
41. वही, पृ. 35
42. वही, पृ. 34
43. वही
44. अन्या से अनन्या— प्रभा खेतान, पृ. 4
45. वही
46. वही, पृ. 37

47. वही, पृ. 38
48. वही, पृ. 13
49. लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, पृ. 31
50. वही, पृ. 32
51. वही, पृ. 61
52. वही, पृ. 52
53. वही, पृ. 8

उपसंहार

उपसंहार

इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन" शोध में आत्मकथाएं, आत्मकथांश और आत्मकथ्य लेखिकाओं की आत्मसजगता के साथ–साथ उनकी 'असामान्यता' और 'असाधारणता' को सामने लाते हैं। परन्तु सबका जीवन एक समान नहीं है। इन सबके सुख–दुख, उल्लास–अवसाद, जीवन और जगत के प्रति दृष्टि भी एक जैसी नहीं है। किसी का जीवन सुख से भरा है जैसे मैरी कॉम, किसी का दुख और अवसाद से भरा है जैसे– कृष्णा अग्निहोत्री, इन्हीं आत्मकथाओं के नारी गूढ़ की गहराइयों का सार प्रस्तुत है।

इस शोध कार्य में 2001 से 2014 तक प्रकाशित, चुनिंदा, चर्चित एवं सर्वमान्य महिला साहित्यकारों के साथ शोध चयन कमेटी के निर्देशानुसार दलित कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999 को भी शोध में सम्मिलित करने का निर्देश दिया गया है। शोध हेतु जिन आत्मकथाओं को लिया गया है वे हैं– मैत्रेयी पुष्पा– कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002; रमणिका गुप्ता– हादसे, 2005; सुशीला राय– एक अनपढ़ कहानी, 2005; प्रभा खेतान– अन्या से अनन्या, 2007; मन्नू भण्डारी– एक कहानी यह भी, 2007; मैत्रेयी पुष्पा– गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008; कृष्णा अग्निहोत्री– लगता नहीं है दिल मेरा, 2010; मैरी कॉम– मेरी कहानी, 2014 और कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999 को लिया गया है।

प्रथम अध्याय, महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा में आत्मकथा लेखनः अवधारणात्मक परिचय, आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ, आत्मकथा की परिभाषाएँ, आत्मकथा, आत्मकथा के रचना तत्व– आत्म तत्व, कथा तत्व, परिवेश, अतीत का रूपान्तरण, आत्मकथा के तत्व– कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद, आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा– संक्षिप्त परिचय, त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, हिन्दू नारी की स्थिति का सर्वेक्षण, विभिन्न कालों में नारी की स्थिति– वैदिक काल, उत्तर–वैदिक काल, धर्मशास्त्र काल, मध्यकाल, ब्रिटिश काल–

पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, नारी जीवन का पारिवारिक वातावरण, हिन्दी साहित्य में आत्मकथा की विकास यात्रा, आत्मकथा : जीवनी सहधर्मी विधाएं, हिंदी साहित्य की संक्षिप्त जीवनी–साहित्य, महिला आत्मकथा लेखन, इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखन का परिचय, पारिवारिक जीवन, सम्बन्धों में कटुता, पुरुष का उत्तरदायित्व, स्वार्थी प्रवृत्ति, पत्नी पर अत्याचार, विचार व प्रथाएं, नारी शिक्षा, सदिगत परम्पराओं पर प्रगतिशील विचारों का प्रभाव, सामाजिक तथा मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन पर शोध किया गया है।

सार रूप में आत्मकथा लेखन केवल किसी के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं होता है बल्कि नारी आत्मकथा में पात्रों का उल्लेख, उस पर होने वाली अत्याचारों, मन की कुण्ठा, समाज व परिवार तथा अन्यों से प्राप्त तिरस्कार, व्यक्तियों द्वारा दिये गये धोखे, मान–सम्मान व प्रतिष्ठा पर आँच, मन की भावनाओं, समाज व परिवार में उपयुक्त स्थान प्राप्त न होने, स्त्री होने के नाते कई प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहने के कारण, समाज में व्याप्त कई प्रकार के असामाजिक कृत्यों से परेशान होकर प्रेरणा के रूप में अपने को स्थापित करना।

इस प्रकार अपने जीवन की सच्ची व कड़वी यादों को आत्मकथा में वर्णित किया जाता है, जिससे समाज में एक नयी सोच का उदय हो सके। समाज में महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाये। आज भी समाज में महिलाओं को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, जो स्थान पुरुष को प्राप्त है। बालिका शिक्षा व नारी उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण ने समाज में एक नयी दिशा व सोच की नींव रखी है। जो आगे जाकर मील का पत्थर साबित होगा।

द्वितीय अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति उनका संघर्ष एवं सृजन में पारिवारिक स्थिति– समानान्तर जिन्दगीः आधुनिक पैटर्न, आजन्म उपेक्षिता, अवैद्य रिश्ते समाज में अस्वीकृत, बीती ताहिं बिसार, आगे की सुधि लेय, अनवरत रुदन, समाज की मानसिकता में

परिवर्तन, स्वनिर्णय की हिम्मत, उन्मुक्त उड़ान की ओर नारी, दिखावटी आधुनिकता, सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, परिवार में बड़ों का दबदबा, सहनागरिक का दर्जा, परिवार में प्रमुख स्त्रियों द्वारा चुप रहना व कार्य करना, पारिवारिक निर्णय केवल पुरुष प्रधान, स्त्री के प्रति संकीर्ण मानसिकता, पत्नी का केवल शारीरिक शोषण, सामाजिक मर्यादा व परम्पराओं का ढोंग, पर्दा प्रथाः एक प्रश्नचिह्न, ससुराल ही वास्तविक घर, जनाजा (अर्थी) ससुराल से ही उठे, पति परमेश्वर, स्त्री अशिक्षा, विभिन्न सम्बन्ध– पिता–पुत्र का सम्बन्ध, पति–पत्नी का सम्बन्ध, छात्र–अध्यापक का सम्बन्ध, अन्य सम्बन्ध, सहानुभूति संबंध, पारिवारिक संबंध, अनुभव व आत्मीयता का संबंध, पुत्र मोह संबंध, अनैतिक संबंध, पुरुष प्रेमिका संबंध, शिक्षा का बढ़ता स्तर व बढ़ता आत्मकथा लेखन– इन्टरनेट जागरुकता की एक सीढ़ी, नारी होसले में बुलंदी सामाजिक विद्रोह और महिला आत्मकथा लेखन– दहेज प्रथा की समस्या, दहेज का उद्देश्य, वधू मूल्य, दहेज के सामाजिक प्रभाव, दहेज से हानि को दर्शाया गया है।

सार रूप में आत्मकथाओं के कथ्य से प्रतीत होता है कि समाज में पुरुष अहम व अभिमान में ही जीवन जीता है। उसका अभिमान व अहम स्त्री के ऊपर अपना हक समझता है। वह उसे मात्र खिलौना या उपभोग की वस्तु मानता है। वह यह नहीं मानता है कि एक नारी भी एक मानव है उसकी अपनी मान–मर्यादा, भावनाएं होती है तथा वह उसकी प्रेमिका, अर्द्धांगिनी, पत्नी अथवा अन्य रूपों में हमेशा हर परिस्थिति में पुरुष का साथ निभाती है।

मैंने यह महसूस किया है कि एक पुरुष अधिकांश नारी के प्रति मानसिक रूप से विकृति लिए हुए होता है तथा वह उसे हर प्रकार से प्रताड़ित या अत्याचार करते हुए सन्तुष्टि प्राप्त करने की कोशिश करता है। उसे हर नारी एक समान ही प्रतीत होती है घर, परिवार बनाने तथा भरण–पोषण के उत्तरदायित्व से वह हमेशा उन्मुक्त रहना चाहता है। अपने शरीर व मन के कुंठित व घृणित विचारों को वह

साकार करने की कोशिश करता है। स्वयं में कमियां होते हुए भी वह हमेशा नारी को दोषी मानता है उसे ही उत्तरदायी ठहराता है। स्वयं दुश्चरित्र होते हुए स्त्री को दुश्चरित्र बनाने व दोषी ठहराने की पूर्ण कोशिश करता है। अतः पुरुष भावनाओं रहित, कठोर प्रतिमानों का पुतला मात्र है।

तृतीय अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन में इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप– बयालीस का आंदोलन, पैंतालीस का आंदोलन, नक्सलवाद का विरोध, सैंतालीस में भारत की आजादी का संग्राम, स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका, उन्नीस सौ सत्तर की राजनीति, उन्नीस सौ पचहत्तर की राजनीतिक स्थिति, राजनीति में वंशपरम्परावाद का विरोध, आपातकाल में राजनीतिक ह्रास, खेलों में राजनीतिक हस्तक्षेप, पुरस्कारों में राजनीतिक हस्तक्षेप, दलित स्त्रियां अपनी लड़ाई स्वयं लड़े, माफिया से मुकाबला, महिलाओं की राजनीतिक स्थिति– राजनीति में महिलाओं का दबदबा, महिलाओं को वोट देने का अधिकार, संविधान द्वारा विभिन्न वर्गों व जातियों को समानता, पिछड़े वर्गों को जीवन की मुख्य धारा से जोड़ने की पहल, महिला आरक्षण बिल, इंदिरा गाँधी : एक प्रेरणा स्रोत, खेलों द्वारा राजनीति में पहचान, मणिपुर में एक रोड़ का नाम मैरीकोम, साहित्य में राजनीति, सरकार का हास्यास्पद कदम : आपातकालीन राजनीति, भारतीय दूतावास में राजनीति, जातिगत राजनीति, पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियाँ– कथनी–करनी में अंतर, औरत के प्रति सोची समझी राजनीतिक परम्परा, राजनीति शारीरिक शोषण का कटघरा, राजनीति में आने वाली औरत 'कलेवा', राजनीति में दलालों का जाल, राजनीति में आने वाली स्त्रियां 'फार ग्रांटिड', शारीरिक शोषण : ऊपर जाने की राजनीतिक सीढ़ी, अखबार (मीडिया) की घटिया मानसिकता, वामपन्थी पार्टियों की पूर्वाग्रही सोच, नारी ही नारी की दुश्मन, नारी जागरण का समय, दृढ़ आत्मविश्वास, पुरुषों के गैरकानूनी कुकर्मों की पोल खोलना,

पुरुष राजनीतिक मित्रों की भीतरघात, कब्जाकरण का विरोध, स्त्री के चिह्न कायरता के प्रतीक नहीं, पुरुष सदस्यों को जुझारू औरत बर्दाश्त नहीं, लम्बी राजनीतिक पारी, स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना को दर्शाया है।

सारतः सभी रचनाओं में नारी के राजनीतिक अस्तित्व का जीवंत चित्रण परिदृष्टित होता है कि वास्तव में नारी का जीवन कितना कठिन है। इनमें नारी की संवेदनाओं का मार्मिक वर्णन दिखाई देता है। इन रचनाकारों ने अपने जीवन की उन कठोर राजनीतिक यातनाओं व अत्याचारों का वर्णन इनमें किया है जो जीवन में उन्होंने सहन किया है। अधिकांश में इस बात का राजनीतिक चित्रण हमें दिखाई देता है कि राजनीतिक परिस्थितियाँ एक नारी से सब कुछ करवा लेती हैं। दूसरों के लिए या परिवार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देती हैं, फिर भी समाज उन्हें सम्मान नहीं दे पाता तथा इन्हीं संबंधों से उन्हें तिरस्कार, दर्द प्राप्त होता है, इनमें पुरुष प्रधान समाज की कठोरता का आभास होता है। हम मनुष्य होकर भी नारी को मानवीय पद प्रदान करने से कतराते हैं। यह पुरुष के गौरव को कम नहीं करता परन्तु अहंकार व्यक्ति को वह करने नहीं देता। अतः यह आवश्यक है कि अब समाज नारी के पद व गरिमा को बनाये रखे।

उसे राजनीति में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए समाज, परिवार द्वारा मन की स्वतंत्रता प्राप्त हो, जिससे वह अपने पंखों को खोलकर उड़ सके। अपनी प्रतिभा को उड़ान प्रदान कर सके अपने सपनों को वास्तविक धरातल पर उकेर सके। जीवन की कल्पनाओं को साकार कर सके। रातनीति में अपना परचम फहरा सके।

चतुर्थ अध्याय, नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन में आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन– सदियों से रूढ़िग्रस्त समाज, पति पर आर्थिक निर्भरता, आर्थिक अधि़कार की समस्या, एक–एक पैसे को तरसती नारी, नारी होने का दुःख, पराया धन,

सामाजिक बंधन, पुरुष को स्त्री का मालिकाना तेवर नापसंद, पड़ोसिन की आर्थिक सहायता का नवीन रूप, आर्थिक संघर्ष का दौर, आंबूकरा, राशन का जमाना, चाय की लत डालना, बड़ी बहिन की आर्थिक स्थिति, आर्थिक स्वातन्त्र्य और बनते बिगड़ते रिश्ते– अर्थ तंत्र पर रिश्तों की बलि, पारिवारिक विघटन का मूलःअर्थ, पीढ़ीगत आर्थिक दासता, सोच में अंतर, एकल परिवार की मानसिकता, शहरीकरण की चकाचौंध, अत्यधिक महत्वाकांक्षाएं, भौतिकवादिता, पहनावा, रहनसहन, वात्सल्य, मातृत्व सुख से दूरी, विवाह से दूरी, अन्तरंग सम्बन्धों की अधिकता, परिवारिक सम्बन्धों में मतभेद, सहनशीलता की कमी, परिस्थितियों से समझौता नहीं, स्वयं के अनुसार जीवन जीने की लालसा, रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़– रचनाकार एक सेतु, आर्थिक आत्मनिर्भरता महत्वपूर्ण उपलब्धि, समय की कमी, पब्लिकेशन, त्रुटियों में कमी, कम्प्यूटर की उपयोगिता, अर्द्ध संचार माध्यम, कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन– आर्थिक आत्मनिर्भरता मान सम्मान व मर्यादा का प्रतीक, युगीन परिवेश का प्रभाव, स्वतंत्रता सेनानी की पत्नी को एक दासी के रूप में देखने की चाह, चिटफंड, दशरथ के परिवार की आर्थिक हालत, कर्जदार बन कर मत मरो, आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान– स्वार्थ सिद्धी वश केन्द्रीय स्थान को प्रस्तुत किया है।

सार रूप में महिलाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता आर्थिक स्वतंत्रता है। परिवार में अधिक श्रम महिलाएं ही करती हैं। प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक घर, कृषि एवं पशुपालन के कार्य करती महिलाओं के श्रम का अधिकतम फल पूरे परिवार को मिलता है लेकिन महिलाओं के अमूल्य परिश्रम का आदर सम्मान, पूर्ण रूप से प्रदान नहीं किया, जो चिंतनीय विषय है।

जब तक महिलाएं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर नहीं हो जाती तब तक उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदलना भी असंभव लगता है। फलतः आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सकता है।

आर्थिक आत्मनिर्भर और आर्थिक स्वातंत्र्य के विकास के आधार पर ही आज महिलाओं को परिवार में केन्द्रीय स्थान मिला है, जो उनके जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

पंचम अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन में स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन– नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, स्त्री जीवन में बदलाव की मांग, स्वत्व की चेतना, परम्परागत रूढ़ियों का खंडन, नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, शहरीकरण की वास्तविकता, इन्द्रधनुषी रंग : घनघोर काली रात, इक्कीसवीं सदी की आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति की वर्तमान स्थिति और सृजन, नारी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व की चेष्टा, दोहरे मानदंड का विरोध, एक तरफा प्रेम के रिश्तों को तिलांजलि, पुरुष वर्चस्व को तोड़ती नारी, आर्थिक परतंत्रता, स्वतंत्रता विरोधी, विभिन्न जन आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन– आजादी से पहले का आंदोलन, स्वतंत्रता आंदोलन, मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में नारी शोषण की स्थिति, महिला अधिकारों की विभिन्न देशों में स्थिति, संयुक्त राष्ट्र एवं महिला अधिकार, अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएँ एवं महिला अधिकार, महिला अधिकारों के विशेष प्रावधान, महिला हैसियत आयोग, महिलाएं एवं अंतर्राष्ट्रीय वर्ष व दशक की घोषणा, महिला अधिकारों से संबंधित घोषणा, महिलाएं तथा विश्व मानवाधिकार सम्मेलन 1993, महिला अधिकारों की जागृति हेतु किये गये प्रयास, मैक्सिकों सम्मेलन, कोपेनहेगन सम्मेलन, नैरोबी सम्मेलन, बीजिंग सम्मेलन, नई दिल्ली सम्मेलन 1997, महिला अधिकारों हेतु विभिन्न देशों द्वारा समय–समय पर किये गये प्रयास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला अधिकारों के विकास से सम्बन्धित घटनाक्रम, आत्मकथा लेखन और महिला अधिकार, अपना निर्णय अपने हाथ, उन्मुक्तता बनाम हठधर्मिता, प्रतिरोध की स्थितियां और महिला आत्मकथा लेखन– पति का शीत युद्ध, जलकुक्कड़ आदमी की शिकार, नारी उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता

पर प्रतिबन्ध, 'मंगलसूत्र' एक घरमल्ल, करवा चौथ पर सवालिया दृष्टि, शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन– अनवरत अश्रुमोचन, आत्महत्या के प्रयास तक, हर कदम पर शारीरिक शोषण, नारी योनि खतरे में, बाल्यकाल के दंश, भावनात्मक प्रहार, आर्थिक ब्लैकमेल का शिकार, अश्लील आचरण, पुरुष मानसिकता, वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति, सामाजिक अन्याय और अत्याचार, शाब्दिक आघात को दर्शाया है।

प्रस्तुत अध्याय में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण प्रस्तुत व रेखांकित किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि पुरुष की नजरों में महिला की स्थिति शायद कुछ भी नहीं है वह केवल उसका शोषण करके संतुष्टि प्राप्त करने की कोशिश ही करता है। उसके लिए संबंध व रिश्ते खोखले होते हैं केवल शारीरिक शोषण व आर्थिक शोषण के लिए ही पुरुष का जन्म हुआ है।

एक नारी की यह कैसी विडंबना है कि वह स्वयं की इच्छा से न तो शादी कर सकती है न ही प्रेम। यदि कर लिया तो उसके लिए समाज व परिवार सभी से संबंध विच्छेद कर दिये जाते है। चाहे उसकी स्थिति मरणासन की क्यों न हो जाये। समाज में एक नारी के लिए नियम कुछ और है, तो पुरुष के लिए कुछ और, समानता तो है ही नहीं क्योंकि यदि एक नारी का बलात्कार होता है तो भी उसकी सजा नारी ही जीवन भर भुगतती है पुरुष नहीं और फिर भी नारी को ही किसी न किसी प्रकार से दोषी ठहराया जाता है।

समाज का धनी वर्ग कमजोर का, प्रतिष्ठित वर्ग गरीब का, शिक्षित वर्ग अशिक्षित का हमेशा से शोषण करता आया है तथा पुरुष व समाज की मानसिकता में बहुत ही कम परिवर्तन नजर आ रहा है।

परन्तु समाज में वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण, जागरुकता तथा अधिकारों के कारण महिलाओं की स्थिति में बदलाव जरूर आने लगा है। संबंधों में जहाँ सुधार, प्रेम व प्यार देखा जा रहा है वहाँ रिश्तों में कटुता, विच्छेदन भी देखा

जा रहा है। जातिगत भावनाएं गौण होती जा रही है तथा आर्थिक व सामाजिक स्तर को प्राथमिकता प्रदान की जाने लगी है। परन्तु समाज की जड़ों में जो दीमक लगी हुई है उसे हटाने में तथा नारी का पूर्ण सम्मान तथा स्वतंत्रता मिलने में व मानसिक परिवर्तन होने में शायद कुछ सदियाँ ओर लगे।

मैं स्वयं एक नारी होने के नाते यह महसूस करती हूँ कि एक नारी कितनी ही आत्मनिर्भर व सक्षम क्यों न हो जाये वह पुरुष के सानिध्य के बिना अधूरी है तथा असुरक्षित भी। अतः पुरुष रूप का प्रतीक कहीं ना कहीं उसकी भी सुरक्षा का प्रतीक रूप होता ही है।

परिशिष्ट में आत्मकथा के विभिन्न चरण, दलित आत्मकथा साहित्य, स्त्री आत्मकथा साहित्य को रेखाकिंत किया है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

आत्मकथा के विभिन्न चरण

दलित आत्मकथा साहित्य

स्त्री आत्मकथा साहित्य

परिशिष्ट

आत्मकथा के विभिन्न चरण

प्रथम चरण

सन् 1600–1875 तक

1. अर्धकथा– बनारसीदास जैन, वर्ष 1641
2. आत्मचरित– स्वामी दयानंद सरस्वती, वर्ष 1860
3. सिपाही से सूबेदार तक– सीताराम सूबेदार, वर्ष 1861

द्वितीय चरण

सन् 1876–1946 तक

1. एक कहानी– कुछ आप बीती कुछ जग बीती– भारतेन्दु, वर्ष 1876
2. जीवन चरित्र– राधाचरण गोस्वामी
3. जीवन वृतांत– प्रतापनारायण मिश्र
4. निज वृत्तांन्त– अम्बिकादत्त व्यास, वर्ष 1901
5. मुझमें देवजीवन का विकास– सत्यानन्द अग्निहोत्री, वर्ष 1910
6. आप बीती (मेरी राम कहानी)– भाई परमानन्द, वर्ष 1922
7. कल्याण मार्ग का पथिक– स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, वर्ष 1924
8. स्वजीवनी (मुक्त वृत्त)– श्रीधर पाठक, वर्ष 1926
9. आत्मकथा– रामप्रसाद बिस्मिल, वर्ष 1927
10. स्व. लाला लाजपतरायजी की आत्मकथा– लाला लाजपतराय, वर्ष 1932
11. हंस पत्रिका, आत्मकथा– सं. प्रेमचन्द, वर्ष 1932
12. मैं क्रांतिकारी कैसे बना– रामविलास शुक्ल, वर्ष 1933
13. आप बीती–जीवनी– लज्जाराम मेहता, वर्ष 1933

14. आत्मचरित्र–चम्पू– प्रो. अक्षयवट मिश्र, विप्रचंद, वर्ष 1936
15. मेरी कहानी– राजाराम अग्रवाल, वर्ष 1939
16. आत्मकथा– स्वामी सत्यक्त, वर्ष 1940
17. मेरी मुक्ति की कहानी– रामनाथ लाल सुमन और परमेश्वरी दयाल, वर्ष 1940
18. मेरी असफलताएँ– गुलाबराय, वर्ष 1940
19. मेरी आत्मकहानी– श्यामसुन्दरदास, वर्ष 1941
20. जीवन की भूले– आत्मसंस्मरण– स्वामी वेदानन्दतीर्थ, वर्ष 1843
21. पत्रकार की आत्मकथा– मूलचन्द्र अग्रवाल, वर्ष 1944
22. अपनी बातें– चन्द्रभूषण वैश्य, वर्ष 1945
23. साधना के पथ पर या अहिंसा के अनुभव– हरिभाउ उपाध्याय, वर्ष 1945
24. मेरी जीवन यात्रा (भाग–एक)– राहुल सांकृत्यायन, वर्ष 1945

तृतीय चरण

सन् 1947–1968 तक

1. आत्मकथा– राजेन्द्र प्रसाद, वर्ष 1947
2. प्रवासी की आत्मकथा– भवानी दयाल सन्यासी, वर्ष 1947
3. जीवन के चार अध्याय– भुवनेश्वर प्रसाद, वर्ष 1947
4. किसान सभा के संस्करण– स्वामी सहजानंद, वर्ष 1947
5. मेरी जीवन गाथा– गणेश प्रसाद वर्णी, वर्ष 1948
6. मेरा जीवन प्रवाह– वियोगी हरि, वर्ष 1948
7. उनकी याद– श्रीमती तारा रानी श्रीवास्तव, वर्ष 1949
8. मेरी बात– नन्द लाल शर्मा 'निर्वासित', वर्ष 1950
9. मेरी जीवन यात्रा (भाग–दो)– राहुल सांकृत्ययान, वर्ष 1950

10. चारों की परछाइयाँ– चतुरसेन शास्त्री, वर्ष 1950
11. भूली बिसरी यादें– कमला प्रसाद वर्मा, वर्ष 1951
12. मेरी आत्मकथा– स्वामी सत्यदेव परिवाज्रक, वर्ष 1951
13. सिंहावलोकन (भाग–एक, दो)– यशपाल, वर्ष 1951–1955 कई खंडों में
14. अपने सम्बन्ध में– महादेवी वर्मा, वर्ष 1951
15. अपनी कैफियत– जैनेन्द्र कुमार, वर्ष 1951
16. मेरी रचना के स्रोत– उदयशंकर भट्ट, वर्ष 1951
17. कविता का पागलपन–हरिकृष्ण प्रेमी, वर्ष 1951
18. स्वत्रंतता की खोज में–स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, वर्ष 1951
19. अपनी बात– जैनेन्द्र, वर्ष 1952
20. परिव्राजक की प्रजा– शांतप्रिय द्विवेदी, वर्ष 1952
21. जीवन स्मृतियाँ– साहित्यकारों के आत्मचरित्र– सं. क्षेमेन्द्र सुमन, वर्ष 1952
22. मेरा जीवन संघर्ष– स्वामी सहजानन्द सरस्वती, वर्ष 1952
23. जीवन के कुछ चित्र– डॉ. रामकुमार वर्मा, वर्ष 1952
24. चाँद सूरज के बीरन– देवेन्द्र सत्यार्थी, वर्ष 1952
25. पत्रकारिता के अनुभव–इंद्र विद्यावाचस्पति, वर्ष 1952
26. त्रिपाठी जी की आत्मकथा– रामनरेश त्रिपाठी, वर्ष 1952
27. अपनी मौत पर– श्री धर्मवीर भारती, वर्ष 1952
28. बचपन के दो दिन– डॉ. देवराज उपाध्याय , वर्ष 1953
29. मेरा साहित्यिक जीवन– भगवान दास केला, वर्ष 1953
30. मुदर्रिश की रामकहानी– कालिदास कपूर, वर्ष 1953
31. जीवन चक्र– गंगाप्रसाद उपाध्याय , वर्ष 1954
32. सिंहावलोकन (भाग–तीन)– यशपाल, वर्ष 1955
33. पुरानी स्मृतियाँ और नये स्केच– प्रकाश चन्द्र गुप्त, वर्ष 1955

34. मैं भूल नहीं सकता– कैलाश नाथ काटजू, वर्ष 1955

35. मेरी जीवन यात्रा– जानकी देवी बजाज, वर्ष 1956

36. मेरे संस्मरण– आचार्य नरेन्द्र देव, वर्ष 1956

37. कलाकार के आत्मसंस्मरण– रामनरेश त्रिपाठी, वर्ष 1956

38. कलाकार के आत्मसंस्मरण– उदयशंकर भट्ट, वर्ष 1956

39. कलाकार के आत्मसंस्मरण– रामेश्वर प्रसाद मिलिन्द, वर्ष 1956

40. कलाकार के आत्मसंस्मरण– रामेश्वर शुक्ल अंचल, वर्ष 1956

41. अपनी बात– छविनाथ पाण्डेय, वर्ष 1956

42. मेरा नाटक काल– पं. राधेश्याम कथावाचक, वर्ष 1956

43. जंजीरे और दीवारें– रामवृक्ष बेनीपुरी, वर्ष 1957

44. मेरा नाटक काल– राधेश्याम कथावाचक, वर्ष 1957

45. आत्म निरीक्षण– सेठ गोविंद दास, वर्ष 1957

46. आत्म निरीक्षण (भाग–एक)– सेठ गोविंद दास, वर्ष 1958

47.आत्म निरीक्षण (भाग–दो, तीन)– सेठ गोविंद दास, वर्ष 1958

48. पिछले छियालीस वर्ष– बनारसी दास चतुर्वेदी, वर्ष 1958

49. बचपन के दो दिन– डॉ. देवराज, वर्ष 1959

50. मेरी अपनी कथा– पदुम लाल पुन्ना लाल बख्शी, वर्ष 1959

51. अपनी खबर– पाण्डेय बेचेन शर्मा उग्र, वर्ष 1960

52. मेरा बचपन– शिवपूजन सहाय, वर्ष 1960

53. मेरी जीवन गाथा (भाग–दो)– श्री गणेश प्रसाद वर्णी, वर्ष 1960

54. साठ वर्ष : एक रेखांकन– सुमित्रानंदन पंत, वर्ष 1960

55. व्यक्तिगत– गिरिजा शुक्ल 'गिरीश', वर्ष 1960

56. मेरे संस्मरण– श्री अनुग्रह नारायण, वर्ष 1961

57. मेरा जीवन– आचार्य शिवपूजन सहाय, वर्ष 1962

58. अतीत की परछाइयाँ– अमृता प्रीतम, वर्ष 1962
59. राम प्रसाद बिस्मिल की आत्मकथा, वर्ष 1962
60. कुछ देखा कुछ सुना– घनश्याम दास बिड़ला, वर्ष 1963
61. मेरी आत्मकथा– आचार्य चतुरसेन, वर्ष 1963
62. मेरे जीवन के अनुभव– संतराम बी. ए. चन्द्रसेन, वर्ष 1963
63. मेरी आत्मकहानी– संतराम, वर्ष 1963
64. परतों के आर–पार– उपेन्द्रनाथ अश्क, वर्ष 1965
65. बीती बातें– कपिदेव नारायण सिंह सुहृद, वर्ष 1965
66. प्रथम याम– आनंद शंकर माधवन, वर्ष 1965
67. जीवन के चार अध्याय– भुनेश्वर प्रसाद मिश्र, वर्ष 1966
68. मेरी जीवन यात्रा (भाग–तीन, चार, पाँच)– राहुल सांकृत्यायन, वर्ष 1967
69. मजदूर के मिनिस्टर– आबिद अली, वर्ष 1968

चतुर्थ चरण

सन् 1969–1979 तक

1. क्या भूलूँ क्या याद करूँ– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1969
2. नीड़ का निर्माण फिर भी– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1970
3. यौवन के द्वार पर– डॉ. देवराज, वर्ष 1970
4. विद्रोही की आत्मकथा– चतुर्भुज शर्मा, वर्ष 1970
5. कुछ अपनी कुछ देश की– जनकधारी प्रसाद, वर्ष 1970
6. निराला की आत्मकथा– डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, वर्ष 1970
7. अपनी कहानी– वृन्दावनलाल शर्मा, वर्ष 1971
8. मेरा जीवन वृतांत (भाग–एक)– मोरारजी देसाई, वर्ष 1972
9. आत्मकथा– मोहन राकेश, वर्ष 1973

10. विदा बंधु विदा– प्रवण कुमार बन्धोपाध्याय, वर्ष 1973
11. अरूणायन : एक आत्मकथा– पोद्दाररामावतार 'अरुण', वर्ष 1974
12. कुछ यादें (आप बीती)– पृथ्वीराज कपूर, वर्ष 1974
13. मेरी फिल्मी आत्मकथा– बलराज साहनी, वर्ष 1974
14. मेरा जीवन वृतांत (भाग–दो)– मोरारजी देसाई, वर्ष 1974
15. अब मौत मेरे पास आई– सारनाम सिंह अरूण, वर्ष 1976
16. मेरी अपनी राम कहानी– श्रीराम शर्मा, वर्ष 1967
17. बसेरे से दूर– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1977
18. आधे सफर की पूरी कहानी– कृश्चचंदर, वर्ष 1979

पंचम चरण

सन् 1980–1988 तक

1. क्या खोया क्या पाया– रामेश्वर टांटिया, वर्ष 1981
2. यादों की पगडंडियाँ– शंकर दयाल, वर्ष 1982
3. यादों के झरोखों से– बलराज साहनी, वर्ष 1983
4. घर की बात– रामविलास शर्मा, वर्ष 1983
5. संस्मृतियाँ– शिववर्मा, वर्ष 1983
6. महापुरुषों की खोज में : आत्मचरित्र– बनारसी दास चतुर्वेदी, वर्ष 1983
7. जीवन यात्रा– हरिमोहन झा, वर्ष 1984
8. बीती यादें– परिपूर्णानंद, वर्ष 1984
9. जब जुग बदला– शांतिचरण पिंडारा, वर्ष 1984
10. सत्यमेव जयते– देवकी नंदन प्रसाद, वर्ष 1984
11. जिंदगी लहलहाई– कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, वर्ष 1984
12. जहाँ मैं खड़ा हूँ– रामदरश मिश्र, वर्ष 1984

13. एक पुलिस अधिकारी की आत्मकथा– विश्वनाथ नाथ लाहिरी, वर्ष 1984
14. आत्मकथा– ए. पी. शर्मा, वर्ष 1984
15. अपनी खबर– पाण्डेय बेचेन शर्मा उग्र, वर्ष 1984
16. अपना अतीत– यादवेन्द्र शर्मा 'चंद्र', वर्ष 1984
17. राख से लपटे– पी. डी. टंडन, वर्ष 1984
18. दशद्वार से सोपान तक– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1985
19. यादों की जुगाली : एक आत्मकथा– एस. एम. जोशी, वर्ष 1985
20. हकीकत से मुलाकात– पी. डी. टंडन, वर्ष 1985
21. मेरा गाँव, मेरा बचपन, मेरा संघर्ष, मेरा कलकत्ता– रामेश्वर टाटिया, वर्ष 1985
22. कर्मक्षेत्रे मरूक्षेत्रे– आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्री, वर्ष 1985
23. मेरे सात जन्म (भाग–एक) – हंसराज रहबर, वर्ष 1985
24. मेरे सात जन्म (भाग–दो) – हंसराज रहबर, वर्ष 1986
25. जिंदगी का सफर– बलराज मधोक, वर्ष 1986
26. खानाबदोश– अजीत कौर, वर्ष 1987
27. मेरी आत्मकथा– रवीन्द्र नाथ टैगोर, वर्ष 1987
28. रोशनी की पगडंडियाँ– रामदरश मिश्र, वर्ष 1987
29. आँखों देखा हाल– मुरली मोहन मंजुल, वर्ष 1987
30. मेरा आजीवन कारावास– दामोदर विनायक सावरकर, वर्ष 1987
31. कुछ देश बीती कुछ आप बीती– दीक्षित गोपीनाथ, वर्ष 1988
32. नीड़ का निर्माण फिर भी– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1988
33. चीड़ों पर चाँदनी– निर्मल वर्मा, वर्ष 1988
34. अर्धकथा– डॉ. नगेन्द्र, वर्ष 1988

षष्टम चरण

सन् 1989–1999 तक

1. वे दिन वे लोग, कुछ अपनी कुछ जग की, वर्ष 1989
2. क्या भूलूँ क्या याद करूँ– हरिवंशराय बच्चन, वर्ष 1989
3. मेरे सात जन्म (भाग–तीन)– हंसराज रहबर, वर्ष 1989
4. आधी हकीकत आधा फसाना– राजकपूर, वर्ष 1990
5. वे सफल कैसे हुए आत्मकथ्य : 51 लेखक पत्रकारों के– सं. रूपनारायण, वर्ष 1990
6. बीती याद– परिपूर्णानंद– वर्मा, वर्ष 1990
7. आँखों देखी– रत्न सिंह शाडिल्य , वर्ष 1990
8. मैं मेरी कहानी– श्रवण कुमार, वर्ष 1990
9. महान कलाकर खलील जिब्रान– हरिप्रसाद नायक, वर्ष 1990
10. मेरे सात जन्म (भाग–चार)– हंसराज रहबर, वर्ष 1991
11. उत्तर पथ– रामदरश मिश्र, वर्ष 1991
12. सहचर है समय– रामदरश मिश्र, वर्ष 1992
13. जो मैंने जिया– कमलेश्वर, वर्ष 1992
14. मेरा जीवन : ए वतन– काका हाथरसी, वर्ष 1993
15. छदारासिंह : मेरी आत्मकथा– अनुवादित, वर्ष 1993
16. कहो व्यास कैसे कटी– गोपाल प्रसाद व्यास, वर्ष 1994
17. अपने अपने पिंजर– नैमिशराय, वर्ष 1995
18. जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि, वर्ष 1997
19. यादों के चिराग– कमलेश्वर, वर्ष 1997
20. जलती हुई नदी– कमलेश्वर, वर्ष 1999
21. कूड़ा कबाड़ा– अजीत कौर, वर्ष 1999

22. बूंद बावड़ी– पद्मा सचदेव, वर्ष 1999
23. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, वर्ष 1999
24. लगता नहीं हैं दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, वर्ष 1999
25. टूटते बनते दिन– रामदरश मिश्र, वर्ष 1999
26. दीवारों के बीच– निदा फ़ाजली, वर्ष 1999

सप्तम चरण

सन् 2000–2015 तक

1. सीधी राह चलता रहा– द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, वर्ष 2000
2. आत्मसरोवर– ओमप्रकाश अग्रवाल, वर्ष 2000
3. आत्मकथा – कर्णसिंह, वर्ष 2000
4. गालिब छुटी शराब–रवीन्द्र कालिया, वर्ष 2000
5. दीवारों के, बाहर– निदा फ़ाजली, वर्ष 2001
6. मुड़ मुड़ के देखता हूँ– महेश भट्ट, वर्ष 2001
7. मैं जसदेव सिंह बोल रहा हूँ– जसदेव सिंह, वर्ष 2001
8. अपनी कहानी अपनी जुबानी– एम. एफ. हुसैन, वर्ष 2001
9. कहि न जाय का कहिए– भगवती चरण वर्मा, वर्ष 2001
10. और वह जो यथार्थ था– अखिलेश, वर्ष 2001
11. अग्नि की उड़ान– डॉ. अब्दुल कलाम, वर्ष 2002
12. जिंदगी कर कारवाँ– चन्द्रशेखर, वर्ष 2002
13. तिरस्कृत– सूरजपाल चौहान, वर्ष 2002
14. कस्तूरी कुण्डल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, वर्ष 2002
15. कुछ कही कुछ अनकही– शीला झुनझुनवाला, वर्ष 2002
16. मेरा संघर्ष (अनुवाद)– हिटलर, वर्ष 2002

17. आज के अतीत– भीष्म सहानी, वर्ष 2003
18. पाव भर जीरे में ब्रह्म भोज– अशोक वाजपेई, वर्ष 2003
19. मैंने मांडू नहीं देखा– स्वदेश दीपक, वर्ष 2003
20. द्विखंड़ित, (भाग– तीन) (अनुवाद)– तस्लीमा नसरीन, वर्ष 2004
21. वे अंधेरे दिन (भाग– चार) (अनुवाद)– तस्लीमा नसरीन, वर्ष 2004
22. देहरि भई विदेस– संपादक राजेन्द्र यादव, वर्ष 2005
23. वसंत से पतझर तक– रवीन्द्र त्यागी, वर्ष 2005
24. एक अंतहीन तलाश– विष्णु प्रभाकर, वर्ष 2007
25. गुजरा कहाँ–कहाँ से– कन्हैया लाल नंदन, वर्ष 2007
26. यों ही जिया– डॉ. देवेश ठाकुर, वर्ष 2007
27. गुड़िया भीतर गुड़िया– मैत्रेयी पुष्पा, वर्ष 2008
28. पानी बीच मीन प्यासी– संपादक ओम थानवी, वर्ष 2010
29. मेरी आपबीती (अनुवाद)– बेनज़ीर भुट्टो, वर्ष 2010
30. कहाँ तक कहें युगों की बात–मिथलेश्वर, वर्ष 2011
31. अपने–अपने अज्ञेय (खंड–दो)–संपादक ओम थानवी, वर्ष 2012
32. कुछ मैं कुछ वे– रामवृक्ष बेनीपुरी, वर्ष 2012
33. विवेकानंद की आत्मकथा– मणिशंकर मुखर्जी, वर्ष 2012
34. दर्द जो सहा मैंने – आशा आपराद, वर्ष 2013
35. मेरा जीवन संघर्ष– अब्दुल गफ्फार खा, वर्ष 2013
36. आत्म स्वीकृति– नरेन्द्र कोहली, वर्ष 2014
37. आरोह अवरोह– सुषम वेदी, वर्ष 2014
38. एक जिंदगी काफी नहीं– के नटवर सिंह, वर्ष 2014
39. आपहुदरीः एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा– रमणिका गुप्ता, वर्ष 2014
40. पथ– राजेश माहेश्वरी, वर्ष 2014

41. मेरी कहानी– मैरी कॉम, वर्ष 2014
42. मन सर्जन– डॉ. अनीता गाँधी, वर्ष 2014
43. जाग चेत कुछ करो उपाई– मिथिलेश्वर, वर्ष 2015
44. साहस भी संकल्प एक आत्मकथा– जनरल बी. के. सिंह, वर्ष 2015

दलित आत्मकथा साहित्य

1. मैं नंगी हूँ– भगवानदास दास, (प्रथम दलित आत्मकथा)
2. अपने–अपने पिंजर– मोहन दास नैमिशनारायण, वर्ष 19953
3. जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि– मोहन दास नैमिशनारायण, वर्ष 1997
4. झोंपड़ी से राजभवन– माता प्रसाद, वर्ष 1997
5. चमारका– श्योराज सिहं बेचैन, वर्ष 1998
6. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, वर्ष 1999
7. मेरा सफर मेरी मंजिल– डी. आर. जाटव, वर्ष 2000
8. जाति आरक्षण– कैलाशनाथ, वर्ष 2000
9. अपने–अपने पिंजर (भाग–दो)– मोहन दास नैमिशनारायण, वर्ष 2000

स्त्री आत्मकथा साहित्य

1. दस्तक जिंदगी की– प्रतिभा अग्रवाल, वर्ष 1990
2. मोड़ जिंदगी का– प्रतिभा अग्रवाल, वर्ष 1996
3. जो कहा नहीं गया– कुसम अंसल, वर्ष 1996
4. कूड़ा कबाड़ा– अजीत कौर, वर्ष 1999
5. बूंद बावड़ी– पद्‌मा सचदेव, वर्ष 1999
6. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री, वर्ष 1999
7. लगता नहीं हैं दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री, वर्ष 1999
8. कस्तूरी कुण्ल बसै– मैत्रेयी पुष्पा, वर्ष 2002

9. कुछ कही कुछ अनकही– शीला झुनझुनवाला, वर्ष 2002
10. गुड़िया भीतर गुड़िया– मैत्रेयी पुष्पा, वर्ष 2008
11. आरोह अवरोह– सुषम वेदी, वर्ष 2014
12. मेरी कहानी– मैरी कॉम, वर्ष 2014
13. आपहुदरीः एक जिद्दी लड़की की आत्मकथा– रमणिका गुप्ता, वर्ष 2014

शोध संक्षेपण

शोध संक्षेपण

इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखनः संघर्ष और सृजन" शोध में आत्मकथाएं, आत्मकथांश और आत्मकथ्य लेखिकाओं की आत्मसजगता के साथ–साथ उनकी 'असामान्यता' और 'असाधारणता' को सामने लाते हैं। परन्तु सबका जीवन एक समान नहीं है। इन सबके सुख–दुख, उल्लास–अवसाद, जीवन और जगत के प्रति दृष्टि भी एक जैसी नहीं है। किसी का जीवन सुख से भरा है जैसे मैरी कॉम, किसी का दुख और अवसाद से भरा है जैसे– कृष्णा अग्निहोत्री, इन्हीं आत्मकथाओं के नारी गूढ़ की गहराई का सार प्रस्तुत है।

इस शोध कार्य में 2001 से 2014 तक प्रकाशित, चुनिंदा, चर्चित एवं सर्वमान्य महिला साहित्यकारों के साथ शोध चयन कमेटी के निर्देशानुसार दलित कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999 को भी शोध में सम्मिलित करने का निर्देश दिया गया है। शोध हेतु जिन आत्मकथाओं को लिया गया है वे हैं– मैत्रेयी पुष्पा– कस्तूरी कुण्डल बसै, 2002; रमणिका गुप्ता– हादसे, 2005; सुशीला राय– एक अनपढ़ कहानी, 2005; प्रभा खेतान– अन्या से अनन्या, 2007; मन्नू भण्डारी– एक कहानी यह भी, 2007; मैत्रेयी पुष्पा– गुड़िया भीतर गुड़िया, 2008; कृष्णा अग्निहोत्री– लगता नहीं है दिल मेरा, 2010; मैरी कॉम– मेरी कहानी, 2014 और कौसल्या बैसंत्री– दोहरा अभिशाप, 1999 को लिया गया है।

प्रथम अध्याय, महिला आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा में आत्मकथा लेखनः अवधारणात्मक परिचय, आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति एवं अर्थ, आत्मकथा की परिभाषाएँ, आत्मकथा, आत्मकथा के रचना तत्व– आत्म तत्व, कथा तत्व, परिवेश, अतीत का रूपान्तरण, आत्मकथा के तत्व– कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद, आत्मकथा लेखन की विकास यात्रा– संक्षिप्त परिचय, त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, हिन्दू नारी की स्थिति का सर्वेक्षण, विभिन्न कालों में नारी की

स्थिति– वैदिक काल, उत्तर–वैदिक काल, धर्मशास्त्र काल, मध्यकाल, ब्रिटिश काल– पारिवारिक क्षेत्र, सामाजिक क्षेत्र, आर्थिक क्षेत्र, नारी जीवन का पारिवारिक वातावरण, हिन्दी साहित्य में आत्मकथा की विकास यात्रा, आत्मकथा : जीवनी सहधर्मी विधाएं, हिंदी साहित्य की संक्षिप्त जीवनी–साहित्य, महिला आत्मकथा लेखन, इक्कीसवीं सदी का महिला आत्मकथा लेखन का परिचय, पारिवारिक जीवन, सम्बन्धों में कटुता, पुरुष का उत्तरदायित्व, स्वार्थी प्रवृत्ति, पत्नी पर अत्याचार, विचार व प्रथाएं, नारी शिक्षा, सदिगत परम्पराओं पर प्रगतिशील विचारों का प्रभाव, सामाजिक तथा मानसिक दृष्टिकोण में परिवर्तन पर शोध किया गया है।

आत्मकथा शब्द की उत्पत्ति के संबध में संस्कृत आचार्यों ने कहा है कि इस शब्द की उत्पत्ति ''आत्मन और कथा'' से हुई है। आत्मकथा मानव मन रूपी जगत में स्थित वह स्थाई प्रज्ञा है जो समय आने पर अपने प्रकाश द्वारा आत्मकथाकार की लेखनी से निकलकर पाठकों एवं समाज को आलोकित करती है। आत्मकथा के रचना तत्व हैं– आत्म तत्व, कथा तत्व, परिवेश और अतीत का रूपान्तरण। आत्मकथा के तत्व है– कथावस्तु, चरित्र चित्रण, देशकाल वातावरण, संवाद। प्रस्तुत शोध की आत्मकथाओं का सार इस प्रकार है।

कस्तूरी कुण्डल बसै

मैत्रेयी पुष्पा, 2002 उत्तर आधुनिकता की और इशारा करती आत्मकथा है। इसमें वह लिखती हैं–''यही है हमारी कहानी'' मेरी और मेरी माँ की कहानी जिनकी पारिवारिक स्थिति बड़ी ही दयनीय व कष्टप्रद बताई गई। घर में कई–कई दिन तक खाने का अभाव। परिवार अत्यंत गरीबी में जी रहा है। अंग्रेजों द्वारा लगान वसूला जाता है तथा जमींदारों द्वारा घरों को लूटा जाता है। गरीबी व अत्याचार से तंग आकर लेखिका के पिता उसकी माँ को छोड़कर चले जाते हैं। इसी तंग हाल में भी कस्तूरी का ब्याह कर दिया जाता है। ससुराल में पति ब्याह के लिए आठ सौ रुपये उधार लेकर ब्याह कर कस्तूरी को गर्भवती कर साहूकार के डर से भाग

जाता है। पीहर की तरह ससुराल की भी स्थिति समान ही होती है। कुछ समय बाद ही पति की मृत्यु हो जाती है तथा कस्तूरी की गोद में अठारह महीने की अबोध बालिका रह जाती है।

कस्तूरी के पति द्वारा छोड़कर जाने तथा उसके विधवा हो जाने पर समाज की परवाह न करते हुए वह रेशमी वस्त्र व गहने पहनती है। अपनी जमीन की रक्षा के लिए स्वयं अपने को तैयार करती है। कस्तूरी रोज–रोज का झोला लेकर मीरांबाई बनकर फिरती है। माँ उसका विरोध करती है। वह माँ को सबसे बड़ा दुश्मन मानती है। मायके से रिश्ता काट देती है। मैत्रेयी द्वारा संगीत की ओर रुझान का वह विरोध करती है। मैत्रेयी के कुछ बड़ी होने पर वह उसकी चोटी काट देती है। इस समय मैत्रेयी माँ को दुश्मन समझती है। मैत्रेयी द्वारा बी.ए. में पढ़ते हुए सोलह साल की उम्र में ब्याह करने की कहना माँ के सपनों पर चोट करने जैसा था परन्तु कस्तूरी उसकी स्वाभाविक इच्छाओं को कठोर उपहास में बदल देना चाहती है। माँ को उसकी साधारण गृहस्थी से चिढ़ हो रही है। माँ मैत्रेयी से कहती है–''स्त्रीत्व माने स्त्री शक्ति तू उस स्त्री शक्ति को गंवाने पर तुली है, मुसीबत तो यही है'' कस्तूरी मैत्रेयी को नौकरी लगाकर आत्मनिर्भर बनाना चाहती है परन्तु मैत्रेयी ब्याह करना चाहती है। गाँव का मुखिया भी मैत्रेयी के विवाह की बात करता है परन्तु कस्तूरी उसका विरोध करती है। एक दिन दर्जी का बेटा मैत्रेयी को प्रेमपत्र लिखता है और माँ उसकी औकात बताकर उसका विरोध प्रकट करती है। कस्तूरी दहेज न देने की कसम से बंधी होने पर समाज व परिवार का विरोध करती है तथा किसी की भी बात नहीं सुनती। शादी के ऐसे समय पर उसकी माँ कस्तूरी थप्पड़ तक मार देती है ऐसी समय पर मैत्रेयी को माँ सबसे बड़ी दुश्मन लगती है। शादी के पश्चात् पति द्वारा उसका निरादर व तिरस्कार करने पर एक दिन वह उसका विरोध प्रदर्शन भी करती है क्योंकि जिस विवाह सुख की

उसने कल्पना की थी। पति उसे उससे वंचित कर रहा था जिसके कारण पति–पत्नी के रिश्ते में प्रतिरोध की स्थिति बन गयी थी।

हादसे

रमणिका गुप्ता, 2005 की आत्मकथा हादसों के मुठभेड़ों की शृंखला है। इसमें अपने आस–पास के कई लोगों का अक्स है। मुख्य सरोकार आदिवासी जीवन से रहा है। लेखिका खुद को कोयले की रानी और पानी की रानी बताती है। इसके पीछे यह तथ्य है कि उन्होंने झारखंड के आदिवासी बहुल क्षेत्रों में कोयले और पानी के लिए अनवरत संघर्ष किया है। आपने पुरुषवादी पितृसत्ता और सामन्तवादी मानसिकता को धता बताई है। आपने एक ओर स्त्री स्वाभिमान की लड़ाई लड़ी है तो दूसरी ओर दलितों पर होने वाले भेदभावों का समाधान प्रशस्त किया है।

मजदूर संगठनों में काम करती है। वह खादान मजदूरों, दलितों, आदिवासियों एवं औरतों की समस्याओं को सुलझाने की कोशिश करती रही है।

एक अनपढ़ कहानी

सुशीला राय, 2005 आत्मकथा में पति, बच्चों के साथ अकेला रहता है। बच्चों को संभालकर ऑफिस भी जाता है। पति–पत्नी दोनों तालमेल बनाकर रहने की कोशिश करते हैं। पति पर निर्भर पत्नी का जीवन दुःख का अध्याय होता है। पति के साथ उसकी खुशी जुड़ी हुई होती है। पति के बिना उसका जीवन दुःख यातना से भर जाता है। आत्मकथा की पात्र चम्पा के पति की मृत्यु से उसका जीवन दुःख से भर जाता है। वह तीन बच्चों की परवरिश की कल्पना से दुःखी होती है। विधवा नारी का जीवन असुरक्षित बनता है। बच्चों की चिन्ता और स्वयं की रक्षा के पाटों में उसकी जिन्दगी पिस जाती है।

अन्या से अनन्या

प्रभा खेतान, 2007 लिव इन रिलेशनशिप में है या अविवाहित पत्नी है। प्रभा खेतान ने अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में प्रेम को स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया तथा जिससे प्रेम किया जीवनभर उसका साथ भी दिया परन्तु डॉ. सर्राफ न तो उससे प्रेम कर सके, ना रिश्ते को मान सके बल्कि बिना नाम के रिश्ते पर भी शक करते थे। जब प्रभा जी व्यवसाय से जुड़ी तथा आर्थिक रुप से सुदृढ़ होने लगी तो जो सम्मान उन्हें अपमानित करता था उसी ने उन्हें पद प्रदान किया व सम्मान दिया। उन्होंने स्वयं अपनी पहचान बनायी। लेखिका अपना सर्वस्व देकर भी डॉ. सर्राफ के परिवार की देखभाल एक पत्नी के रूप में करती है परन्तु अन्ततः उनके रिश्तों को कोई भी स्वीकार नहीं करता। वह मानती है कि एक स्त्री का विवाह करना आवश्यक है।

एक कहानी यह भी

मन्नू भंडारी, 2007 में जिस लेखक को अपना आदर्श मानती है तथा उसके द्वारा विवाह का प्रस्ताव प्राप्त होता है तो उनकी कल्पना साकार होते हुए नजर आती है परन्तु विवाह के पश्चात् 'समानान्तर जिन्दगी' का जो आधुनिक पैटर्न पति द्वारा दिया जाता है उससे उनकी जिन्दगी रेगिस्तान में जल की तलाश में फिरने वाले मृग के समान हो जाती जिसे पति तो नजर आता है परन्तु उसका प्रेम तथा साथ उन्हें प्राप्त नहीं होता। उनके रिश्ते में एक ठहराव व ठण्डापन ही रह गया था परन्तु प्रेम करने की विवशता के कारण पति का साथ छोड़ने में उन्हें तीस वर्ष लग गये। धीरे–धीरे उन्होंने अपने जीवन को पुनः साहित्य की ओर अग्रसर किया तथा उन्हें सफलता प्राप्त होती गई।

गुड़िया भीतर गुड़िया

मैत्रेयी पुष्पा, 2008 एक स्त्री के भीतर की अनेक स्त्रियों की परतों के व्यक्तित्व का उद्घाटन है। लेखिका पर कबीर और निर्गुण काव्यधारा का प्रभाव परिलक्षित है। अध्यायों के शीर्षक कबीर काव्यों की पंक्तियों पर आधारित हैं। माँ एवं पति के प्रति विरोध एवं आक्रोश की अभिव्यक्ति द्वारा वह अपने पाठकों तक यह संदेश पहुँचाना चाहती हैं कि वे अपनी नायिका की तरह पुरुष सत्ता के प्रति विद्रोहिणी हैं। डॉ. शर्मा को सारंग और मैत्रेयी में साम्य दिखाई देता है। दाम्पत्य जीवन में जो समझबूझ और समायोजन जरूरी है, वह लेखिका और डॉ. शर्मा के पास है। मैत्रेयी की रचनात्मकता लेखन ही नहीं गृहस्थ जीवन के संतुलन में भी सक्रिय दिखाई देती है। आज मैत्रेयी को तीन बेटिया हैं, उनके तीन पीढ़ियों में बेटा नहीं है। मैत्रेयी की पहली बेटी नम्रता है, वह डॉक्टर है। दूसरी बेटी मोहिनी भी डॉक्टर है, उसने एम.एस. किया है। तीसरी बेटी सुजाता है, वह भी डॉक्टर है। लेखिका विवाह के बाद अपने पारिवारिक जीवन में उलझ गई कि उसे अपने पढ़े–लिखे होने का अहसास नहीं रहा। वह घर की सभी मर्यादाओं का पालन करती है। उन्होंने वैवाहिक जीवन के सीमित दायरे में जीना पसन्द किया। उन्होंने अपनी बेटियों को अपने पैरों पर खड़ा किया। वह यह मानती थी कि लड़की पढ़–लिखकर कितने ही ऊँचे ओहदे पर काम करती हो, लेकिन परिवार उससे छूटता नहीं है। घर के सभी काम उसे ही करने पड़ते हैं। विकास का मतलब परिवार की ओर अनदेखा करके मनमानी करना ही नहीं बल्कि पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए जितनी प्रगति कर पाये, उसी में मनुष्य जीवन की सफलता है। परिवार के टूटने–बिखरने की कीमत पर विकास, सुधार या सामाजिक प्रतिबद्धता की बातें करना खोखलापन है। ग्रामीण संस्कारों वाली मैत्रेयी पति के साथ देश की राजधानी दिल्ली पहुँचती है। पति, पत्नी को आधुनिक बनाना चाहता है और नियन्त्रण भी रखना चाहता है। पति द्वारा मैत्रेयी पर थोपी गई आधुनिकता

दिखावटी और सीमित है। मैत्रेयी घर–गृहस्थी के पिंजरे में बन्द मैना–सी जिन्दगी नहीं जीना चाहती। वह उन्मुक्त होकर उड़ान भरना चाहती है। जो उसकी उड़ान में बाधा डालता है, उससे उसकी टकराहट होती रहती है। इस दृष्टि से मैत्रेयी पुष्पा का जीवन सराहनीय है।

लगता नहीं है दिल मेरा

कृष्णा अग्निहोत्री, 2010 की आत्मकथा पितृसत्तात्मक समाज की लिंग भेद की पक्षपातपूर्ण नीति के दुष्परिणामों की ओर संकेत करती है। उनको भोग्या बनना या सौदा करना रास नहीं। उसने दो बार शादी कर संतुलित एवं संस्कारबद्ध जीवन जीने की कोशिश की थी। सुन्दर स्त्री के प्रति कामुक पुरुषों की दूषित निगाहें उसके जीवन को संकटग्रस्त बनाती है। हर किसी पर विश्वास करने की प्रवृत्ति उन्हें अनावश्यक उलझनों के जाल में फँसाती है। उनमें लोलुप व्यक्तियों को कड़ी फटकार देने के साहस की कमी नहीं है। किसी व्यक्ति की बुराइयों का उल्लेख करते हुए वे अच्छे गुणों का भी निर्देश करती है। हिन्दी लेखिका का जीवन निष्कंटक और सुखदायी नहीं है। पुरुष का अहं उसके पथ की दीवार है।

दोहरा अभिशाप

कौसल्या बैसंत्री, 1999 दलित नारी और समाज की उन्नति चाहती है। कौसल्या बैसंत्री को सामाजिक अन्याय–अत्याचार का शिकार होना पड़ा है। उसके व्यक्तित्व निर्माण में सर्वाधिक बाधाएँ उनके अपने समाज के लोगों ने ही निर्माण की थी। उनकी बिरादरी के लोगों ने ही उन्हें पढ़ने से रोका था। इतना ही नहीं बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा से काम करने वाले सहयोगियों ने जबरन यौनाचार करना चाहा था। बस्ती के लोगों ने उसका जीना मुश्किल कर दिया था। वह उच्च वर्ण की नारी से विशेष उम्मीद नहीं रखती क्योंकि उन्होंने ऑल इण्डिया प्रोग्रेसिव विमेन्स एसोशिएशन में साथ नहीं दिया था। उन्होंने भारतीय महिला जागृति समिति द्वारा दलित महिलाओं की समस्याओं को उठाना चाहा। दिल्ली की बहुत सारी

महिला संस्थाओं को निमंत्रित किया गया। वह राजनीतिक जागरण से परिचित है वह मानती है कि–''अगर हम स्वाभिमान से अपनी उन्नति करना चाहते हैं, तब हमें अपने पाँवों पर खड़ा होकर, अपने पर भरोसा रखकर, आगे बढ़ना होगा। हमें अपने अन्दर शक्ति पैदा करनी होगी। किसी का सहारा लेकर चलने से काम नहीं बनेगा। तभी दलित महिला का उत्थान हो सकता है। उसकी पहली मुठभेंट सवर्ण पुरुष सत्ता से नहीं तो दलित पुरुष सत्ता से है। वह नारी जागरण के कारण पुरुष गुलामी को तोड़ती है। वह पति को छोड़कर बेटे के साथ रहती है। शिक्षा और जागरण के कारण वह बच्चों के जन्म को भगवान की मर्जी मानकर स्वीकारने का विरोध करती है। वह जान चुकी है कि ऐसी मानसिकता का कारण अशिक्षा और अज्ञान है।

सार रूप में आत्मकथा लेखन केवल किसी के जीवन की कुछ घटनाओं का वर्णन मात्र नहीं होता है बल्कि नारी आत्मकथा में पात्रों का उल्लेख, उस पर होने वाले अत्याचारों, मन की कुण्ठा, समाज व परिवार तथा अन्यों से प्राप्त तिरस्कार, व्यक्तियों द्वारा दिये गये धोखे, मान–सम्मान व प्रतिष्ठा पर आँच, मन की भावनाओं, समाज व परिवार में उपयुक्त स्थान प्राप्त न होने, स्त्री होने के नाते कई प्रकार की सुविधाओं से वंचित रहने के कारण, समाज में व्याप्त कई प्रकार के असामाजिक कृत्यों से परेशान होकर प्रेरणा के रूप में अपने को स्थापित करना।

इस प्रकार अपने जीवन की सच्ची व कड़वी यादों को आत्मकथा में वर्णित किया जाता है, जिससे समाज में एक नयी सोच का उदय हो सके। समाज में महिलाओं को सम्मान की दृष्टि से देखा जाये। आज भी समाज में महिलाओं को वह स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, जो स्थान पुरुष को प्राप्त है। बालिका शिक्षा व नारी उत्थान तथा महिला सशक्तिकरण ने समाज में एक नयी दिशा व सोच की नींव रखी है। जो आगे जाकर मील का पत्थर साबित होगा।

द्वितीय अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में महिलाओं की सामाजिक स्थिति उनका संघर्ष एवं सृजन में पारिवारिक स्थिति– समानान्तर जिन्दगीः आधुनिक पैटर्न, आजन्म उपेक्षिता, अवैद्य रिश्ते समाज में अस्वीकृत, बीती ताहिं बिसार, आगे की सुधि लेय, अनवरत रुदन, समाज की मानसिकता में परिवर्तन, स्वनिर्णय की हिम्मत, उन्मुक्त उड़ान की ओर नारी, दिखावटी आधुनिकता, सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास, परिवार में बड़ों का दबदबा, सहनागरिक का दर्जा, परिवार में प्रमुख स्त्रियों द्वारा चुप रहना व कार्य करना, पारिवारिक निर्णय केवल पुरुष प्रधान, स्त्री के प्रति संकीर्ण मानसिकता, पत्नी का केवल शारीरिक शोषण, सामाजिक मर्यादा व परम्पराओं का ढोंग, पर्दा प्रथाःएक प्रश्नचिह्न, ससुराल ही वास्तविक घर, जनाजा (अर्थी) ससुराल से ही उठे, पति परमेश्वर, स्त्री अशिक्षा, विभिन्न सम्बन्ध– पिता–पुत्र का सम्बन्ध, पति–पत्नी का सम्बन्ध, छात्र–अध्यापक का सम्बन्ध, अन्य सम्बन्ध, सहानुभूति संबंध, पारिवारिक संबंध, अनुभव व आत्मीयता का संबंध, पुत्र मोह संबंध, अनैतिक संबंध, पुरुष प्रेमिका संबंध, शिक्षा का बढ़ता स्तर व बढ़ता आत्मकथा लेखन– इन्टरनेट जागरुकता की एक सीढ़ी, नारी हौसले में बुलंदी, सामाजिक विद्रोह और महिला आत्मकथा लेखन– दहेज प्रथा की समस्या, दहेज का उद्देश्य, वधू मूल्य, दहेज के सामाजिक प्रभाव, दहेज से हानि को दर्शाया गया है।

इक्कीसवीं सदी में महिलाओं की स्थिति विवादास्पद प्रतीत होती है। एक ओर उन्हें स्वतंत्रता प्रदान करना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता को बाँधना भी चाहते हैं। यह स्थिति तो उस प्रकार की होगी जैसी पिंजरे में कैद तोते की होती है। निम्न वर्ग में इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में स्थिति दयनीय थी। महिलाओं के प्रति उनमें आत्मसम्मान या प्रतिष्ठा का गुण बहुत ही कम उपस्थित था। सामाजिक परम्पराओं व रीतिरिवाजों तथा आडम्बरों में उसे बाँधकर रखा जाता था। उच्च कुल की महिलाओं ने कुछ सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण घर से बाहर

निकलकर अपना स्वयं का एक मुकाम हासिल किया। कुछ राजनीतिक क्षेत्र में तो कुछ ने साहित्यिक क्षेत्र में। पुरुष की मानसिकता में अभी भी पूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है या सोच में उच्चता प्रदर्शित नहीं होती है। लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में बेटियों को शिक्षा प्रदान करने से समाज की मानसिकता में कुछ परिवर्तन आया है। शहरी सभ्यता और युगीन परिवेश के प्रभाव से ग्रामीण नारी की आदतों एवं व्यवहारों में परिवर्तन आया है। वह भौतिक सुख–साधनों की प्राप्ति की कोशिश करती है। उसकी मानसिकता और सोच–विचार में परिवर्तन आया है। इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के कुछ वर्षों के बाद सामाजिक तौर पर कुछ बदलाव व परिवर्तन दिखाई देने लगे। शिक्षित वर्ग में लड़का व लड़की के मध्य भेद जैसी कुरीतियों व असमानता ने अपना प्रभाव छोड़ना प्रारम्भ कर दिया था। शिक्षा के द्वारा जीवन में उजाले की एक किरण या दिशा के सूत्र से धीरे–धीरे बालिकाओं को शिक्षा की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा मिलने लगी। समाज से प्रताड़ित, तिरस्कृत, विधवा आदि महिलाओं की ओर भी समाज का ध्यान आकर्षित होने लगा। नीति व कानून की ओर से सहायता प्रदान करने, योजनाओं में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने, स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा समाज में उत्थान की ओर बढ़ते कदमों ने महिला सशक्तिकरण को एक बल प्रदान किया। जिससे नवीन दिशा का प्रादुर्भाव हुआ। अब महिला घर की चौखट को पार कर विभिन्न क्षेत्रों में अपना स्वयं का अस्तित्व व मुकाम बनाने की कोशिश करने लगी।

सार रूप में आत्मकथाओं के कथ्य से प्रतीत होता है कि समाज में पुरुष अहम व अभिमान में ही जीवन जीता है। उसका अभिमान व अहम, स्त्री के ऊपर अपना हक समझता है। वह उसे मात्र खिलौना या उपभोग की वस्तु मानता है। वह यही नहीं मानता है कि एक नारी भी एक मानव है उसकी अपनी मान–मर्यादा, भावनाएं होती है तथा वह उसकी प्रेमिका, अर्द्धांगिनी, पत्नी अथवा अन्य रूपों में हमेशा हर परिस्थिति में पुरुष का साथ निभाती है।

मैंने यह महसूस किया है कि एक पुरुष अधिकांश नारी के प्रति मानसिक रूप से विकृति लिए हुए होता है तथा वह उसे हर प्रकार से प्रताड़ित या अत्याचार करते हुए सन्तुष्टि प्राप्त करने की कोशिश करता है। उसे हर नारी एक समान ही प्रतीत होती है घर, परिवार बनाने तथा भरण–पोषण के उत्तरदायित्व से वह हमेशा उन्मुक्त रहना चाहता है। अपने शरीर व मन के कुंठित व घृणित विचारों को वह साकार करने की कोशिश करता है। स्वयं में कमियां होते हुए भी वह हमेशा नारी को दोषी मानता है उसे ही उत्तरदायी ठहराता है। स्वयं दुश्चरित्र होते हुए स्त्री को दुश्चरित्र बनाने व दोषी ठहराने की पूर्ण कोशिश करता है। अतः पुरुष भावनाओं रहित, कठोर प्रतिमानों का पुतला मात्र है।

तृतीय अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं की राजनीतिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन में इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाओं में राजनीतिक हस्तक्षेप– बयालीस का आंदोलन, पैंतालीस का आंदोलन, नक्सलवाद का विरोध, सैंतालीस में भारत की आजादी का संग्राम, स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भूमिका, उन्नीस सौ सत्तर की राजनीति, उन्नीस सौ पचहत्तर की राजनीतिक स्थिति, राजनीति में वंशपरम्परावाद का विरोध, आपातकाल में राजनीतिक ह्रास, खेलों में राजनीतिक हस्तक्षेप, पुरस्कारों में राजनीतिक हस्तक्षेप, दलित स्त्रियां अपनी लड़ाई स्वयं लड़े, माफिया से मुकाबला, महिलाओं की राजनीतिक स्थिति– राजनीति में महिलाओं का दबदबा, महिलाओं को वोट देने का अधिकार, संविधान द्वारा विभिन्न वर्गों व जातियों को समानता, पिछड़े वर्गों को जीवन की मुख्य धारा से जोड़ने की पहल, महिला आरक्षण बिल, इंदिरा गाँधीःएक प्रेरणा स्रोत, खेलों द्वारा राजनीति में पहचान, मणिपुर में एक रोड का नाम मैरीकोम, साहित्य में राजनीति, सरकार का हास्यास्पद कदम : आपातकालीन राजनीति, भारतीय दूतावास में राजनीति, जातिगत राजनीति, पुरुष मानसिकता की दबाव की स्थितियाँ– कथनी–करनी में अंतर, औरत के प्रति सोची समझी राजनीतिक परम्परा,

राजनीति शारीरिक शोषण का कटघरा, राजनीति में आने वाली औरत 'कलेवा', राजनीति में दलालों का जाल, राजनीति में आने वाली स्त्रियां 'फार ग्रांटिड', शारीरिक शोषण : ऊपर जाने की राजनीतिक सीढ़ी, अखबार (मीडिया) की घटिया मानसिकता, वामपन्थी पार्टियों की पूर्वाग्रही सोच, नारी ही नारी की दुश्मन, नारी जागरण का समय, दृढ़ आत्मविश्वास, पुरुषों के गैरकानूनी कुकर्मों की पोल खोलना, पुरुष राजनीतिक मित्रों की भीतरघात, कब्जाकरण का विरोध, स्त्री के चिह्न कायरता के प्रतीक नहीं, पुरुष सदस्यों को जुझारू औरत बर्दाश्त नहीं, लम्बी राजनीतिक पारी, स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना को दर्शाया है।

राजनीतिक तथा सामाजिक स्तर पर महिलाओं की भागीदारी शिक्षा तथा जागृति के कारण बढ़ती जा रही है। स्वतंत्रता संग्राम में कस्तूरबा गाँधी को महिलाओं के लिए खास भूमिका, सरोजनी नायडू जैसी महिलाओं द्वारा राजनीतिक तथा महिलाओं के प्रति सामाजिक चेतना, जागृति उत्पन्न करने के कारण समाज में महिलाओं के प्रति भी चेतना उत्पन्न हुई। इक्कीसवीं शताब्दी में अधिकांश जो महिलाएं राजनीति के क्षेत्र में आयी तथा उनके द्वारा जो आत्मकथाएं लिखी गई। वह केवल राजनीतिक क्षेत्र में अपनी पहचान बनाये जाने से संबंधित नजर आती है। उनमें भावनाओं की कमी तथा जीवन में होने वाले उतार–चढ़ाव, दुःख–दर्द, पीड़ा आदि का समायोजन कम ही दृष्टिगत होता है। केवल अपने जीवन के अंशों को समाज के सामने प्रदर्शित करने के लिहाज से लिखी गई हैं। अधिकांश आत्मकथाओं में एक नारी द्वारा नारी का ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया कि एक नारी किस प्रकार से अपने ही परिवार के सदस्यों तथा समाज द्वारा शोषित की जाती है।

सारतः सभी रचनाओं में नारी के राजनीतिक अस्तित्व का जीवंत चित्रण परिदृष्टित होता है कि वास्तव में नारी का जीवन कितना कठिन है। इनमें नारी की संवेदनाओं का मार्मिक वर्णन दिखाई देता है। इन रचनाकारों ने अपने जीवन की

उन कठोर राजनीतिक यातनाओं व अत्याचारों का वर्णन इनमें किया है जो जीवन में उन्होंने सहन किया है। अधिकांश में इस बात का राजनीतिक चित्रण हमें दिखाई देता है कि राजनीतिक परिस्थितियाँ एक नारी से सब कुछ करवा लेती हैं। दूसरों के लिए या परिवार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देती हैं, फिर भी समाज उन्हें सम्मान नहीं दे पाता तथा इन्हीं संबंधों से उन्हें तिरस्कार, दर्द प्राप्त होता है इनमें पुरुष प्रधान समाज की कठोरता का आभास होता है। हम मनुष्य होकर भी नारी को मानवीय पद प्रदान करने से कतराते हैं। यह पुरुष के गौरव को कम नहीं करता परन्तु अहंकार व्यक्ति को वह करने नहीं देता अतः यह आवश्यक है कि अब समाज नारी के पद व गरिमा को बनाये रखे।

उसे राजनीति में सक्रिय भागीदारी निभाने के लिए समाज, परिवार द्वारा मन की स्वतंत्रता प्राप्त हो, जिससे वह अपने पंखों को खोलकर उड़ सके। अपनी प्रतिभा को उड़ान प्रदान कर सके अपने सपनों को वास्तविक धरातल पर उकेर सके। जीवन की कल्पनाओं को साकार कर सके। राजनीति में अपना परचम फहरा सके।

चतुर्थ अध्याय, नयी सदी में महिला आत्मकथा लेखन और महिलाओं की आर्थिक स्थिति, उनका संघर्ष एवं सृजन में आर्थिक स्वातन्त्र्य और महिला आत्मकथा लेखन– सदियों से रूढ़िग्रस्त समाज, पति पर आर्थिक निर्भरता, आर्थिक अधिकार की समस्या, एक–एक पैसे को तरसती नारी, नारी होने का दुःख, पराया धन, सामाजिक बंधन, पुरुष को स्त्री का मालिकाना तेवर नापसंद, पड़ोसिन की आर्थिक सहायता का नवीन रूप, आर्थिक संघर्ष का दौर, आंबूकरा, राशन का जमाना, चाय की लत डालना, बड़ी बहिन की आर्थिक स्थिति, आर्थिक स्वातन्त्र्य और बनते बिगड़ते रिश्ते– अर्थ तंत्र पर रिश्तों की बलि, पारिवारिक विघटन का मूलः अर्थ, पीढ़ीगत आर्थिक दासता, सोच में अंतर, एकल परिवार की मानसिकता, शहरीकरण की चकाचौंध, अत्यधिक महत्त्वाकांक्षाएं, भौतिकवादिता, पहनावा, रहनसहन, वात्सल्य, मातृत्व सुख से दूरी, विवाह से दूरी, अन्तरंग सम्बन्धों की अधिकता, परिवारिक

सम्बन्धों में मतभेद, सहनशीलता की कमी, परिस्थितियों से समझौता नहीं, स्वयं के अनुसार जीवन जीने की लालसा, रोजगार के बढ़ते अवसरों की होड़– रचनाकार एक सेतु, आर्थिक आत्मनिर्भरता महत्त्वपूर्ण उपलब्धि, समय की कमी, पब्लिकेशन, त्रुटियों में कमी, कम्प्यूटर की उपयोगिता, अर्द्ध संचार माध्यम, कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन– आर्थिक आत्मनिर्भरता मान सम्मान व मर्यादा का प्रतीक, युगीन परिवेश का प्रभाव, स्वतंत्रता सेनानी की पत्नी को एक दासी के रूप में देखने की चाह, चिटफंड, दशरथ के परिवार की आर्थिक हालत, कर्जदार बन कर मत मरो, आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्द्रीय स्थान– स्वार्थ सिद्धी वश केन्द्रीय स्थान को प्रस्तुत किया है।

पति पर आर्थिक रूप से निर्भर पत्नी का जीवन दुःख का अध्याय होता है। पति के साथ उसकी खुशी जुड़ी हुई होती है। पति के बिना उसका जीवन दुःख यातना से भर जाता है। 'एक अनपढ़ कहानी' की चम्पा के पति की मृत्यु से उसका जीवन दुःख से भर जाता है। वह तीन बच्चों की परवरिश कल्पना से दुःखी होती है। विधवा नारी का जीवन असुरक्षित बनता है। बच्चों की चिन्ता और स्वयं की रक्षा के पाटों में उसकी जिन्दगी पिस जाती है। यह निर्विवाद सत्य है कि नारी को अपनी इच्छानुसार सफल जीवन जीना है तो उसका आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना बहुत जरूरी है। अर्थ ही वह शक्ति है जिसके बल पर स्त्री अपना जीवन खुशहाल बना लेती है। नारीवादी लेखिका 'सीमोन द बोउवार' अर्थ की स्वतन्त्रता को ही सही स्वतन्त्रता मानती है। वे कहती है कि–''मतदान और अन्य तमाम अधिकारों के बावजूद आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री की स्वतन्त्रता अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है।''

सार रूप में महिलाओं की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता आर्थिक स्वतंत्रता है। परिवार में अधिक श्रम महिलाएं ही करती हैं। प्रातः काल से मध्य रात्रि तक घर, कृषि एवं पशुपालन के कार्य करती महिलाओं के श्रम का अधिकतम फल पूरे

परिवार को मिलता है लेकिन महिलाओं को अमूल्य परिश्रम का आदर, सम्मान, पूर्ण रूप से प्रदान नहीं किया, जो चिंतनीय विषय है।

जब तक महिलाएं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर नहीं हो जाती तब तक उनके प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदलना भी असंभव लगता है। फलतः आर्थिक आत्मनिर्भरता से ही महिलाओं को समाज में बराबरी का दर्जा प्राप्त हो सकता है। आर्थिक आत्मनिर्भर और आर्थिक स्वातंत्र्य के विकास के आधार पर ही आज महिलाओं को परिवार में केन्द्रीय स्थान मिला है, जो उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

पंचम अध्याय, इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन में स्त्री मुक्ति का स्वरूप और सृजन– नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, स्त्री जीवन में बदलाव की मांग, स्वत्व की चेतना, परम्परागत रूढ़ियों का खंडन, नारी मुक्ति की अवधारणा : त्याग और तपस्या, शहरीकरण की वास्तविकता, इन्द्रधनुषी रंग : घनघोर काली रात, इक्कीसवीं सदी की आत्मकथाओं में स्त्री मुक्ति की वर्तमान स्थिति और सृजन, नारी का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं, स्वतंत्र अस्तित्व की चेष्टा, दोहरे मानदंड का विरोध, एक तरफा प्रेम के रिश्तों को तिलांजलि, पुरुष वर्चस्व को तोड़ती नारी, आर्थिक परतंत्रता, स्वतंत्रता विरोधी, विभिन्न जन आन्दोलनों में महिलाओं की भूमिका और आत्मकथा लेखन– आजादी से पहले का आंदोलन, स्वतंत्रता आंदोलन, मूल्य वृद्धि विरोधी आंदोलन, अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में नारी शोषण की स्थिति, महिला अधिकारों की विभिन्न देशों में स्थिति, संयुक्त राष्ट्र एवं महिला अधिकार, अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदाएं एवं महिला अधिकार, महिला अधिकारों के विशेष प्रावधान, महिला हैसियत आयोग, महिलाएं एवं अंतर्राष्ट्रीय वर्ष व दशक की घोषणा, महिला अधिकारों से संबंधित घोषणा, महिलाएं तथा विश्व मानवाधिकार सम्मेलन 1993, महिला अधिकारों की जागृति हेतु किये गये प्रयास, मैक्सिकों सम्मेलन, कोपेनहेगन सम्मेलन, नैरोबी सम्मेलन, बीजिंग सम्मेलन,

नई दिल्ली सम्मेलन 1997, महिला अधिकारों हेतु विभिन्न देशों द्वारा समय–समय पर किये गये प्रयास, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिला अधिकारों के विकास से सम्बन्धित घटनाक्रम, आत्मकथा लेखन और महिला अधिकार, अपना निर्णय अपने हाथ, उन्मुक्तता बनाम हठधर्मिता, प्रतिरोध की स्थितियाँ और महिला आत्मकथा लेखन– पति का शीत युद्ध, जलकुक्कड़ आदमी की शिकार, नारी उन्मुक्तता और स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध, 'मंगलसूत्र' एक घरमल्ल, करवा चौथ पर सवालिया दृष्टि, शोषण के विभिन्न रूप और महिला आत्मकथा लेखन– अनवरत अश्रुमोचन, आत्महत्या के प्रयास तक, हर कदम पर शारीरिक शोषण, नारी योनि खतरे में, बाल्यकाल के दंश, भावनात्मक प्रहार, आर्थिक ब्लैकमेल का शिकार, अश्लील आचरणः पुरुष मानसिकता, वासनांध दृष्टि और अत्याचारी मनोवृत्ति, सामाजिक अन्याय और अत्याचार, शाब्दिक आघात को दर्शाया है।

वर्तमान में स्त्री स्वतन्त्रता व नारी–विमर्श के झण्डे गाड़े जा रहे हैं, परन्तु नारी स्वतन्त्रता कहाँ है, केवल बाहरी आवरण में। आज भले ही वह ग्रामीण हो अथवा महानगरों की नौकरी पेशा नारी, हर जगह उनको परिवार तो मिले, परन्तु परिवार में बुनियादी लोकतन्त्र किसी को नहीं मिला, क्योंकि स्त्रियों के अस्तित्व व नियम कानून, उनके चरित्र, कार्यक्षेत्र की बागडोर तो पुरुषों के हाथों में रही है। इसलिए कभी शारीरिक रुप से कमजोर समझकर उनका यौन शोषण किया गया तो कभी औरत होने के कारण घर–परिवार व धार्मिक, राजनीतिक क्षेत्र में दोयम दर्जा दिया गया। पति के साथ असलियत में पत्नी का वह रोल नहीं, जो फेरों के समय वचनों के रूप में बताया जाता है। वादे होते हैं, सहभागिता और एक–दूसरे की इच्छा और जरुरत का सम्मान के कौल दिये जाते हैं । सब झूठ, फरेब। असलियत में हमारा रोल खादिमा, दासी और गुलाम होना है। सलाह मशविरा कौन करता है, आज्ञा देने का चलन है। जागरुक नारियों को जन–जागरण का कार्य अवश्य देना। भले ही वो समाज में कोई युगान्तकारी बदलाव नहीं कर सके परन्तु इसके बावजूद

वो नारी शक्ति को जागृत करने में अहम भूमिका निभा सकती है। भारतीय नारी हमेशा से ही समाज में ओत–प्रोत होकर कार्य करती रही है। वर्जना विहीन, नैतिकता विहीन व संस्कारहीन जीवन जीने की ललक पाश्चात्य नारी मुक्ति के लिये उपयुक्त हो सकती है किन्तु भारतीय नारी के संदर्भ में यह सही नहीं है। भारतीय नारी का जीवन तो संस्कारमय तथा सभ्य होता है जिसके कारण यहाँ पर नारी को देवियों के समान पूजा जाता है।

इस अध्याय में महिलाओं की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण प्रस्तुत व रेखांकित किया गया है उससे स्पष्ट होता है कि पुरुष की नजरों में महिला की स्थिति शायद कुछ भी नहीं है वह केवल उसका शोषण करके संतुष्टि प्राप्त करने की कोशिश ही करता है। उसके लिए संबंध व रिश्ते खोखले होते हैं केवल शारीरिक शोषण व आर्थिक शोषण के लिए ही पुरुष का जन्म हुआ है।

एक नारी की यह कैसी विडंबना है कि वह स्वयं की इच्छा से न तो शादी कर सकती है न ही प्रेम। यदि कर लिया तो उसके लिए समाज व परिवार सभी से संबंध विच्छेद कर दिये जाते है। चाहे उसकी स्थिति मरणासन की क्यों न हो जाये। समाज में एक नारी के लिए नियम कुछ और है तो पुरुष के लिए कुछ और, समानता तो है ही नहीं क्योंकि यदि एक नारी का बलात्कार होता है तो भी उसकी सजा नारी ही जीवन भर भुगतती है पुरुष नहीं और फिर भी नारी को ही किसी न किसी प्रकार से दोषी ठहराया जाता है।

समाज का धनी वर्ग कमजोर का, प्रतिष्ठित वर्ग गरीब का, शिक्षित वर्ग अशिक्षित का हमेशा से शोषण करता आया है तथा पुरुष व समाज की मानसिकता में बहुत ही कम परिवर्तन नजर आ रहा है।

परन्तु समाज में वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण, जागरुकता तथा अधिकारों के कारण महिलाओं की स्थिति में बदलाव जरूर आने लगा है। संबंधों में जहाँ सुधार, प्रेम व प्यार देखा जा रहा है वहाँ रिश्तों में कटुता, विच्छेदन भी देखा

जा रहा है। जातिगत भावनाएं गौण होती जा रही है तथा आर्थिक व सामाजिक स्तर को प्राथमिकता प्रदान की जाने लगी है। परन्तु समाज की जड़ों में जो दीमक लगी हुई है उसे हटाने में तथा नारी का पूर्ण सम्मान तथा स्वतंत्रता मिलने में व मानसिक परिवर्तन होने में शायद कुछ सदियाँ ओर लगे।

मैं स्वयं एक नारी होने के नाते यह महसूस करती हूँ कि एक नारी कितनी ही आत्मनिर्भर व सक्षम क्यों न हो जाये वह पुरुष के सानिध्य के बिना अधूरी है तथा असुरक्षित भी। अतः पुरुष रूप का प्रतीक कहीं ना कहीं उसकी भी सुरक्षा का प्रतीक रूप होता ही है।

परिशिष्ट में आत्मकथा के विभिन्न चरण, दलित आत्मकथा साहित्य, स्त्री आत्मकथा साहित्य को रेखाकिंत किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रंथ सूची

1. कस्तूरी कुंडल बसै– मैत्रेयी पुष्पा
2. हादसे– रमणिका गुप्ता
3. एक अनपढ़ कहानी– सुशीला राय
4. अन्या से अनन्या– प्रभा खेतान
5. एक कहानी यह भी– मन्नू भंडारी
6. गुड़िया भीतर गुड़िया– मैत्रेयी पुष्पा
7. दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसंत्री
8. मेरी कहानी– मैरी कॉम
9. लगता नहीं है दिल मेरा– कृष्णा अग्निहोत्री

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. समकालीन हिन्दी आलोचना– सं. परमानन्द श्रीवास्तव
2. आधुनिक हिन्दी काव्य– डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास– डॉ. नगेन्द्र
4. आज का हिन्दी साहित्य– प्रकाशचन्द्र गुप्त
5. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ– शिवकुमार शर्मा
6. समकालीन गद्य– शकुन्तला सिंह
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
8. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्रथम भाग)– सं. राजबली पाण्डेय
9. हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष– औंकारनाथ श्रीवास्तव
10. राजस्थान लेखक परिचय कोश– सं. मोहन लाल गुप्ता
11. पुस्तक समीक्षा का इतिहास– डॉ. श्रीमती संतोश संघी

12. हिन्दी कथाकार– इन्द्रनाथ मदान
13. हिन्दी का सामयिक साहित्य– विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
14. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि– विश्वम्भरनाथ उपाध्याय
15. उपन्यास स्वरूप और संवेदना– राजेन्द्र यादव
16. हिन्दी आत्मकथाएं सदर्भ और प्रकृति– श्याम सुन्दर पाण्डेय
17. सिद्धान्तालोचन– श्री धर्मचंद संत
18. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत– डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत
19. साहित्य के नये रूप– डॉ. श्याम सुन्दर घोष
20. आस्था के चरण– डॉ. नगेन्द्र
21. पत्रकार प्रेमचंद और हंस– डॉ. रत्नाकर पाण्डेय
22. पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत– डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्ता
23. काव्य के रूप– बाबू गुलाब राय
24. हिंदी साहित्य में जीवन चरित का विकास– डॉ. चन्द्रावती सिंह
25. मेरी आत्मकथा– गंगा प्रसाद
26. हिंदी आत्मकथा– डॉ. नारायण विष्णु शर्मा
27. हिंदी साहित्य में आत्मकथा– सरोज जग्गी, भूमिका
28. हिंदी का जीवनीपरक साहित्य– डॉ. शांति खन्ना
29. गद्य विविधा– डॉ. ओमप्रकाश सिंहल
30. आधुनिक हिंदी का जीवनीपरक साहित्य– डॉ. शांति खन्ना
31. हिंदी साहित्य में जीवन–चरित्र का विकास–चन्द्रवती सिंह
32. साहित्य के नये स्वरूप–डॉ. श्यामसुन्दर घोष
33. राहुल जी का जीवनी यात्रा साहित्य– जनक दुलारी सहगल
34. मेरी आत्मकथा– रवीन्द्रनाथ ठाकुर
35. अरुणायन एक आत्मकथा– श्री रामवतार पोद्दार 'अरूण'
36. क्या भूलूं क्या याद करूँ– हरिवंशराय बच्चन

37. मेरी आत्मकहानी– डॉ. श्यामसुंदर दास

38. हिंदी साहित्य– डॉ. विवेक शंकर

39. महिला आत्मकथा लेखन में नारी– डॉ रघुनाथ गणपति देसाई

40. रसीदी टिकट– अमृता प्रीतम

41. स्त्री और पराधीनता– स्टुअर्ट मिल जॉन

42. घर परिवार और रिश्ते– अंजली भारती

43. कामकाजी भारतीय नारी– प्रमिला कपूर

44. नारी कल और आज– निश्तर खानकाही, डॉ. गिरिराज अग्रवाल, डॉ. मीना अग्रवाल

45. साहित्य समाज शास्त्रीय संदर्भ– विश्वंभर दयाल गुप्ता

46. संत काव्य में नारी– कृष्णा गोस्वामी

47. आधुनिक हिन्दी कहानियों में युवा मानसिकता– पद्मजा चामले

48. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएँ– राम बिहारी सिंह तोमर

49. आठवें दशक की हिन्दी कहानियों में जीवन मूल्य– रमेश देशमुख

50. आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति– लक्ष्मण दत्त गौतम

51. भारतीय नारी अस्मिता की पहचान– उमा भारती 'शुक्ला'

52. भारतीय समाज का स्वरूप– सीताराम झा 'श्याम'

53. भारतीय समाज और संस्कृति– कैलाशनाथ शर्मा

54. हिन्दी आत्मकथा साहित्य– डॉ. विश्वबंधु शास्त्री 'विद्यालंकार'

55. भारतीय नारीः अस्मिता और अधिकार– आशाराणी व्होरा

56. हिन्दी उपन्यासों में पारिवारिक संघर्ष– उषा मंत्री

57. कामकाजी नारी, मानवीय सम्बन्धों का विघटन– धनपाल मानधने

58. हमारी सांस्कृतिक चेतना– रामखेलावन पाण्डे

हिंदी शब्द कोश

1. आदर्श हिन्दी कोश
2. अमरकोश
3. आधुनिक हिंदी शब्द कोश
4. वृहद् हिन्दी कोश
5. हिन्दी विश्व कोश
6. हिन्दी साहित्य कोश
7. हिंदी मानक कोश
8. व्यावहारिक अंग्रेजी हिंदी कोश
9. बहुउद्देशीय बृहत पर्यायवाची कोश
10. महिला मानवाधिकार कोश
11. भारतीय मानककोश
12. सिद्धान्तालोचन
13. मानविकी पारिभाषिक कोश
14. भाषा विज्ञान कोश
15. वृहद् अनुवाद चन्द्रिका– चन्द्रधर नोटियाल
16. लघु सिद्धांत कौमुदी– डॉ. अरक नाथ चौधरी
17. संस्कृत व्याकरण रचना कौमुदी– डॉ. अरक नाथ चौधरी, रुपनारायण ़त्रिपाठी

अंग्रेजी शब्द कोश

1. Oxford Dictionary-Cvol
2. Shorter Oxford English Dictionary
3. Cassels Encyclopedia of Literature- by S.H. Steinsburg
4. A Reader’s Guide to Literary Terms-by Rail Backson and Arthuyr Gan

5. Design and Truth in Autobiography- Dr. Roy Pascal
6. Dictionary of Literature- J.T. Shipley
7. One Mighty Torrent- Johnson
8. Experiment in Autobiography- H.G.Wells. Vol.Second
9. Art of Autobiography-Dr. D. G. Naik

पत्रिकाएँ

1. आजकल
2. साहित्य अमृत
3. वागर्थ
4. आलोचना
5. समीक्षा हंस
6. विवरण पत्रिका
7. हरिगंधा
8. इंद्रप्रस्थ
9. प्रगति वार्ता
10. मधुमति
11. भाषा परिचय
12. भाषा
13. साक्षात्कार
14. राष्ट्रवाणी
15. सम्मेलन पत्रिका
16. कलानिधि
17. वार्षिकी
18. शोध पत्रिका

19. मरू भारती
20. वरदा
21. समकालीन साहित्य समाचार

प्रकाशित

शोध–पत्र

प्रकाशित शोध–पत्र

क्र.सं.	शोध–पत्र का शीर्षक	प्रकाशन वर्ष	शोध–पत्रिका / पुस्तक का नाम	ISBN NO.	संस्करण
1.	इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन	2018	International Journal of Communication, Languages & Literature	2581–3625	Vol-1 Issue-01 Jan–Jun-2018
2.	नयी सदी की महिला आत्मकथा लेखन में कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन	2018	Innovation The Research Concept	2456–5474	Vol-3* Issue-1 *February-2018

International Journal of Communication, Languages & Literature, Vol.1, Issue 01, Jan-Jun- 2018 , pp 08-11, ISSN (Online): 2581-3625

इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथा लेखन में महिलाओं के विविध संघर्ष एवं सृजन

डॉ. लीला मोदी, हेमलता मीना

राजकीय कला कन्या महाविद्यालय, कोटा (राज.)

सारांश :

आज की नारी सात–सात अवकुण्ठनों के कैद में आबद्ध असूर्यपश्या चूल्हे–चौके वाली भीरू–धीरू नहीं अपितु अपने अधिकार और कर्त्तव्यों के प्रति अत्यन्त जागरूक है जो पुरूष वादी दृष्टि से अपने को व्याख्यायित नहीं करना चाहती अपितु अपनी व्याख्या आत्मकथाओं के द्वारा स्वयं कर रही हैं। मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित "कस्तूरी कुडंल बसै, प्रभा खेतान कृत "अन्या से अनन्या", मन्नू भंडारी कृत "एक कहानी यह भी" जैसी आत्मकथाओं ने समाज में नये आयाम, क्रांति व दिशा प्रदान की है। जिससे एक नारी अपने आत्मसम्मान एवं अधिकारों की रक्षा कर सकें तथा अपना सुनहरा जीवन सुख व खुशी के साथ जी सकें अर्थात् उसे मानवीय जीवन की वह सुखद व स्वतत्रं अनुभूति प्राप्त हो जो ईश्वर द्वारा उसे प्रदत्त की गई है।

संकेताक्षर : कस्तूरी कुडंल बसै, अन्या से अनन्या, एक कहानी यह भी, आत्मकथाओं

प्रस्तावना :

नारी की समाज में स्थिति उसकी यथार्थवादिता के दृष्टिकोण को उजागर करती है तथा समाज की वास्तविक स्थिति का दर्पण होती है। जहाँ समाज में नारी की स्थिति दयनीय व सम्मानीय नहीं होती है, उस समाज का विकास व उन्नति भविष्य के लिए अवरूद्ध हो जाती है। माँ को प्रथम गुरू की संज्ञा इसलिए प्रदान की गई है कि वह संस्कारों की जननी होती है जो अपने प्रेम व वात्सल्य से नवीन गुणों का संचार करती है, जो लहू बनकर एक पुरूष के अन्दर दौड़ता है।

वर्तमान सदी की महिलाओं की स्थिति पर यदि नजर डाली जाये तो अभी भी महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। इसके बहुत से कारण वर्तमान समाज में पाश्चात्यकरण, आधुनिकता की होड़, संस्कृति व सभ्यता तथा परम्पराओं से दूरी, वर्तमान जीवन शैली, समय का अभाव, बढ़ते रिश्तों में दूरियाँ, भौतिकवादिता आदि दिखाई दे रहे है जिससे महिलाओं की स्थिति परिवर्तित भी हो रही है, परन्तु रिश्तों मे खोखलापन बढ़ गया है। रिश्तों में वास्तविकता का अभाव है। सम्बन्धो में टकराव तथा हस्तक्षेप न करने की नीति भी सम्बन्धो में दूरियां बढ़ा रही है। वर्तमान जीवन शैली से जीवन में बढ़ता तनाव व शहरीकरण की जीवन शैली से जीवन में असन्तुष्टता बढ़ रही है जो सम्बन्धों में विछिन्नता उत्पन्न कर रही है।

उद्देश्य :

महिला आत्मकथा लेखिकाओं की समस्त आत्मकथाओं को अपनी पारखी दृष्टि, आर्थिक चेतना, सामाजिक चेतना, आर्थिक स्वातन्त्र्य, निर्णय की भूमिका, नवोन्मेषशालिनी, प्रज्ञा, अर्थगाम्भीर्य एवं पदलालित्य से उत्कृष्टता के शिखर पर आरुढ़ कर देने वाली आत्मकथा लेखिकाओं के व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा विषिष्ट रुप से अनेक कथा–साहित्य के समस्त आयामों को सुधिजन के समक्ष रखना ही अध्ययन मुख्य उद्देश्य है।

शोध प्रविधि एवं कार्य योजना :

शोध कार्य का उद्देश्य इक्कीसवीं सदी की महिला आत्मकथाकारों के साहित्य का साहित्यिक मूल्यों, सैद्धान्तिक मान्यताओं, वास्तविक आयामों एवं युग चेतना के संदर्भ में सांगोपांग विवेचन एवं विश्लेषण किये जाने का है तथा साथ ही आधुनिक काल से लेकर अब तक हिन्दी आत्मकथा साहित्य की यात्रा एवं लेखिकाओं पर उनके प्रभावों की समीक्षा करना भी है। अतः सर्वेक्षण एवं तुलनात्मक पद्धतियों की सहायता से मुख्यतः आलोचनात्मक पद्धति से लेखिकाओं की आत्मकथाओं के साहित्यिक मूल्यों, उनमें निहित उनकी सैद्धान्तिक मान्यताओं उनके विविध तथ्यात्मक आयामों तथा उनकी कथाकृतियों का समसामयिक संदभों में लोक चेतना के दृष्टिकोण से एक समग्र विवेचन एवं विश्लेषण किया जायेगा।

परिणाम एवं विचार–विमर्श :

कस्तूरी कुंडल बसै (मैत्रैयी पुष्पा), एक कहानी यह भी (मनु भण्डारी), अन्या से अनन्या (प्रभा खेतान) द्वारा लिखित आत्मकथाओं से यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि हम व समाज अपने को कितना ही सभ्य व संस्कार प्रदर्शित कर ले तथा शिक्षित हो जाये परन्तु समाज व देश की वास्तविकता नारी की एक परिवार तथा समाज में आंतरिक स्थिति कैसी है तथा उसे वास्तविक रूप में कितने अधिकार तथा स्वतंत्रता प्राप्त है इससे पता चलता है।

कस्तूरी कुंडल बसैं में कस्तूरी के पति का देहांत हो जाने पर, गोदी की बच्ची कों बाल विधवा द्वारा पालना जैंसे पहाड पर चढ़ने के समान था। समाज में पुरूष की नजरों से अपने को तथा अपनी बच्ची को बचाते हुए उसे शिक्षित कर आत्मनिर्भर बनानें के लिए किए जाने वाले संघर्ष की एक लम्बी श्रृंखला होती है जो शायद कभी न खत्म होने वाले रास्ते पर ले जाती है।

कस्तूरी का कम उम्र में ही दुःख, दर्द सहना तथा जीवन की परिस्थितियों से लड़ना सीख लिया। उनके अनुसार एक नारी तभी सम्मान प्राप्त करती है जब वह शिक्षित तथा आत्मनिर्भर हो। पुरूष उसे तभी महत्त्व देता है जब नारी स्वयं के पैरो पर खड़ी हो तथा पुरूष लाठी का सहारे न बनी हो।

लेखिका मानती है कि एक नारी का पढ़ा–लिखा होने के साथ गृहस्थ जीवन में संतुलन भी आना चाहिए तथा उसमें आत्मनिर्भरता भी होनी चाहिए जिससे जीवन के निर्णय वह स्वयं ले सकें। लेखिका मानती है कि पारिवारिक जिम्मेंदारियों को निभाते हुए विकास करना जीवन की सफलता है, मनमानी करना नहीं।

'अन्या से अनन्यां' में विवाहित पुरूष से प्रेम करने के कारण उम्र भर वह अपना संघर्ष स्वयं ही लड़ती हैं। जिसे सर्वस्व अर्पण करती है, जिन्दगी भर वही उनका साथ नहीं देता बल्कि समाज के सामने अपमानित होते हुए भी कुछ नहीं कहता, केवल उसकी भावनाओं के साथ खेलकर शारीरिक सुख प्राप्त करता है।

''अन्या से अनन्या'' में लेखिका अपने जीवन के सार को इस प्रकार से व्यक्त करती है ''मैने अपने–आपको बचाया है अपने मूल्यों को जीवन में संजोया है। हाँ टूटी हूँ, बार बार टूटी हूँ ..... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं ..... दुनियाँ के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई। इस उम्र में भी एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ ,जो जिन्दगी झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है, जिसे अपनी उपरमास्थियों पर नाज है। मेरे साथ मेरा अकेलापन हमेंशा रहा है पर यह अकेलापन जीवन का अर्थ भी समझता रहा है।''

उपरोक्त पंक्तियाँ लेखिका के जीवन संघर्ष की पूर्ण अभिव्यक्ति देती है कि जीवन जितना सरल प्रतीत होता है उतना होता नहीं है। एक स्त्री अविवाहित होकर विवाहित पुरूष के साथ जीवन बिता कैसे सकती है यह तो पुरूष प्रधान समाज का नियम तोड़ना है क्योंकि यह अधिकार तो पुरूष ने प्राप्त कर रखा है।

''अन्या से अनन्या'' में लेखिका मानती है कि एक नारी की सुन्दरता का प्रभाव परिवार में ही उन्होंने देखा क्योंकि वह उतनी सुन्दर नहीं थी अतः हीनताबोध, उपेक्षिता तथा आत्मसम्मान की कमी ने उनका जिन्दगी भर पीछा किया।

लेखिका इस बात को स्पष्ट रूप से कहती है कि एक नारी के लिए जीवन जीना इस समाज में बहुत कठिन है। नारी को अपना अस्तित्व तथा मार्ग स्वयं ही बनाना होता है तथा आत्मनिर्भरता उसके लिए मील का पत्थर, उसका आत्मविश्वास तथा संरक्षक भी होता है। उनके अनुसार एक नारी का सम्मान तभी प्राप्त होता है जब वह पूर्ण आत्मनिर्भर हो तथा समाज में किसी पद पर पहुँचे। पुरूष प्रधान समाज हमेंशा हर परिस्थिति में उसे ही दोषी मानता है तथा उसके हर कदम पर कांटे बिछाता है। लेखिका मानती है कि पुरूष स्त्री को केवल शरीर के तौर पर उपयोग करता है। भावनात्मक प्रेम उसके लिए होता ही नहीं है। पुरूष नारी का शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक शोषण करता है।

लेखिका की आत्मकथा से यह स्पष्ट होता है कि एक नारी को अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण निर्णय भावनात्मक रूप में नहीं लेने चाहिए तथा भविष्य की कठिनाईयों तथा समाज के विरोध को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। एक स्त्री का स्वयं का वजूद ही उसका आत्मसम्मान बनता है। लेखिका के मानसिक विचारों से यह जान पड़ता है कि यदि पुरूष प्रेम का उत्तर प्रेम से न दे, आपके समर्पण व लगाव को ना समझे, आपके आत्मसम्मान की रक्षा न कर सके तो इस प्रकार के रिश्तों को तोड़ कर जिंदगी को नये सिरे से जीना चाहिए। स्त्री आत्मनिर्भरता पुरूष के वर्चस्व को बहुत कम कर देता है लेखिका के विचारों से ऐसा स्पष्ट होता है।

''एक कहानी यह भी'' में मन्नू भंडारी का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षमय रहा है वह भी स्वयं के साथ अधिक। जिस व्यक्ति से प्रेम विवाह किया, पिता की इच्छा के विरूद्ध, वही व्यक्ति शादी के पश्चात् किसी ओर के साथ जीवन व्यतीत करने की कहकर पत्नी–पति के रिश्तों को ही महत्त्वहीन, संबंधहीन बना देता है तो एक नारी का जीवन ही महत्त्वहीन हो जाता है।

''एक कहानी यह भी'' में जब मन्नू जी बिना किसी प्रेरणा और प्रोत्साहन के कहानी लिखती है और वह छप जाती है तो लेखिका को अपनी एक अलग और विशिष्ट पहचान बनाता हुआ वजूद नजर आता है। यही साहित्य व लेखन से प्रेम और कार्यक्षेत्र की शुरूआत ही उन्हें अन्त तक एक आत्मनिर्भर लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित करती है। साहित्य व लेखन का जो स्वरूप उनका नजर आता है वह स्वयं केवल उनका और उनका ही है। उस पर पति के लेखन व साहित्य का प्रभाव जरूर पड़ा। उनकी सफलता उनकी स्वयं की ही थी। जीवन के वास्तविक अनुभवों तथा किरदारों को ही उन्होंने अपनी साहित्य में स्थान दिया। लेखिका के अनुसार एक नारी का जीवन में कुछ पाने का आत्मविश्वास, स्वयं के लिए विशिष्ट पहचान व आत्मनिर्भरता ही नारी मुक्ति का मार्ग है।

नारी इतनी आत्मनिर्भर होनी चाहिए कि वह स्वयं क निर्णय भी पूर्ण विश्वास तथा निडरता के साथ ले सकें तथा समाज के सामने निडरता से खड़ी रहे बिना परिणाम की परवाह किये बिना। अनके अनुसार एक नारी को स्वयं के प्रति हमेंशा सचेत रहना चाहिए।

''मेरी कहानी'' में मेरीकॉम बचपन में अपने पिता व माता को दिनभर मेहनत कर दो मुठ्ठी अनाज के लिए संघर्ष करते हुए देखती है तो धीरे–धीरे उनके मन में यह बात आती है कि जिन्दगी को यदि बेहतर तरीके से तथा सम्मानपूर्वक जीना है तो उसके लिए समाज में किसी विशेष पद तथा शिक्षित होकर आत्मनिर्भरता प्राप्त करनी होगी अतः अपनी मेहनत तथा खेल के प्रति रूझान को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उसे प्राप्त करने के लिए कड़ा संघर्ष

करती है। परिवार भी अपनी परिस्थितियों से समझौता करता हुआ उनकी सफलता में अपना पूर्ण योगदान प्रदान करता है क्योंकि भविष्य की सुखद कल्पना व बेहतर जीवन जीने की सुविधाऐं उन्हें भविष्य के मार्ग पर नजर आने लगती है।

लेखिका मानती है कि मेरीकॉम जैसे–जैसे सफलता के मार्ग पर आगे बढ़ती जाती है उसका आर्थिक पक्ष मजबूत होता जाता है साथ ही सरकारी नौकरी तथा समाज व देश से प्राप्त सम्मान उनके आत्मविश्वास को बढ़ाता है।

मेरीकॉम मानती है कि पुरूष प्रधान समाज में स्वयं की रक्षा करते हुए सफलता को प्राप्त करना तथा एक नारी की सफलता में पुरूषों द्वारा निस्वार्थ योगदान बहुत ही कठिन होता है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त आत्मकथाओं से स्पष्ट होता है कि नारी के साथ जो होता है उसका उत्तरदायित्व केवल पुरूष होता है। पुरूष द्वारा नारी को केवल शारीरिक तौर पर उपभोग करना, उसे प्रेम व सम्मान से वंचित रखना, संबंध को स्वीकार न करना, पारिवारिक कार्यों में सहायता न करना, आर्थिक परेशानियाँ पैदा करना, मानसिकरूप से तथा शारीरिकरूप से भी प्रताड़ित, अपमानित करना, आदि के कारण एक स्त्री का स्त्रीत्व तथा उसका मानसम्मान, गौरव, आत्मविश्वास जीवन में निराशा का भाव उत्पन्न कर देता है। उसकी भावनाऐं जब आहत होती है। दुःख व पीड़ा तथा दर्द जब ह्रदय की गहराईयों को चीर कर निकल जाता है तब उस दुःख से वह नहीं निकल पाती जीवन शब्दहीन, अर्थहीन, महत्त्वहीन होने लगता है तो जीवन में उसके अन्तः मन की नारी प्रबल होने लगती है तथा उसका आत्मविश्वास तथा साहस उसे जीवन मे आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है तो जीवन की सभी ऊँचाईयों को वह छूलेते है। जीवन के यही उतार–चढ़ाव तथा जीवन के पल ही कलम के माध्यम से कागज पर उतरने लगते है। नारी के अन्दर विधमान लेखिका, कवयित्री वास्तविक स्वरुप में प्रकट होकर समाज के समक्ष वास्तविकता को प्रकट करने लगती है।

संदर्भ :

1. मैत्रैयी पुष्पा, कस्तूरी कुण्डल बसै, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण–2009।
2. मन्नू भण्डारी, एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2007।
3. प्रभा खेतान, अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, संस्करण–2011।
4. एम.सी. मेरी कॉम, मेरी कहानी, मन्जूल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण–2014।
5. डॉ. रघुनाथगणपति देसाई, महिला आत्मकथा लेखन में नारी, ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, संस्करण–2012।

ISSN (P) : 2456-5474

RNI : UPBIL/2016/68367
Bi-lingual/Monthly

Social Research Foundation

Innovation

The Research Concept

Multi-disciplinary Bi-lingual International Journal

S

R

F

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

नयी सदी की महिला आत्मकथा लेखन में कामकाजी महिलाओं की पारिवारिक स्थिति एवं सृजन

हेमलता मीना
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

लीला मोदी
सह–आचार्य,
हिन्दी विभाग,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

प्रेमलता मीना
शोध छात्रा,
हिन्दी विभाग,
राजकीय कला कन्या महाविद्यालय,
कोटा, राजस्थान

सारांश

नारी की समाज में स्थिति उसकी यथार्थवादिता के दृष्टिकोण को उजागर करती है तथा समाज की वास्तविक स्थिति का दर्पण होती है। जहाँ समाज में नारी की स्थिति दयनीय व सम्मानीय नहीं होती है, उस समाज का विकास व उन्नति भविष्य के लिए अवरूद्ध हो जाती है। वर्तमान समय में समाज में यदि नारी कामकाजी है तो भी पारिवारिक कार्य की समस्त जिम्मेदारियाँ तथा कर्तव्य उसी पर थोपे जाते है। पुरुष का कार्य केवल बच्चे पैदा करना तथा नारी की देह का शोषण करना मात्र रह गया है। परन्तु आज की नारी भी पारिवारिक कार्यों में अपनी रुचि कम ही प्रदर्शित कर रही है। वह शादी जैसे बंधन से मुक्त होकर स्वतंत्र जीवन जीने की लालसा करने लगी है, मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित कस्तूरी कुडंल बसै, प्रभा खेतान कृत "अन्या से अनन्या", मन्नू भंडारी कृत "एक कहानी यह भी" जैसी आत्मकथाओं ने समाज में नये आयाम, क्रांति व दिशा प्रदान की है। जिससे एक नारी अपने आत्मसम्मान एवं अधिकारों की रक्षा कर सकें तथा अपना सुनहरा जीवन सुख व खुशी के साथ जी सकें अर्थात् उसे मानवीय जीवन की वह सुखद व स्वतन्त्र अनुभूति प्राप्त हो जो ईश्वर द्वारा उसे प्रदत्त की गई है।

मुख्य शब्द : कस्तूरी कुडंल बसै, अन्या से अनन्या, एक कहानी यह भी, आत्मकथाओं, पारिवारिक, आत्मसम्मान

प्रस्तावना

नारी की समाज में स्थिति उसकी यथार्थवादिता के दृष्टिकोण को उजागर करती है तथा समाज की वास्तविक स्थिति का दर्पण होती है। जहाँ समाज में नारी की स्थिति दयनीय व सम्माननीय नहीं होती है, उस समाज का विकास व उन्नति भविष्य के लिए अवरूद्ध हो जाती है। माँ को प्रथम गुरु की संज्ञा इसलिए प्रदान की गई है कि वह संस्कारों की जननी होती है जो अपने प्रेम व वात्सल्य से नवीन गुणों का संचार करती है, जो लहू बनकर एक पुरूष के अन्दर दौड़ता है। नारी का रूप व सौन्दर्य स्वमेय ही ईश्वरीय सृजन है जिसे एक माँ की अनुभूति से सृजित किया गया है। इस संसार में जीवन का आरम्भ एक स्त्री या नारी द्वारा ही सम्भव है तथा उसमें व्याप्त गुणों के कारण मातृत्व, भ्रातत्व, समर्पण, त्याग आदि से ही उसका स्वभाव व व्यवहार शुद्ध बनता है। वह त्याग व करूणा की प्रतिमूर्ति होती है जिसके कारण ही वह एक परिवार की सुखद आधारशिला होती है जो परिवार की नींव को मजबूत तो बनाती ही है परिवार को सम्बन्धों में बाँधकर भी रखती है। उसका स्नेह व प्रेम ही उसमें बच्चों के लिए सृजनात्मकता उत्पन्न करती है।

एक नारी द्वारा परिवार के सदस्यों के विभिन्न कार्य करना, विभिन्न प्रकार के व्यंजन व भोजन तैयार करना, पर्व व त्योहारों पर सजना–संवरना, शृंगार करना, घर–परिवार की दिनचर्या को सही प्रकार से व्यवस्थित रखना सृजनात्मकता का ही अंग है जो एक नारी में स्वतः ही होती है। उसकी कल्पनाशीलता, ह्रदय से आभास, आत्मानुभूति आदि के कारण ही उसकी विचारशीलता मन की अच्छाईयों से निकलती है।

एक नारी पूर्ण समर्पण से अपने कर्त्तव्यों व दायित्वों का निर्वाह करती है। अतः जब नारी के मन को ठेस पहुँचती है तो मन की भावनाऐं स्वतः ही लेखन का रूप धारण कर लेती है। जो कविता, गीत, गजल, लेख आदि के रूप में परिणित होता है।

अध्ययन का उद्देश्य

एक नारी के मन को आघात पहुँचता है या मन आहत होता है उसके मन में ठेस पहुँचती है या उनकी भावनाओं के साथ खेला जाता है तो उसका

मन विचलित हो उठता है तथा मन की गहराईयों में दबा हुआ अहसास प्रेरणा शक्ति व स्त्रोत के रूप में संचित होकर लेखन के रूप में आकार ग्रहण करने लगता है तथा दुःख–दर्द, पीड़ा, तिरस्कार, घृणा आदि की वास्तविक अभिवृति होने लगती है।

नयी सदी के प्रारम्भ में महिला आत्मकथा का प्रचलन केवल वास्तविक परिस्थितियों का सामना करते हुए तथा अपना खोया मान–सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा उन परिस्थितियों से उन महिलाओं को प्रोत्साहन व प्रेरणा प्रदान करना जिससे ऐसी महिला ऐसी परिस्थितियों व समस्याओं का सामना कर सकें तथा जागरूक होकर अपना संघर्ष पूर्ण कर अपनी स्वतंत्रता व आत्मसम्मान प्राप्त कर सकें। उन नारियों द्वारा लिखा गया जिन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया तथा मान–सम्मान, प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करते हुए समाज में एक पद व प्रतिष्ठा प्राप्त की।

शोध प्रविधि एवं कार्य योजना

शोध कार्य का उद्देश्य नयी सदी की महिला आत्मकथाकारों के साहित्य का साहित्यिक मूल्यों, सैद्धान्तिक मान्यताओं, वास्तविक आयामों एवं युग चेतना के संदर्भ में सांगोपांग विवेचन एवं विश्लेषण किये जाने का है तथा साथ ही आधुनिक काल से लेकर अब तक हिन्दी आत्मकथा साहित्य की यात्रा एवं लेखिकाओं पर उनके प्रभावों की समीक्षा करना भी है। अतः सर्वेक्षण एवं तुलनात्मक पद्धतियों की सहायता से मुख्यतः आलोचनात्मक पद्धति से लेखिकाओं की आत्मकथाओं के साहित्यिक मूल्यों, उनमें निहित उनकी सैद्धान्तिक मान्यताओं उनके विविध तथ्यात्मक आयामों तथा उनकी कथाकृतियों का समसामयिक संदर्भों में लोक चेतना के दृष्टिकोण से एक समग्र विवेचन एवं विश्लेषण किया जायेगा।

परिणाम एवं विचार–विमर्श

'मेरी कहानी' मे मेरी कॉम जब मातृत्व का सुख प्राप्त करती है तो वह अपनी खेल की दुनिया को भुला बैठती है क्योंकि बच्चों की परवरिश उनके लिए महत्वपूर्ण होती है। जब बच्चे बड़े होते है तो वह खेल के स्थान पर उन्हें ले जाने लगती है साथ ही अपना अभ्यास प्रारम्भ करती है परन्तु उन्हें बच्चों की देखभाल करने, उनका लालन–पालन करने में बहुत कठिनाई महसूस होती है। उनकी स्थिति से यह ज्ञात होता है कि एक मां व बच्चों के साथ कामकाज की जिम्मेदारी निभाना, दोहरी जिन्दगी जीने के समान है।

अतः आप एक के साथ इन्साफ करते हो तो दूसरे के साथ कुछ अन्याय तो हो ही जाता है। दोनों में तालमेल बैठाना बहुत कठिन होता है।

ऐसे समय में एक स्त्री की सृजनशीलता पूर्णतः मातृत्व व वात्सल्य में परिवर्तित होती दिखाई देती है जो अपनी प्राथमिकता बनाये रखती है तथा एक स्त्री की सृजनशीलता को कम कर देती है।

'कस्तूरी कुंडल बसै' में अपनी बच्ची के भविष्य व उसकी शिक्षा के लिए कस्तूरी सारे सुखों का त्याग कर देती है। लेखिका विवाह के बाद अपने पारिवारिक जीवन में उलझ गई कि उसे अपने पढ़े–लिखे होने का अहसास नहीं रहा। वह धन की सभी मर्यादाओं का पालन करती है। मैत्रेयी पुष्पा ने वैवाहिक जीवन के सीमित दायरे में जीना पसंद किया। वह यह मानती है कि लड़की पढ़–लिखकर कितने ही ऊँचे ओहदे पर काम करती हो लेकिन परिवार उससे छूटता नहीं। घर के सभी काम उसे ही करने पड़ते है।

'एक कहानी यह भी' में मन्नू भंडारी बताती है कि पति पारिवारिक कार्यो में किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं देते थे। लेखिका के पास नौकरी के कई ऑफर आये परन्तु पति हमेंशा उसे टालते रहे। पारिवारिक जिम्मेदारी का उन्हें कोई अहसास तक नहीं था।

'अन्या से अनन्या' में जब प्रभा जी आर्थिक रुप से सक्षम होने लगती तो कई बार डॉ. सर्राफ उनकी भावनाओं से खेल कर अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारते है। आर्थिक स्थिति के कारण ही उन्हें सम्मान की प्राप्ति होती है।

वर्तमान समय में समाज में यदि नारी कामकाजी है तो भी पारिवारिक कार्यों की समस्त जिम्मेदारियाँ तथा कर्तव्य उसी पर थोपे जाते है। पुरुष का कार्य केवल बच्चे पैदा करना तथा नारी की देह का शोषण करना मात्र रह गया है परन्तु आज की नारी भी पारिवारिक कार्यों में अपनी रुचि कम ही प्रदर्शित कर रही है। वह शादी जैसे बंधन से मुक्त होकर स्वतंत्र जीवन जीने की लालसा करने लगी है। अतः वर्तमान समय में पति–पत्नी तथा परिवार के रिश्तों में विश्वास व आत्मीयता नहीं रह पा रही है।

आर्थिक स्वातन्त्र्य के विकास के साथ महिलाओं का परिवार में बनता केन्दीय स्थान

''कस्तूरी कुण्डल बसै'' में कस्तूरी अपनी बेटी के ब्याह की रस्में स्वयं ही कराती है तथा समाज द्वारा किये जाने वाले विरोध को भी दबाती है। वह किसी के भी सामने झुकती नहीं तथा अपनी बेटी की शादी बिना दहेज के करके समाज में एक नई सोच की स्थापना करती है।

''एक कहानी यह भी'' में मन्नू भंडारी अपनी साहित्यिक प्रतिभा व लेखनी से स्वयं ही आत्मनिर्भर बनती है तथा अपने जीवन के उद्देश्यों व लक्ष्यों की प्राप्ति वह स्वयं करती हुई पारिवारिक उत्तरदायित्व निभाती है।

''अन्या से अनन्या'' में प्रभा खेतान व्यवसाय कर पुरुष व्यवसाय के समक्ष चुनौती बनकर सम्मान व पद की प्राप्ति करती है तथा प्रेमिका के ही परिवार को अपना मानकर उनकी आर्थिक सहायता भी करती है।

''मेरी कहानी'' में मेरी कॉम जब आर्थिक रुप से सक्षम होने लगती है तो अपने पूरे परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक परिवेश को परिवर्तित करने की कोशिश कर सभी को शिक्षित व आत्मनिर्भर बनाने की कोशिश करती है।

उपरोक्त आत्मकथाओं में पारिवारिक स्थिति में नारी का स्थान महत्वपूर्ण तथा केन्द्रीय भूमिका का निर्वाह करता है क्योंकि वही आर्थिक रुप से सक्षम होती है तथा पुरुष का पारिवारिक उत्तरदायित्वों से दूरी, परिवार में महिला की भागीदारी को बढ़ा देती है।

वर्तमान समय में स्त्री पुरुष दोनों समानता .... परिवार का भरण पोषण करने की कोशिशे कर ....

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

..................वर्तमान सामाजिक व्यवस्था तथा भौतिकवादिता.... .... महत्वाकांक्षाओ में फसता जा रहा है तथा नारी की स्थिति इसी प्रकार की होती जा रही है, उसे धन, वैभव, यश की कामना है परन्तु पुरुष प्रधान नारी को प्रयोग करते हुए उच्च पदों पर आसीन कर रहा है। वह उसका उपभोग करते हुए उसे समानता के छलावे में ढ़ाल देता है परन्तु वर्तमान समय में स्त्रियों को रोजगार के अधिक अवसर उनकी देह के रुप में प्राप्त हो रहे है। जिससे स्त्रियों की आर्थिक स्थिति में बहुत ही बदलाव आ गया है तथा शिक्षा के बदलते आयाम व तकनीको ने उसकी स्वतन्त्रता के क्षेत्र को बढ़ा दिया है जिससे परिवारों में भी उसका पद सम्मान बढ़ने लगा है। परिवार के निर्णयों में उसकी भी भूमिका प्रधान रुप से होने लगी है।

निष्कर्ष

नयी सदीं की महिला आत्मकथाओं की आर्थिक स्थिति में बहुत परिवर्तन आ गया इसका कारण अभिव्यक्ति से अधिक साधनों की उपयोगिता तथा तकनीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति की कुछ क्षणों से सम्पूर्ण संसार में प्रचार व प्रसारण के कारण लेखन की सीमा व क्षेत्र विस्तृत हो चुके हैं।

वर्तमान समय में नारी पर होने वाले अत्याचार, अपमान की अभिव्यक्ति तुरन्त ही संचार माध्यमों से समाज के समक्ष आ जाती है। इसी प्रकार से संचार तकनीकों ने कई आधार प्रस्तुत किये है जिनके माध्यम से नारी बिना नाम व पहचान के भी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दे सकती है।

समाज में बढ़ता शारीरिक आकर्षण जिसे प्रेम समझा जाता है जब कल्पना से बाहर आकर वास्तविक धरातल पर आता है तो सच्चाई समझ में आती है संचार साधनों ने एक ओर जहाँ हमें स्वतन्त्रता प्रदान की है वहीं रिश्तों मे अजीब सा खिंचाव, तनाव, कुण्ठा, भय, डर रिश्तों से दूरी भी रहीं है।

समाचार पत्रों में दिन–रात होने वाली घृणित घटनाऐं, अत्याचार, दुःख इस बात को स्पष्ट करते है कि मनुष्य जीवन में शांति व सुख की कल्पना ही कर सकता हैं उसे प्राप्त करना बहुत ही कठिन है ।

रोजगार तथा बढ़ती महत्वाकांक्षाऐ जीवन को अन्धकार की ओर ले जा रही है। महिलाऐ आर्थिक रुप से सक्षम होने के कारण परिवारों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी करने लगी है। परन्तु रिश्तों में विश्वास, मूल्य, संस्कार नहीं रहे हैं मैत्रेयी पुष्पा द्वारा लिखित कस्तूरी कुडंल बसै, प्रभा खेतान कृत "अन्या से अनन्या", मन्नू भंडारी कृत "एक कहानी यह भी" जैसी आत्मकथाओं ने समाज में नये आयाम, क्रांति व दिशा प्रदान की है। जिससे एक नारी अपने आत्मसम्मान एवं अधिकारों की रक्षा कर सकें तथा अपना सुनहरा जीवन सुख व खुशी के साथ जी सकें अर्थात् उसे मानवीय जीवन की वह सुखद व स्वतंत्र अनुभूति प्राप्त हो जो ईश्वर द्वारा उसे प्रदत्त की गई है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *मन्नू भण्डारी,(2007) एक कहानी यह भी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।*
2. *मैत्रैयी पुष्पा,(2009) कस्तूरी कुण्डल बसै, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली।*
3. *प्रभा खेतान,(2011) अन्या से अनन्या, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली।*
4. *डॉ. रघुनाथगणपति देसाई,(2012) महिला आत्मकथा लेखन में नारी, ए.बी.एस. पब्लिकेशन, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।*
5. *एम.सी. मेरी कॉम,(2014) मेरी कहानी, मन्जूल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।*